लोकभारती प्रकाशन

आदरणीय कविशेखर
श्री कालिदासराय
को सादर

जीवन-सध्या

उनकी गाडी जिस समय इनके दरवाजे पर आकर रुकी, उस समय तक शहर के इस मुहल्ले मे दैनिक काम के पहिये ने पूरी रफ्तार से घूमना शुरू नही किया था। यहाँ तक कि सडक भी नीद से उठकर जम्हाई लेती हुई लग रही थी।

फुटपाथ पर जहाँ-तहाँ, भाग्यवानो के मकानो के बाहर कोने-कोने मे या किसी दुकान के साइनबोर्ड को सुरक्षित रखने के लिए बढाये गये शेड के नीचे जो बेचारे गरीब गहरी नीद के गुलगुले बिछावन पर सोये हुए थे, उनकी गहरी नीद को तोडने के लिए उस समय तक रास्ते के होजपाइप ने मटमैला पानी उगलना नही शुरू किया था। यहाँ तक कि दुकान-दौरियाँ के भी दोनो पट बन्द आँखो की तरह मूँदे हुए थे, कोई-कोई ही एक आँख खोलकर ताक रहा था।

उस समय अखबार वाले अपनी साइकिल की घटी बजाकर खास-खास मकानो की खुली खिडकी या बरामदे म रोज का अखबार फेंककर तेजी से भाग रहे थे, एक-आध बोतलबन्द दूध वाले भी अपनी साइकिल-गाडी को ग्राहको के दरवाजा पर रोक-रोककर सीटी बजाकर अपने आने की सूचना देते हुए नजर आ रहे थे। दूध लेने के लिए बन्द दरवाजे का एक पल्ला जरा-सा खुलकर किसी का हाथ आगे बढता और फिर दरवाजा के पीछे जाकर अदृश्य हो जाता।

गति की तत्परता घर-घर चौका-बासन करने वाली नौकरानियो मे ही नजर आ रही थी। इनकी सख्या कम नही थी। अभी भी वहाँ पर चारो तरफ काफी सख्या मे झोपड-पट्टियाँ आबाद थी। उनके जल्दी ही वहाँ से उखाडे जाने की अफवाह जरूर थी लेकिन निश्चित तिथि कोई नही जानता था। कम से-कम उन बस्तियो मे रहने वालो को तो कोई फिक्र नही थी। जरा-जरा-सी बातो मे परेशान होने की उनकी आदत ही खत्म हो गयी थी। वे जानते थे कि होनी होकर रहेगी। इसीलिए परम निर्लिप्त भाव से वे अपनी गृहस्थी जमाए हुए आखिरी समय तक वहाँ डटे रहने वाले थे।

यह इलाका कुछ दिन पहले तक एक उपनगर के रूप मे जाना जाता था। फिलहाल पूर्वार्द्ध के उप को गायब करके शहर ने इसे अपने पजे मे समेट लिया था। शहर ने इसे अपने कब्जे मे जरूर कर लिया था लेकिन वह पूरी तौर से अभी इसे अपने अनुरूप नही बना पाया था। मुख्य मार्ग से थोडा इधर-उधर हटकर नल, सेनिटरी ड्रेन आदि का अभाव देखकर ही इस बात का सुबूत मिल जाता था।

इन लोगों का मकान खास सड़क पर ही था। मकान देखने में अच्छा ही लगता था। उसे देखकर बिल्कुल नया तो नहीं कहा जा सकता था लेकिन वह बहुत पुराना भी नहीं था।

जिन दिनों यहां की जमीन पानी के भाव बिक रही थी, उन्हीं दिनों निरुपम, नीलांजन और इन्द्रनील के पिता अनुपम मित्तिर ने यह जमीन खरीदी थी। इसके बाद जब जमीन अपने असली दाम पर आ गयी थी, तब, उन्हीं दिनों, रिटायर होने के बाद उन्होंने बड़े उत्साह से इस मकान को बनवाना शुरू किया था।

लेकिन उन्हें मालूम नहीं था कि कहीं और भी उनके नाम से जमीन ली जा रही थी। इसकी नोटिस अचानक मिली थी। बीबी-बच्चों को साथ ले जाने की जगह नहीं थी, फलतः उन्हें अकेले ही जाना पड़ा। उन दिनों इस मकान की छत ढाली जा रही थी।

कुछ दिनों के लिए काम रुक गया, फिर शुरू हुआ और एक दिन खत्म भी हो गया। सब कुछ अनुपम मित्तिर की योजनानुसार ही हुआ, इसमें कोई कसर नहीं छोड़ी गयी। कमरों की दीवारों पर रंग-रोगन हुआ, बाथरूम में मोजेक का फर्श बना। सुचित्रा मित्तिर का कहना था, जैसा उनके पति चाहते थे सब कुछ वैसा ही हो।

सिर्फ गृह-प्रवेश की रस्म ही अनुपम मित्तिर की योजनानुसार नहीं निभायी गयी थी। सुचित्रा मित्तिर बगैर किसी आडम्बर के एक दिन अपने माल-असबाब और तीनों बेटों के साथ अनुपम कुटीर में रहने चली आयी थीं।

उनके आने के बाद काफी तेज रफ्तार से आस-पास मकान खड़े होने लगे जिनमें छोटे-बड़े, दरमियाने, बहुत बड़े, चमकदार, साफ-सुथरे, आधुनिक, अति आधुनिक सभी तरह के मकान शामिल थे। इन मकानों की रौनक के आगे अनुपम मित्तिर का मकान करीब-करीब फीका ही पड़ गया। लेकिन इस फीकेपन का अनुपम कुटीर के वासिंदों पर कोई असर ही नहीं पड़ा। वे लोग अपने जीवन के बँधे-बँधाये ढर्रे में मस्त थे।

अगर भाइयों में सबसे छोटा इन्द्रनील बाहर से आकर कभी कहता भी कि, "उस कोने वाली जमीन पर एक और मकान बन रहा है," तो 'कौन बना रहा है" या, "कैसा बन रहा है" इस तरह की बातें कहकर कोई बात आगे नहीं बढ़ाता था। शायद कभी सुचित्रा कहती, "तो क्या जमीन ऐसे ही पड़ी रहेगी?" या कभी नीलांजन कहता, "तुम सड़क पर घूम-फिर कर क्या यही देखते रहते हो कि कहाँ पर, किसका क्या बन रहा है?"

निरुपम इतना भी नहीं कहता था।

वह इसी तरफ की एक नयी बनी यूनिवर्सिटी में अध्यापन करता था। नीलांजन ने एम० ए० पास करके साल भर भटकने के बाद बर्मा शेल में एक अच्छी

तनख्वाह वाली नौकरी जुटा ली थी। बस इद्रनील ही अभी एम० एस सी० कर रहा था।

घर मे अनुपम के जमाने का एक नौकर था जो घर-गृहस्थी का सारा भार सँभाले हुए था, एक नौकरानी थी जा दो वक्त आकर छोटा-मोटा काम करके चली जाती थी। चूकि ये लोग शायद ही कभी किसी-किसी रिश्तदार के यहा जाते थे, इसीलिए इनके यहाँ भी नाते-रिश्तेदार कभी-कभार ही आया करते थे।

मुहल्ले मे भी किसी से जान-पहचान नही थी। मुहल्ले मे आये हुए एक-आध नय लाग भी पडोसी धम के नाते यहा आकर सम्पर्क नही बना पाये। सुचिता और सुचि ता तनया की निर्लिप्तता के कारण व कमलपत्र से जलबिन्दु की तरह ढुलक गये।

उनकी टैक्सी अगर दिन की भरपूर रोशनी मे आकर उनके दरवाजे पर खडी हुई होती तो जरूर अडोस-पडोस की कौतूहली नजरें आपस म मुखातिब होकर पूछ बैटतीं, "माजरा क्या है? इस अनुपम कुटीर मे भला कौन आ सकता है?" तब आने वाले को विना एक नजर देखे कोई भी अपनी खिडकी से नही हट पाता।

लेकिन वह टैक्सी जब यहा आकर रुकी तब अधिकतर मकान नीद की खुमारी मे डूबे हुए थे। थोडी बहुत हलचल थी भी तो वह घर की कुछ खास जगहो मे—रसोईघर, भण्डारघर, स्नानघर—आदि मे थी।

जैसा अनुपम कुटीर मे था।

हालाँकि अनुपम कुटीर मे काम का पहिया कभी भी तेज रफ्तार से नही घूमता था, न उसकी घड-घडाहट से उस घर मे रहने वाले चार सभ्य-शात लोगो की दिनचर्या मे कोई बाधा ही पडती थी। लेकिन अनुपम के जमाने मे मामला बिल्कुल उलटा था। वे खुद ही सारे समय गुल-गपाडा मचाये रहते थे। रोज के भोजन मे अगर किसी दिन छप्पन व्यजनो की सूची म कोई कमी रह जाती तो वे घर मे महाभारत मचा देते थे। यार-दोस्तों की नित्य की बैठकों के आयोजन म किसी दिन कोई त्रुटि रह जाने पर आसमान सिर पर उठा लेते थे। साथ ही बाते तो वह इतनी अधिक करते थे कि घर के और चार प्राणियो की खामोशी को कोई दूसरा समझ ही नही पाता था। खैर, एक दिन इसी सारे शोर-गुल को अपने साथ लेकर उन्होने किराये के मकान से सदैव के लिए विदा ले ली।

अनुपम कुटीर हमेशा से खामोश था।

यहाँ तक कि पुराने दिनो का नौकर सुबल जो चौबीसो घण्टे बाबू से डाँट खाता रहता और चौबीसों घण्टे घर के नौकर नौकरानियो ड्राइवर से झगडा करता फिरता था, वह भी खामोश और गूगा हो गया था।

सुबह उठकर वह बिना किसी आहट के झाड़ू-बुहारी करता, दरवाजे का एक पल्ला खोलकर दूध की बोतल लेता, नौकरानी के आने पर उन दोनों पल्लों को बिल्कुल खोल देता, फिर रात की धुली-पुछी रसोई में चूल्हा सुलगाकर, हाथ में थैला लेकर सब्जी खरीदने निकल जाता। खरीद-फरोख्त के पैसे उसके पास ही रहते थे। उनके खत्म हो जाने पर वह फिर माँग लेता था। उससे हिसाब किताब की बात ही कोई नहीं करता था, उल्टे उसके हिसाब देने पर लोगों को कुढन महसूस होने लगती थी।

सुचिन्ता बहुत सुबह उठ जाती थी। उठकर सोने के कमरे से जुड़े नहान-घर में चली जाती थी। नहाने से पहले वह किसी से भी नहीं मिलती थी। नहान-घर में अनुपम मित्तिर की योजनानुसार तरह-तरह की शौक की चीजें मौजूद थी। यही हाल सोने के कमरे का भी था। इन दोनों कमरों का इस्तेमाल सुचिन्ता अकेले ही करती थी।

सुचिन्ता को देखकर ऐसा नहीं लगता था कि वे अपने मन में किसी तरह का हाहाकार सजोये हुई थी। और रोज की यह आरामतलबी उन्हें कचोटती रहती थी। बल्कि उल्टे यही लगता था कि वे हमेशा से ऐसा जिन्दगी जीने की अभ्यस्त रही हों। नीद से उठकर इत्मीनान से एक घण्टे तक अपनी देह को टब में डुबोकर नहाने के बाद दूध की तरह सफेद थान और अद्धी का ब्लाउज पहन-कर और एक घण्टे तक अपनी साफ-सुथरी दोनों कलाइयों को गोद में रखकर चुपचाप आँख बन्द करके ध्यान समाप्त करने के बाद ही वे कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर निकलती थी, तब भी लड़कों की नीद टूटी या नहीं इस बात से बिना उद्विग्न हुए वे मेज के पास जाकर वहाँ बैठकर अखबार पढ़ने लगती थी। उन्हें देखकर लगता था कि वे आजीवन ऐसी ही जिन्दगी जीने की अभ्यस्त रही हों।

अभी उस दिन तक सुचिन्ता सुबह झटपट नहा-धोकर हाथ में कंगन और चूड़ियाँ छनकाकर सब्जी काटती थी, घी, तेल, मसाले, गोश्त, मछली, दही लेकर रसोई में पसीने-पसीने होती थी। हमेशा पैरों में आलता और माथे पर सिन्दूर का बिन्दिया रचाये रहती थी। लेकिन आज की सुचिन्ता को देखकर ऐसा नहीं लगता। अपने खाने और पत्नी के पहनने के बारे में अनुपम की नजर समान रहती थी। सुचिन्ता का चौड़े किनारी वाली साड़ी के अलावा और कोई दूसरी साड़ी पहनना अनुपम को पसन्द नहीं था। अनुपम का शौक था कि उसके दैनिक उपभोग की सारी चीजों में विलासिता झलके।

शायद विलासिता के इस शौक का बोझ ढोते रहने के कारण ही सुचिन्ता इतनी विमुख हो गयी होगी। उसके बेटा का भी माँ की ही आदत और रुचि मिली थी।

सुचिता के अखबार पढने बैठ जाने के बाद ही निरुपम, नीलाजन और इद्रनील की नीद टूटती थी ।

उठन के बाद वे तीनो मेज के चारो ओर आकर बैठ जाते थे । सुबल चाय ले आता था । सुचिता उसे कप मे ढालकर आगे बढा देती थी । अपने बेटा से पूछती, "एक और बिस्कुट लोगे ?" 'टोस्ट क्यो छोड दिया ?" "चाय सारी की सारी पडी रह गयी ।" उनका भी जवाब होता, "एक दे दो ।" "मन नही कर रहा है ।" "चाय कडी लग रही है ।"

अखबार सभी पढते थे लेकिन उसकी खबरो को लेकर आपस मे कभी बहस नहीं करते थे ।

नीचे की मजिल मे काम करते-करते कभी-कभार नौकरानी सध्या सुबल से पूछ बैठती, "दोना वक्त आती-जाती हूँ लेकिन कभी किसी की आवाज क्या नही सुनायी पडती ?"

सुबल थोडे म कहता, "इस मकान का खामोशी ने निगल लिया है ।"

यह मकान पूरी तौर से गूगा ही हो गया था । जिस समय उनकी गाडी वहा पर आकर रुकी, उस समय तक न तो सुचिन्ता अपने कमरे से बाहर निकली थी और न उनके बेटो की ही नीद टूटी थी ।

सुबल ने भी उसी समय दूध लेने के लिए दरवाजे का एक पल्ला खोला ही था । बोतल थमाकर दूध वाला तो चला गया लेकिन सुबल नही लौट पाया । उसने देखा गाडी की महिला सवारी अपनी गदन बढाकर इसी मकान के नेमप्लेट को देख रही थी ।

"यही है अनुपम कुटीर ।'

निश्चित होकर वह गाडी से उतर आयी । फिर गाडी म हाथ बढाकर बोली, "पिताजी, उतर आओ ।"

गाडी से एक प्रौढ सज्जन उतरे । वे थोडे नाटे कद के थे जिनके सिर के बीचोबीच गोल खल्वाट था, कनपटी के बाल धूसर हो गये थे और जान कैसी असहायता की छाप उनके चेहरे पर थी ।

साहब अस्वस्थ है, यह तो सुबल समझ गया लेकिन ये लोग हैं कौन, यह उसकी समझ म नही आया । इतने दिन काम करते हा गये, लेकिन पहले कभी उसन इन्ह नही देखा था ।

लडकी के दबग स्वभाव को समझने मे सुबल को कतई देर नही लगी, क्याकि उसने बिना किसी सकोच के आदेशात्मक स्वर मे सुबल से कहा था, "एक सूट-केस और बैडिंग है उसे ले आओ । और—" दस रुपये का एक नोट उसकी ओर बढाते हुए बोली थी, "मीटर देखकर भाडा भी चुका देना । माँ जी तो अन्दर ही होगी ।'

मुँह से कुछ न कहकर सुबल ने स्वीकारात्मक भाव में सिर हिला दिया।

लड़की अपने पिता का हाथ पकड़कर बिना किसी निर्देश के आगे बढ़ आयी और सीढ़ी से चढ़कर ऊपर चली गयी। अपने हाथ में सूटकेस और बेडिंग थाम सुबल चकित होकर उन्हें देखता रह गया।

सीढ़ी से चढ़ते ही सामने पड़ी मेज-कुर्सियाँ नजर आयीं।

इन्हीं पर सुचिन्ता और उनके बेटे बैठकर चाय पीते और अखबार पढ़ते थे।

"पिताजी, तुम यहीं बैठ जाओ।"

उसने बैठने का इशारा किया।

उस व्यक्ति ने असहाय दृष्टि से देखकर कुछ सशंकपूर्वक कहा, "देख लिया न बेटी, यहा कोई नहीं है। जो यहा थे, वे सब मर गये। फिर तुम मुझे लेकर यहाँ क्यों चली आयी?"

"तुम भी कैसी बातें करते हो पिताजी। सुचिन्ता बुआ अभी जीवित हैं।"

"गलत कह रही हो नीतू," उस व्यक्ति ने जिद भरे स्वर में कहा, "कोई नहीं है। सब मर गये हैं।"

नीतू अथवा नीता ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा, "छि पिताजी क्या ऐसी बातें कही जाती हैं। जरा बताना तो ऐसी बातें सुनकर सुचिन्ता बुआ क्या सोचेंगी?"

"ऐं, कुछ सोचेंगी?"

लगा जैसे वे डर गये हों।

"बिल्कुल। आखिर वे जीवित हैं, स्वस्थ हैं।"

अभी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि सुचिन्ता के कमरे का दरवाजा खुला साथ ही इस गूँगे मकान में एक तीखा आर्तनाद गूँज गया,—"कौन हो?"

"मैं हूँ बुआजी!"—नीता ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श करते हुए कहा, "आखिर हम आपके पास आना पड़ ही गया।"

"आना पड़ गया? मेरे पास आना पड़ गया!" सुचिन्ता की आँखों में एक डर समा गया, "आखिर क्यों?"

"वाह! क्या हमें नहीं आना चाहिए था?"

अचानक सुचिन्ता भी नीता के पिता की तरह ही असहाय दिखने लगी थी। अथवा हतप्रभ हो गयी थीं। शायद इसीलिए कुछ सकोचपूर्वक वे बोलीं, "बिना कोई खबर दिये हुए? यहाँ ही क्या? तुम्हारे तो कई नाते-रिश्तेदार भी इसी शहर में रहते हैं।"

कोई जवाब देने के पहले ही नीता अचानक चौंक पड़ी। उसने अपनी पीठ पर मृदु कोमल भारी हाथ का स्पर्श महसूस किया। साथ ही उसने सुना, "देख लिया नीतू, मैं झूठ नहीं कहता था कि हमारा कोई नहीं है, सब मर गये हैं।"

"ओह पिताजी ! ऐसी बातें नहीं कहते । अभी सुचिता बुआ जीवित है, स्वस्थ हैं । तुम्हारे सामने ही तो खड़ी हैं ।"

"मुझे बेवकूफ बना रहे हो नीतू ? वह सुचिन्ता क्यों होने लगी ? सुचिन्ता के पति के पास काफी रुपये हैं । सुचिन्ता की देह पर ढेरों गहने हैं ।"

"उनके सारे गहने चोरी हो गये हैं ।"

"चोरी हो गये ?" वह थोड़े से परेशान लगे लेकिन फिर नाराज होकर बोले, "तो आखिर वह दुबारा खरीद क्यों नहीं देता । कैसा पति है वह ?"

"देंगे, जरूर देंगे । तुम तो आ ही गये हो, अब सब ठीक हो जायगा ।"

"वाकई, सब ठीक हो जायेगा ?"

"बिल्कुल ।"

सुचिन्ता अपने दरवाजे से हटकर आगे बढ़ आयी । अब तक वे दरवाजे के दोनों पल्लों को तुरन्त बन्द कर देने वाली मुद्रा में उन्हें दोनों हाथों से पकड़े हुए खड़ी थी ।

अनुपम कुटीर की हवा कुछ बोझिल हो उठी । बेहद धीमी आवाज में सुचिन्ता ने पूछा, "कितने दिनों से यह हाल है ?"

"कुछ ही दिन हुए, धीरे धीरे करके—" नीता ने कातर होते हुए कहा, "बुआ मेरी थोड़ी मदद करनी होगी ।"

"मदद ! तुम्हारी मदद करनी होगी ।"

"हां बुआ । पिताजी को स्वस्थ करने के लिए ।"

सुचिता ने असहायता भरे स्वर में कहा, "लेकिन मेरे बेटे क्या सोचेंगे ।"

यह कोई प्रश्न नहीं था, जैसे सिर्फ आत्म-जिज्ञासा थी ।—

"हो जायेगा, सब ठीक हो जायेगा ।"

लेकिन नीता के स्वर में इतना आत्मविश्वास किस बात का था ।

क्या नीता ने सुचिता के बेटों के बारे में नहीं सोचा था ? उनके विरोध को क्या नीता संभाल सकेगी ?

"तुम लोग आपस में फुसफुसाकर कैसी बातें कर रहे हो ?"—गंजे सिर वाले व्यक्ति ने पूछ लिया ।

"कुछ नहीं पिताजी, बुआ पूछ रही हैं, तुम नाश्ते में क्या लेते हो ?"

"पूछ रही है ? क्या ?" वे अपनी भौंहे सिकोड़ते हुए बोले, "क्या सुचिन्ता को मालूम नहीं है ?"

"यह तो पुरानी बात हो गयी पिताजी, क्या अब तुम डाक्टर की राय के अनुसार नहीं चलते ?"

"अरे हां, हां !" और वे अपने सफेद दांतों को झलकाकर हँसने लगे । बोले, "देख लिया सुचिता, मैं भी कितना भुलक्कड़ हो गया हूँ । लेकिन क्या

तुम वाकई सुचिन्ता हो ? पहले वाली सुचिन्ता ? सुचिन्ता तो आभूषणो से लदी रहती थी।"

अब तक सुचिन्ता के तीनो बेटो की भी आँखें खुल चुकी थी, अपने-अपने कमरो के दरवाजा के पर्दों को सरकाकर वे सब चकित होकर खड़े हुए थे। यह जरूर था कि सुचिन्ता की तरह वे सभी 'कौन ?' कहकर चीख नहीं पडे थे। उन्हे देखकर सिर्फ यही लगता था कि वे सब जैसे अपने-अपने कमरो से बाहर निकलना भूल गये हो और चकित होकर सोच रहे हो—

ये कौन है ?

ये कब आये ?

इनके यहाँ आने की बात क्या उनमे से किसी को मालूम थी ?

इन वृद्ध सज्जन को क्या कभी उन लोगो ने पहले भी देखा था ? लगता तो है, वही जब एक बार दिल्ली या आगरा कही घूमने गये थे। हाँ, याद आया दिल्ली मे ही। कही घूमने जाते हुए सुचिन्ता अचानक ठिठक गयी थी, सामने से आने वाले सज्जन को देखकर वे 'कौन' कहकर चीख पडी थी।

ठिठक तो वे सज्जन भी गये थे साथ ही उनके चेहरे पर भी समान बेचारगी का भाव फूट पड़ा था। क्या यह वही सज्जन है ? या सिर्फ भाव साम्य है ?

शायद वही होगा।

लेकिन—

उसके बाद जाने क्या हुआ ?

ठीक से याद नही। शायद अनुपम शोर मचाते हुए नजदीक चले आये थे। माँ आगे बढ गयी थी।

लेकिन यह लडकी ?

नही, इसे तो इन लोगो ने पहले कभी भी नही देखा।

"कौन है, माँ ?"

इन्द्रनील कमरे से बाहर निकल आया, माँ के पास आकर उसने बहुत धीमी आवाज मे पूछा।

"कौन है, माँ ?"

"कौन हैं।"

सुचिन्ता क्या कहे, समझ नही पायी ?

कौन-सा परिचय दे ? देने को है भी क्या ? सुचिन्ता मित्तिर के किस तरह के रिश्तेदार हो सकते हैं ये सुशोभन मुखर्जी ?

यह लडकी सुचिन्ता को ऐसे संकट मे फँसाने के लिए क्यो चली आयी ? जाने क्या नाम है उसका। नाम ? नाम तो वाकई नही मालूम। पूछें क्या ?

फिलहाल सुशोभन ने ही संकट से मुक्त किया। इस लडकी का नाम पूछने

की असुविधा से, साथ ही इन्द्रनील के प्रश्नो का जवाब देने की विपत्ति से भी। अपनी कन्या की हथेली पकडकर डरे हुए से उन्होंने पूछा, "नीतू ये लोग कौन हैं ? कौन हैं ये ?"

नीता बहुत दिनो से सुशोभन से निपट रही थी, इसलिए न वह दुखी होती थी न परेशान। वह बडी सहजता से बोली, "तुम्हारा भी जवाब नही पिताजी ! वाकई तुम बहुत भुलक्कड होते जा रहे हो। ये लोग सुचिन्ता बुआ के बेटे हैं न ?"

"बेटे ? सुचिन्ता के इतने बेटे हैं ? मेरी सिर्फ एक लडकी है। समझी सुचिन्ता, सिफ एक। जब इतनी-सी थी, तभी इसकी मा मर गयी। इसके बाद तो खैर, सभी मर गये।" ऐसी स्थिति म सुचिन्ता क्या अपने लडको से नजरे मिलाती ? क्या वे लडको की उपस्थिति से बेखबर हो जाती ?

शायद यही सुविधाजनक होगा।

शायद इसीलिए वे भी अत्यन्त सहजता से बोली, "वाह ! यह तो खूब रही, तुम सभी को मारे डाल रहे हो ? यह जो मैं हूँ। क्या मैं मर गयी हूँ ?"

"अरे हा ! हा ! तुम तो जिन्दा हो।"

सुशोभन आश्वस्त हुए।

लगा सुचिन्ता के बेटे भी आश्वस्त हुए। उन्होने सोचा, मा के कोई सम्बन्धी होंगे। सम्बन्ध जरूर बहुत दूर का होगा, तभी इन लोगो ने इन्हे पहले कभी नही देखा, न सुना। पूछा कुछ पागल-वागल लगता है। लेकिन ये लोग यहाँ आये क्यो ? क्या इन लोगो के यहाँ आने की बात थी ? और इस बात को सिफ सुचिन्ता ही जानती थी ? ताज्जुब है। और यह लडकी भी कब से सुचिन्ता के इतना करीब हो गयी थी ?

नाम पूछने की असुविधा से सुशोभन ने मुक्ति दिला दी थी। इसीलिए सहज होकर सुचिन्ता ने पूछा, "इतनी सुबह तुम लोग किस गाडी से आयी हो नीतू ?"

नीता हँस पडी, "उस दुर्भाग्य की कहानी को अब मत पूछिए बुआ। हम लोग क्या आज आये हैं ? रात भर तो वेटिंग रूम मे पडे रहे।"

"आखिर क्या ?"

"क्या करती ? आने की बात तो शाम सात बजे की थी। गाडी तीन घटे लेट आयी। उतनी रात को कहा मकान ढढती फिरती, यहाँ पहले कभी आयी भी नही थी।"

"ओ हो, तब तो कल रात तुम लोगो को काफी परेशानी हुई होगी ? नीतू अब झटपट नहा-धोकर कुछ खा-पी लो—सुशोभन, तुम भी तो नहाओगे न ?"

"अगर नीतू इजाजत दे।" सुशोभन ने कहा।

"हाँ बाबूजी, तुम भी नहा लो। कल नीद अच्छी नही आयी थी।"

आवाज सुनने की आदत डालना हो प‌ जायगी। बाला, "ता क्या नही सकूगा ? कहिए क्या लाऊँ ?"

"जा भी मिले। रसगुल्ला ! रसगुल्ला हा ले आना। रुपये दूँ ?"

"जी, अभी मेरे पास है।"

सुवल तजो से साढियाँ उतरने लगा। सहसा नालाजन को तीखी झल्लाहट उसकी पीठ पर मुक्के जैसी आकर लगी, 'इनका इस तरह से बीच रास्ते मे क्यो रख गया।' इनको से उसका मतलब वहा सूटकेस और विस्तरबद से था।

क्या गूगा मकान बालने लगा ?

मुखरित हो उठा ? चचल हो उठा ?

कुछ ही देर बाद सुचिता के कमरे मे नीलाजन न प्रवेश किया।

'यह बात हम लागो को पहल से बता दने से क्या नुकसान हो जाता मा। यह तो तय था कि हम लोग मना नहा करत।'

वेटे के इस अप्रत्याशित अभियाग से क्या सुचिन्ता के चौकने की बारी थी ? या अपन का आहत महसूस करना चाहिए था ? इसी बात के लिए क्या वे सारे समय खुद को तैयार नही कर रहा थी ? क्या उन्होने नाता के सामने सबसे पहले खुद हा से यह असहाय सवाल नही पूछा था—"मरे बटे क्या सोचेंगे ?"

वे बाली, "तुम गलत समझ रहे हो नीलाजन, उनके आन का पता तो मुझे भी नही था।"

"क्या यह एक विचित्र किस्म का अविश्वसनीय घटना नही लगती ?"

सुचिन्ता न सिर उठाकर देखा, उसका सौम्य शिष्ट लडका सहसा न जाने कैसा अशिष्ट लगने लगा था। इसके बावजूद उन्होने स्वय को सयत रखा, बाली, "दुनिया मे न जाने कितनी अविश्वसनीय घटनाएँ घटती रहती हैं, इसको भी उसी तरह की एक घटना समझ लो।"

"उनके तो दिमाग मे भी कुछ गडबडी लगती है।"

"हाँ, मानसिक रोग है। दवा कराने के लिए कलकत्ता आय हैं। लुम्बिनी मे दिखलाना है।"

"लेकिन यह मेरी समझ मे बिल्कुल नही आ रहा है कि इस काम के लिए इस मकान को ही क्या चुना गया ?"

"यह 'क्यों' तो मेरी भी समझ म नही आ रहा है।"

"क्या वाकई तुम्हारी समझ मे नही आ रहा है ?" यह कहकर सुचिन्ता को स्तब्ध करते हुए नीलाजन कमरे स बाहर निकल गया।

इसके काफी देर बाद जब नीता अपन पिता को लेकर बाहर चली गयी, तब सुचिन्ता अपन सबसे बड लडके के पास जाकर हाजिर हुइ। बाली, "मुझे

बिना सूचित किए ही नाता अपने पिता का लेकर यहाँ चली आयी है—क्या तुम इस बात पर यकीन नहीं करत ?"

निरुपम अपनी माँ की आर देखकर बाला, "यह बात क्या कह रहा हो माँ ?"

"कहने की बात ही हुई है। ऐसा लगता है नीलाजन यकीन नहीं कर पा रहा है। वह मन ही मन नाराज हुआ-सा लगता है।'

"नाराज हाने की क्या बात है ?"

"अगर मैं तुम लागा का बिना बताय ऐसा कुछ करूँ, जो तुम लागा के लिए असुविधाजनक हा तो वह जरूर नाराज हान का पर्याप्त कारण हागा।"

निरुपम अपनी पुस्तक म आँखें गडाते हुए बोला, "तो अगर तुमन ऐसा नहीं किया है तो सारी बाते ही खत्म हो जाती हैं।"

सुचिन्ता न अपने लडके के झुके चेहर की आर देखा, जिस पर परम निर्लिप्तता थी। जैसे अभी इसी वक्त अगर काई उसस पूछ बैठे, "तुम लागा के बीच म क्या बाते हो रही थी ?" तो वह बता भी नहीं पायेगा। बहुत सोच-विचार कर कहेगा, "क्या कहूँ, कुछ याद नहीं पडता।"

नीलाजन के व्यवहार स सुचिन्ता न अपमानित-सा महसूस किया था। लेकिन निरुपम का इस कदर उदासीनता भी क्या उनके लिए सुख और सम्मान की बात थी ? इतनी उदासीनता भी भला किस काम की ?

इन कुछ ही घण्टो म क्या सुचिन्ता का मन बदल गया था ? क्या वे अनुपम कुटीर की इस उपलब्धि को भूल गयी ? वे कटुस्वर म बोली, "लेकिन नाता को लेकर तुम्हारे मन मे कोई सवाल क्या नहीं उठ रहा है ? तुम कुछ जानना क्यो नहीं चाहते ?"

"वाह ! मुझे जानने की क्या जरूरत है ? जरूर कोई ऐसी बात होगी जिस कारण वह बडी सहजता स यहाँ चली आयी होगी।"

क्या सुचिन्ता अपने बेटे को इसी की कैफियत दन आयी थी ?

कहती, नहीं रे, ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने ता कभी उसे दखा तक नहीं। अपन स्वार्थवश वह दु साहस करके यहाँ चली आयी है। अपने पागल पिता के साथ नात-रिश्तेदारा के यहाँ जाने म उसे सकोच हुआ होगा, इसलिए इस गैर-रिश्तेदार के यहाँ उसने धावा बोल दिया है।'

या यह कहती, 'देखो तो कितनी मुश्किल है, हम लोगा की इस शातिपूर्ण गृहस्थी म—"

लकिन वह यह सब कह नहीं पायी, बल्कि इसस उल्टी बात ही कह गयी, "अब जब व यहाँ आ ही गय हैं तो उनके लिए एक कमरा तो खाली कर ही देना पडेगा।"

निरुपम ने एक बार पुन पुस्तक से अपनी नजरे उठायी, बोला, "ठीक तो है मा, जब तक जरूरत होगी, मैं नीचे के ड्राइग रूम मे आराम से रह लूगा।"

"नीचे।"

"क्या हुआ ? क्या कोई नीचे के तल्ले मे रहता नही ?"

सुचिन्ता बोली, "कोई रहता है या नही। यह नही कह रही हूँ, लेकिन इतनी अधिक असुविधा उठाने की जरूरत क्या है ? इससे अच्छा है कि इन कुछ दिना के लिए इन्द्र और तुम दोनो एक ही कमरे मे—"

यह बात निरुपम से कहने वाली नही थी। उसके स्वभाव को सुचिन्ता जानती थी। एक कमरे मे दो व्यक्तियो का एक साथ रहना निरुपम की रुचि के सर्वथा विरुद्ध था। उसका कहना था कि अगर व्यक्ति का एकात ही नष्ट हो गया तो रहा क्या ?" पहले वाले मकान म हर एक के हिस्से मे अलग-अलग कमरा नही पडता था क्योकि अनुपम के मेहमानो और नाते-रिश्तेदारा मे से कोई न कोई कभी अकेले या दुकेले घर म डेरा डाले ही रहते थे। नीलाजन और इन्द्रनील हमेशा एक ही कमरे मे लिखते-पढते-सोते रहे, लेकिन निरुपम ने कभी वैसा नही किया। दुछत्ती मे रहना पडता वह भी ठीक था, बस जो भी हो वह अपना हो। खैर, इस घर मे यह व्यवस्था कायम हो गयी थी। अनुपम ने तीनो लडको के लिए तीन कमरे बना दिए थे।

तब भी सुचिन्ता ने आज इस प्रस्ताव को निरुपम के ही सामने रखा।

ऐसा क्या किया ?

नीलाजन से नाराज होकर ?

या कि निरुपम इस प्रस्ताव से सहमत नही होगा, यह सोचकर को। या सुचिन्ता चाहती थी कि यह प्रस्ताव ही रद्द हो जाए ?

रद्द ही हुआ, निरुपम अपनी परिचित मुस्कान की छटा बिखेरते हुए बाला, "उससे तो बल्कि निचले तल्ले म रहना अधिक सुविधाजनक होगा मा।"

भगवान् ही जानता था कि सुचिन्ता क्या चाहती थी।

लेकिन अचानक हो उनका पारा गर्म हो गया। बोली "कोई क्या करता है, क्या नही करता है, इसे नही कह रही मैं ? क्या जरूरत होने पर कोई अपन कमरे मे रहन के लिए छोटे भाई को थोडी जगह नही देता ?"

एक नयी भाषा के धक्के से अनुपम कुटीर की दीवाले चौंक-सी गयी ? इसके पहले तो कभी ऐसी बात सुनने मे नही आयी थी।

"आश्चय है, इस बात से तुम इतना उत्तेजित क्या हो रही हो मा ?" निरुपम हक्का-बक्का रह गया, "मुझे नही मालूम कि इससे भी घटिया बात इस दुनिया म और कोई हो सकती है ? घर म मेहमान आये हैं, अपनी अभ्यस्त-व्यवस्था मे थोडा-बहुत फेर-बदलकर लेना होगा, यही बात है न ? इसका लेकर

एक समस्या बना लेने से क्या लाभ होगा ? मुझे तो नीचे के तल्ले में रह कर कोई असुविधा नही महसूस होगी।''

''वहाँ तुम कहाँ सोओगे ?''

''क्यो दीवान के ऊपर ? बहुत बढ़िया नीद लगेगी।''

''यह तय नही है कि वे लोग यहाँ कितने दिन रहेंगे ?'' सुचिन्ता बोला। कही वे भूमिका तो नही बना रही थी ? काफी दिनो तक उनके रहने का संभावना के सूत्र को क्या सुचिन्ता उनके सोचने समझने के साथ नही जोड़े दे रही थी ?''

लेकिन इस बात से निरुपम कतई आतंकित नही हुआ, न वह चौंका ही। बल्कि हँसकर बोला, ''उससे क्या ? अस्थायी- व्यवस्था अगर स्थायी हो भी जाए तो व्यक्ति उसका भी अभ्यस्त हो हो जाएगा।'

लेकिन सुचिन्ता को आज क्या हो गया था ? क्या उन्होने हवा से लड़ने की ठान ली थी ? इसलिए बेहद गभीरतापूर्वक बोली, ''स्थायी होने की बात लेकर इतनी दूर की कौडी लाने की कोई जरूरत नही है। खैर, ठीक है। तुमम से किसी को भी तकलीफ उठाने की जरूरत नही है, मैं ही उस ओर के छोटे वाले कमरे मे रह लूँगी।''

'छोटे कमरे' से मतलब सीढी के बगल में ट्रक सूटकेस आदि रखने वाला बाक्स कमरा था। वैसे कमरा अच्छा ही था, दक्षिण दिशा मे एक खिडकी भी थी, लेकिन गृहस्थी की सारी अतिरिक्त चीजे वहाँ ही ठुसी हुई थी।

'तुम उस छोटे कमरे मे रहोगी ?''

निरुपम चकित होकर बोला, ''उस बक्सो-पिटारो से भरे कमरे म ?''

''कुछ खाली कर लूगी। वे दो लोग हैं—एक बडा कमरा न होने से उन्हे असुविधा होगी। नीता को रात मे अपने पिता के पास ही रहना पडता है। झक्की आदमी का भला क्या भरोसा।'

निरुपम पुन हाथ की किताब पर नजरे गडाते हुए बोला, ''मेहमानो के लिए अगर तुम खुद ही इतना त्याग करना चाहती हो माँ, तो इस प्रसग को उठाने की यहा कोई जरूरत ही नही थी। ठीक ही है ! तुम जो भी करोगी उम्मीद है समझ-बूझकर ही करोगी।''

निरुपम ने पुस्तक पर सिर्फ आँखें ही नही गडायीं बल्कि उसने अपने मन को भी बाहरी दुनिया से फेर लेने की भगिमा बना ली थी।

लेकिन उसके झुके हुए चेहरे पर व्यग्यपूर्ण मुस्कान क्यो फूट पडी थी ? जिसे देखकर सुचिन्ता स्तब्ध हो गयी थी और वहाँ से लौट आयी थी।

लौटकर किसी दूसरी बात की चिन्ता किये बिना व सिर्फ यही सोचने लगी— कि निरुपम की हसी के पीछे आखिर राज क्या था ?

वे बहुत देर तक सोचती रही, इसके बाद उन्हे लगा शायद उस पुस्तक मे

ही ऐसा कुछ जरूर रहा होगा जिससे उसे हँसी आ गयी होगी, अन्यथा सुचित्रा ने ऐसा क्या कहा था कि उनके ऐसे विचित्र उदासीन लडके को भी व्यग्यपूर्वक मुस्कराने की जरूरत आ पडे ?

ऐसा सोचकर मन ही मन वे आश्वस्त हुईं ।

बहुत देर बाद काफी दिन चढे नीरा अपने पिता और इन्द्रनील को लेकर लौटी। वह इन्द्रनील को भी जबदस्ती साथ ले गयी थी। उसे ही पटाते हुए बोली थी, "चलिए न मेरे साथ, कलकत्ते के राह-घाट पहचनवा दीजिएगा। मैं तो बिल्कुल अनाडी हूँ यहाँ।"

"क्यो, कलकत्ता पहले कभी नही आयी थी ?"

"वाह! आऊँगी क्यो नही ? वह तो बाबू जी के सग उनकी बालिका बेटी होकर आयी थी। और वह भी उनके अपने रिश्तेदारो के यहा। उन लोगो ने खिलाया पिलाया, घुमाया-फिराया, फिल्मे दिखलायी। उन सभी को साथ लेकर पिता जी एक साथ तीन-चार टैक्सियो का जुलूस बनाकर कलकत्ता घूमने के लिए निकलते थे। उन दिनो रास्ता पहचानने की भला मुझे क्या जरूरत महसूस होती ?"

अनुपम कुटीर की बर्फीली ठडक को झेलकर प्रकाश की ऊष्मा को प्रवेश करते देखकर ऐसा लगा कि इन्द्रनील की जान मे जान आयी है। किसी स बातें करने का कोई मौका न पाकर शायद वहाँ उसका दम घुटने लगा था ? इसीलिए ऐसा अवसर पाकर वह खुशी से फूला नही समा रहा था। अधिक बातें करना इस घर के नियमो के खिलाफ था, शायद वह इस बात को भूल ही गया था।

इन्द्रनील ने हँसते हुए कहा, "कभी-कभी लडकिया जानबूझकर बहुत बार बालिका अथवा नाबालिका बने रहना चाहती हैं।"

"लडकियाँ क्या चाहती हैं, यह खबर अभी से आपने रखनी शुरू कर दी ? बडे लायक लडके है आप तो ?"

"लायक होने की बात तो आपने खुद ही स्वीकार कर ली है, तभी न पथ-प्रदर्शन का दायित्व भी सौंप दिया।"

"उसे कृपा ही समझिये। आपके दोनो बडे भाई तो बेहद व्यस्त रहते हैं।"

"मुझे कैसे बेकार समझ लिया आपने ?"

"किसी को एक बार देखकर ही मैं उसे पहचान लेती हूँ। भगवान ने ऐसी एक विशेष क्षमता मुझे दे दी है।"

"तब तो"—इन्द्रनील हँसने लगा—"यह साफ जाहिर है भगवान की दी हुई क्षमता भी बीच-बीच म थोडो गडबड हो जाती है।"

"ठीक है देखी जाएगी।"

सुचिन्ता अपने सबसे छोटे बेटे के खिल-खिले चेहरे की ओर चकित हो देख रही थी। इतनी बातें उसने आखिर कब सीखी ? इतनी खुशी की बात क्या थी ?

जब वे लोग घूमकर लौटे तब तो वे और भी अधिक चकित हुई इतनी। उसका कोई ठौर-ठिकाना भी उन्हें ढूँढे नही मिला।

उन्होंने पाया कि इन कुछ ही घंटों में दोनों एक दूसरे को तुम कह कर बुला लगे है।

लेकिन उन दोनों की ओर अधिक देर तक देखने का समय कहाँ मिला सुचिन्ता को, इस बीच सुशोभन उनके बहुत निकट खिसक आये थे, फुसफुसाकर कहने लगे, "देखो सुचिन्ता, तुम्हारा यह लडका तो बिल्कुल कायदे का नही है।"

सुचिन्ता ने आशंकित नजरों से देखा, ख्याल नही किया कि सुशोभन उनके कितने निकट सरक आये थे।

वे डरकर सोचने लगी, जाने क्या बात हुई कहीं पागल सोचकर इन्द्रनील ने उनको अवमानना तो नहीं कर दी ?

बिना कुछ पूछे वे सिर्फ ताकती रही।

'उसे तुम जरा डाँट देना।'—सुशोभन ने कहा, "गाडी में सारे समय वह मेरी लडकी से झगडता रहा।"

यही बात है तो फिर ठीक है।

सुचिन्ता आश्वस्त हुई।

लेकिन क्या वे पूर्णतया आश्वस्त हो पायी ? —नही हुईं। सोचने लगी—यह क्या हो रहा है ? ऐसा क्यों हुआ ?

सुशोभन की लडकी के स्वभाव से सुचिन्ता परिचित नही थी, शायद वह बेहया या वाचाल ही हो, शायद हमेशा से अपने बाप की छत्रछाया में पलने के कारण वह अपने पिता जैसी न बनकर स्वभाव में अपनी माँ जैसी बन गयी हो, जो माँ उसे पृथ्वी पर जन्म देते ही छोडकर चली गयी थी। लेकिन वे अपने लडके को तो भली-भाँति जानती थी। स्वभाव में अपने बडे भाइयों की तरह वह गम्भीर नही था लेकिन इतनी ही बात से वह इतना हलका, इतना वाचाल हो जाएगा ? किसी लडकी को देखते ही सुध-बुध खो बैठेगा ? ऐसा वे नही जानती थी।

लेकिन क्या खुद वे ही अपने आपे में थी ? क्या वे कह पा रही थी कि, छि सुशोभन इतने नजदीक आना उचित नही है। उधर जाकर बैठो।'

नहीं, वे ऐसा नही कह सकी, सिर्फ पागल व्यक्ति की इस दुश्चिंता को खत्म करने के लिए वे बोली, 'यह बात है। बच्चे तो ऐसा करते ही हैं। भूल गए, तुम्हारी दादी कहती थी, 'बच्चों का आपस में मेल-जोल और फिर आपस में

झगडा, भला इसम कोई समय लगता है। अपनी दादी की बातें तुम्ह याद नही हैं ?"

"दादी ! मेरी दादी ! मेरी दादी की बातें तुम्हे याद हैं सुचिन्ता !" अचानक आवेग मे आकर उन्होंने सुचिन्ता के दोनो बाजुओ को कसकर पकड लिया, बोले,"हाँ, कितने आश्चय की बात है ? अच्छा कहो तो मैं सारी बाते भूल क्या जाता हूँ ?"

सुचिन्ता के चेहरे पर एक उत्ताप छा गया।

कितने शर्म की बात थी।

नही, नही यह सभव नही है, कतई नही है। इस लापरवाह पागल को घर मे रखना उचित नही होगा। आज ही वे नीता से कहेगी—। "मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा था जो तुम मेरा नुकसान करन चली आयी। आखिर क्या ?" कहेगी—"तुम्हारे तो यहाँ जाने कितने नाते-रिश्तेदार है, तुम वही चली जाओ।'

वह धीरे-धीरे अपना हाथ छुडान लगी, लेकिन सफल नही हुईं। पागल की पकड बडी मजबूत होती है। सुशोभन ने उनके कधो का और जार से जकड लिया। बडे कुतूहल से बोले, "चलो चल, हम लोग अकेले म बैठकर बचपन के दिना की बातें करे।"

सुचिन्ता ने हताश हाकर नीता की ओर देखा।

नीता की नजरा मे अनुनय भरा था। फिर वह अपने पिता को पकडकर खीच लेन की मुद्रा मे उनके हाथों का पकडते हुए बोली, "पिताजी तुम भी खूब हो। इस वक्त बैठकर तुम लोग मजे से बचपन की बाते करोगे ? देखा, कितनी दर हो गयी है। क्या हम लोगो को भूख नही सतायेगी ?'

"भूख लगी है ? अरे हा, वही ता ! वही ता।" सुशाभन कुर्सी पर बैठ गये, "मुझे भी जोरो की भूख लगी है।"

"डॉक्टर तो हर बार बस यही एक बात कहते ह।"

नीता सिर झुकाये बोली, "कहते है यह एक प्रकार का मनोविचलन है। एक विशेष—खास तरह का। हमेशा शून्यताबोध हाता है, लगता है इस दुनिया मे अपना कोई नही है, अकेला छोडकर सब चले गये हैं, सब खत्म हो गये है। जो व्यक्ति सामने मौजूद है, उसी के मृत्यु-शोक म व्याकुल हो जाना। यही सब बातें। मरी लडकी मर गयी है, ऐसा कहकर बाबूजी भी अचानक एक दिन फूट-फूटकर रोने लगे। जाने कितनी तरह से समझाना पडा। हालाकि ऐसी हालत सिफ दो-चार दिन तक ही रही। हर अच्छे डाक्टर को दिखलाया गया, ठण्डी जगहो म भी ले गयी—लेकिन उन्ह पसन्द नही आया। बाहर निकलते ही 'गिर जाओगी,

गिर जाओगी। यह कहकर हिलने लगते थे। बड़ी शर्म आती थी। उनका कहना है—एक बार सुचिन्ता से—लेकिन यहाँ एक ही बात सभी डॉक्टर कहते हैं, "रोगी को स्नेह ममता से भरपूर रखना ही एकमात्र दवा है। उसे यही महसूस कराते रहना कि तुम्हारे परिवार के सभी लोग जीवित हैं, किसी की भी मृत्यु नहीं हुई है, कोई भी तुम्हें छोड़कर नहीं गया है।—'

सुचिन्ता ने थोड़े कड़े स्वर में कहा, "लेकिन तुम्हें यही संभव होगा, ऐसा क्यों तुम्हारे दिमाग में कैसे आ गयी? तुम मुझे न जानती हो, न पहचानती हो, इसके पहले कभी मुझे देखा तक —

अपना चेहरा उठाकर नीता थोड़ा मुस्कराते हुए बोली, 'इस बिना भी क्या जान-पहचान नहीं होता?'

"क्या मालूम। मुझे तो यह बात ही नहीं समझ में आ रहा है। बेहतर तो यही होगा कि दुनियाँ में उनके सभी कोई है, यह समझाने के लिए इन्हें उन सभी के बीच रखा जाय, जो हर तरह से स्नेह-ममता में इन्हें आबद्ध कर रख सकें।"

नीता ने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाया, 'ऐसा संभव नहीं। डर सारे लोगों को देखकर वे डरते हैं। एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जिसमें रोगी के मन की सारी शून्यता को भर सकने की क्षमता हो।

सुचिन्ता का पारा एकाएक चढ़ गया, जो सिर्फ नीता के पक्ष में ही नहीं उनके पक्ष में भी सोचा नहीं तक जा सकता था। गुस्से में वे बोलीं, "वह एक व्यक्ति मैं ही सकती हूँ, ऐसा बे-सिर पैर की बातें तुम्हें किसने बता दी।"

नीता ने कुण्ठित होकर कहा, "किसी ने नहीं, मैंने खुद ही सोचा था। मैं सोचती थी बुआ, आप असुविधा तो महसूस करेंगी, हैरान भी शायद होंगी लेकिन नाराज हो जाएँगी, यह नहीं सोचा था।

सुचिन्ता का पारा नीचे आ गया।

वे व्याकुल होकर बोली, "नीता, तुम मेरी कठिनाई नहीं समझ पा रही हो। मेरे लड़के जवान हो गये हैं।"

"इसी भरोसे तो आयी हूँ। वे इसे जरूर समझेंगे। वे जरूर इस थ्योरी को जानते होंगे कि मनोविचलन की एकमात्र दवा थोड़ा स्नेह-कोमल मन का स्पर्श है, जो बनावटी न हो, जो किराये पर ली गयी नर्स की सेवा न हो और अगर आपके लड़के समझ-बूझकर भी असन्तुष्ट हो जाएँ तो उसमें आपका नुकसान आखिर कितना होगा?"

सुचिन्ता की हँसी में क्षोभ था। बोली, 'नुकसान को समझने का पैमाना तुम्हारे बूते का नहीं है नीता। उम्र होने पर, बच्चों की माँ होने पर ही इसे

समझोगी। अपने से बड़ों की तुलना में घरों से छोटों का लिहाज अधिक करना पड़ता है।"

"इस बात को एकदम से समझ नहीं पा रही हूँ, ऐसी बात नहीं है बुआ," नीता बोली, "लेकिन इसे भी समझ गयी हूँ कि आप लोग बहुत दिनों से एक-दूसरे का कितना प्यार करते रहे हैं, इसलिए यह जो नुकसान—"

सुचिन्ता का चेहरा पुनः रक्तिम हो उठा। वे बोली, "अपने से बड़ों के बारे में हम लोग तो कभी इस तरह से नहीं कहते-सुनते थे।"

बिना विचलित हुए नीता बोली, "क्यों प्यार ही तो करते थे? प्रेम व्यापार को इतना भयानक, इतना गोपनीय बनाने की जरूरत ही क्या है? आपने अपने जीवन में किसी से प्रेम किया था, इसे आपके लड़के यदि जान भी लें तो क्या होगा? अगर आपके प्रति उनके मन में श्रद्धा की भावना है, सहानुभूति है, तो जरूर उनमें आपके मन के अकेलेपन को समझने की भी क्षमता होगी ही।"

"बस, इसी एक जगह पर पति और पुत्र कभी सहानुभूतिशील नहीं होते नीता। ऐसा हो ही नहीं सकता।"

"ठीक है वे अभी इसके आदी नहीं हैं। उनके दृष्टिकोण में बदलाव लाने की जरूरत है। और वह बदलाव हम लोगों को ही लाना होगा। मैं सिर्फ यहीं की बात नहीं कर रही हूँ बुआ, सभी की बातें सोचकर ही कह रही हूँ। मैं इस पर गहराई से विश्वास करती हूँ, तभी तो साहस करके आप तक आ सकी हूँ। जानती हूँ प्यार की ताकत से बहुत कुछ संभव होता है। उस ताकत के भरोसे आप बहुत कुछ ठुकरा सकती हैं। और उसी ताकत के बल पर आप किसी को पथ से, ध्वंस के पथ से किसी व्यक्ति को लौटा सकेंगी। यह मेरा आप से नहीं व्यक्ति की मानवीयता से निवेदन है। जरूरत है, किसी असहाय व्यक्ति की सेवा शुश्रूषा करने जैसा ही थोड़े से स्नेह और ममता की। आपको इसके लिए न कोशिश करनी पड़ेगी, न झूठा प्रदर्शन और न अभिनय ही।"

हताश होकर सुचिन्ता बोलीं। मुझे न कोशिश करनी पड़ेगी न झूठा प्रदर्शन, यह खबर तुम्हें मिली कहाँ से? बस, यही नहीं समझ पा रही हूँ।"

"बुआ, मैं आपको बहुत दिनों से जानती हूँ। पिताजी द्वारा बहुत सावधानी से छिपा कर रखी गयी जगह में मैंने आपकी तस्वीर, आपका पता और आपके नाम से भरे हुए पन्ने देखे थे। एक पन्ने पर तो लगातार यही लिखा था— 'सुचिन्ता के नये मकान का पता।"

सुचिन्ता शायद इस बार लज्जित होना भी भूल गयी थी। आँसुओं भरी यह कहानी उन्हें विह्वल कर रही थी, उन्हें विवश बना रही थी। शायद इसीलिए वे धुंधली नजरों से नीता को बार टकटकी लगाए हुए देख रही थीं।

नीता पुनः बोली, "इधर बहुत अभ्यस्त भी हैं न। घर में पूरी और न

मरा दखल होने के नारण ही उसका छिपाया हुआ अतनापन जब तब मेरी नजरो म पडता रहा। एक दिन मुझे नोनी सूझी। मैंने बडे हल्के लहजे म पूछा,' पिताजी य सुचिन्ता कौन है ?'

तब तक वे ऐसे नही हुए थे, सिर्फ सब कुछ भूलने लगे थे। तब समझ नहीं पाती थी कि पिताजी का दिमाग अब गड्बड हो रहा है। सोचती थी, पिताजी ज्यादा ही भुलक्कड होत जा रहे हैं। मरा प्रश्न सुनकर चौंक गये, बोले,"सुचिन्ता की बात तुम्हे किसने बतायी ?"

मैंने बडे भोलेपन स कहा, "तुम्हारी मेज पर एक कागज के टुकडे पर कोई पता लिखा हुआ देखा था—'सुचिन्ता मित्र, अनुपम कुटीर। कौन हैं य ?"

बिना कोई जवाब दिए पिताजी परेशान होकर बोले, "कहाँ है, कहाँ है वह कागज ?'

मैं बोली, "उसे तो सफाई करत समय मैंने फेंक दिया।"

"फेंक दिया।"—कहकर थोडी देर व मौन रहे, इसके बाद बोले,"सुचिन्ता के बारे म जानकर तुम्हे कोई लाभ नही होगा नीतू।'

मैं तो हमेशा ही बेपरवाह रही हूँ, मैं बोला, "वाह, तुम्हारी जान-पहचान के किसी को भला मैं क्या नही पहचान पाऊँगी ?" वे बोले, "मेरे सारे परिचितो को तुम पहचानती हो क्या ? क्या मेरे दफ्तर के भी सभी लोगो को पहचानती हो ?'

इस तर्क के आगे मैंने हार मान ली। लेकिन 'सुचिन्ता' कौन है, यह स्पष्ट हो गया। इसके बाद तो क्रमश रोग पकड मे आने लगा, वे बदल गये, अपने पर नियन्त्रण खो बैठे। बच्चो की तरह हो गये। उसके बाद फिर एक दिन—बिना किसी से कुछ पूछे अकेले पूरे घर को अस्त-व्यस्त करते हुए व जाने क्या खोजने लगे। नौकर-चाकर डाँट खाकर सामने से हट गये। फिर जैसे हताश होकर पिताजी मुझसे पूछने लगे, "सुचिन्ता की सारी चिट्ठियाँ कहाँ चली गयी, बतला सकती हो नीता ? वही रेशमी फीते से बँधा हुआ चिट्ठियो का बडल। तब से ढूढ रहा हूँ, लेकिन कही मिल नही रहा है। बेटी तू ही जरा ढूढ दे, मुझे उनकी बडी जरूरत है। उनके खोने से मेरा काम नही चलेगा।"

एक बार फिर सुचिन्ता का कान से लेकर कपोल तक सारा चेहरा दहकने लगा। उन्होने तीखे लहजे म पूछा,"और उस बात पर तुमने यकीन कर लिया ?"

"किस बात पर ?'—नीता उनके आकस्मिक बिगड पडने का असली कारण नही समझ पाई।

"वही, उन चिट्ठियो की बात। जिन्दगी भर मैंने कभी उन्हे कोई पत्र नही लिखा।"

"कभी नही लिखा ?"

नीता का आंखो मे ढेरा प्रश्न थे और कहन मे अनत विस्मय था ।

'नही, बिल्कुल नही । तुमने भी तो ढूढा था, क्या मिली थी ?"

नीता ने आहिस्ते-आहिस्ते सिर हिलाते हुए कहा, "नही ।'

"तब फिर तुमने यह क्यो नही सोचा कि वह एक पागल आदमी का पागलपन हो था ।"

नीता बुझे हुए स्वर मे बाली, "तब तक इतना समझ नही पायी थी । इसके अलावा साचा, इसमे ऐसा असभव भी क्या है ? इसी से ढूढने लगी, बहुत ढूढा, लेकिन चिट्ठिया मिली नही । पिताजी ने चीख-पुकारकर आसमान सिर पर उठा लिया । बोले, "भगा दूँगा सबको । इस घर से सबको निकाल दूँगा । सब लोग अव्वल दर्जे के चोर हो गय हैं ।" उन्हे जबर्दस्ती नीद की दवा देकर सुलाया गया । इस घटना के दूसरे दिन से वे बिल्कुल ठढे पड गये, निस्तेज हो गये । वरन् वही एक बात उनके मन म समा गयी कि "सब मर गये हैं ।"

लगा सुचिन्ता को भी पाला मार गया, वे बुझ-सी गयी । कहने लगी, "इसका मतलब था कि दिमाग उसी समय से एकदम काबू से बाहर हा गया था । इसीलिए शायद सहारे के लिए ही वे चिट्ठियो का एक कल्पित बण्डल ढूढते फिर रहे थे ।"

"शायद यही हो ।"

"शायद नही नीता, यही सच है । यकीन करा, हम लोगो ने एक दूसरे को कभी काई पत्र नहीं लिखा ।"

"ताज्जुब है । ' नीता ने गहरी सास ली ।

"लेकिन बताओ, मुझे इस समय क्या करना होगा ?"

"कहा तो, सिर्फ अपने पास हम लोगा को कुछ दिना के लिए आश्रय देना होगा । अगर बाबूजी के किसी भी आचरण से आपको ठेस लगती हो तो उसे एक पागल का पागलपन समझकर ही माफ कर दीजिएगा । सभव है, आपके पास कुछ दिन रहने से ही बाबूजी स्वस्थ हा जाएँ ।"

अनुनय फूटा पड रहा था नीता के स्वर से ।

सुचिन्ता के चेहरे पर भी एक बुझी हुई मुस्कान थी ।

"नीता तुम अभी बच्ची हो, इसलिए नही समझती । मैं माफ कर सकती हूँ, लेकिन उनके ऐसा करने का मेरे लडके भला क्या माफ करगे ?"

"आपकी उम्र का काई भी सम्मान नही है क्या ?"

नीता तीव्र प्रतिवाद कर उठी ।

एक बार पुन हँस पडी सुचिन्ता । उम्र का सम्मान और औरता की ? अगर हो भी तो अस्सी वप से पहले नही ।"

"खुद औरत हाकर भा आप ऐसी आत्म-अवमानना भरी बातें कह रही हैं ?"

“न कहने से ही क्या चीजें गलत हो जाती हैं नीता ? मेरी तस्वीर की बात कह रही थी न ? इसी तरह की एक छोटी-सी तस्वीर मेरे पास भी थी । काफी अरसा हो गया । आखिर हम लोग उन दिनों के संवेदनशील युग की सतान हैं न ।” सुचिन्ता थोडा मुस्करायी, “समाज से विद्रोह करने और माँ-बाप को शर्मिन्दा करने का दु साहस करने की बात हम लोगो ने कभी सोची ही नही, ‘समाज के चरणो म हमने आत्म-बलिदान किया’, ऐसी ही एक भावुकता भरी बात सोचकर स्मृति-चिह्न के रूप म उन तस्वीरो का विनिमय हुआ था । किसी क्षण की असावधानी से वह तस्वीर किसी दूसरे के हाथो म पड गयी ।” सुचिन्ता पुन मुस्करायी, ‘ तुम लोग इस युग की लडकियाँ शायद विश्वास नही कर पाओगी कि मुझे उस तस्वीर को उनके सामने खुद अपने हाथो से जलाना पडा था ।

आग म डालकर नही, बल्कि मोमबत्ती की लौ म । और देखना पडा अपना आँखो से झुलसते हुए उस चेहरे को, अपनी आँखो के सामने राख होते हुए । सुनकर सिहर उठी न ? नही सिहरने लायक इसम कुछ भी नही है । ऐसी बात नही कि वे कोई भयकर अत्याचारी व्यक्ति थे, बल्कि उनके पवित्रता आदर्श ही कुछ उस तरह के थे । मुझे उन्होने तकलीफ देना नही चाहा था, सिर्फ चाहा था मुझे हिन्दू नारी की पवित्रता की शिक्षा देना ।'

“इस पर भी आप उनके साथ अपनी गृहस्थी की गाडी चलाती रहीं ?”

“देखो, इस पागल लडकी की बातें । गृहस्थी न चलाती तो जाती कहाँ ? इसके अलावा इतना तो भरोसा था ही कि आदमी सरल है ।”

“लेकिन आपके लडके तो सरल नहीं हैं ?”

“नहीं हैं, इसीलिए तो ज्यादा डर है ।”

“लेकिन डरने की क्या बात है ?” नीता ने बलपूर्वक कहा, “मैंने कभी अपने पिताजी के दुर्बल चरित्र की बात सोचकर उनसे घृणा नहीं की । वे भी ऐसा क्या करेंगे ? व्यक्ति सिर्फ अपने परिवार की ही सम्पत्ति है, उसके अलावा उसका कोई अन्य व्यक्तित्व नही है, ऐसा ही क्यो सोचा जाय ? हर व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के अलावा भी उसका अपना कुछ होता है, कम से कम हो सकता है, उसके उसी मानसिक जीवन को क्या परिवार के हर सदस्य का सम्मान नही देना चाहिए ? अब भले ही वह आध्यात्मिक जीवन हो, शिल्पी जीवन हो या प्रेम सबंधी का हो ।

“अगर हर व्यक्ति उचित-अनुचित समझकर चलता तो यह धरती स्वर्ग हो गयी होती नीता ।”

“बुआ हमे समझना होगा । औरो के अचानक असतुष्ट हो जाने के डर का मन से निकाल देना होगा । ध्यान न देते रहने से ही आप देखियेगा कि तीखे दाँत

आपने काफी हद तक घिस दिए हैं। समाज के सारे बदलाव इसी तरह से होते हैं। ऐसे ही ध्यान न देते रहने के कारण।"

"लेकिन भले-बुरे का भी विचार करना ही होगा। सिर्फ उपेक्षा को ही तो बहादुरी नही माना जा सकता।"

"वह तो जरूरी है बुआ। अच्छा वही है जिससे अपना विवेक पीडित न हो और बुरा वह जिसमे अन्तरात्मा आहत होती है। यह मत सोचिएगा कि मैं अपने स्वार्थ के कारण ऐसी बाते कह रही हूँ। बहुत-ही सहज ढग से कह रही हूँ, जिसे आपने बहुत दिनो से चाहा है इस उम्र मे, उसकी जिंदगी बचाने के लिए दिय गये स्नेह-साहचय से क्या आपका विवेक आपको पीडित करेगा ? सोच लीजिए, अगर विवेक पीडित करे तो मैं आपसे अनुरोध नही करूँगी। लेकिन बुआ, क्या किसी को डूबते हु ! देखकर भी उसे बचाने के लिए क्या कोई यह सोचकर द्विधाग्रस्त होता है कि डूबने वाला आदमी है या औरत, बच्चा है या कोई बूढा ?"

"तुलना तो जाने कितनी तरह की हो सकती हैं नीता, लेकिन युक्ति और तुलना एक हो तो नही होती। मैं क्या कहकर सुशोभन का परिचय दूँगी ? अगर कोई पूछ बैठे, "कौन हैं वे ? वे यहा पर क्या रह रहे है तब ?"

"बुआ, ऐसे कुतूहली रिश्तेदारो का जमघट आपके यहा तो नही रहता ?"

सुचिन्ता चकित होकर बोली, "जमघट नही रहता, यह तुमसे किसने कहा ? यहा के बारे म तुम क्या जानती हो ?"

"बहुत कुछ।" कहकर नीता हँसने लगी।

"तुम हाथ देखना जानती हो, इस बात पर तो मैं विश्वास नही कर सकती। लगता है इन्ही दो घटो म यहाँ की सारी बाते मेरा मूख लडका तुम्हे बता चुका है।"

"मूख नही, भोला-भाला।" नीता पुन हँसने लगी, "इस घर मे कोई बात ही नही है, उसने इसी की बात की है। आप सभी की गभीर-मुखता के कारण बेचारा बहुत दुखी रहता है। कहता है, इस घर मे हम सभी एक दूसरे से बढ-चढकर सभ्य दिखने की हरकते करते रहते हैं। इसम बडे भैया फस्ट, मा सेकेड, मँझले भैया थड और मैं फिसड्डी रह गया हूँ। लेकिन कही इस आश्रम को तक्लीफ न हो जाय इसलिए जबदस्ती मुझे मौनव्रत का पालन करना पडता है।"

सुचिन्ता क्या कहे यह न समझ पाकर ही शायद वह बोली, "हा, वह हमेशा से ही कुछ भिन्न प्रकृति का रहा है। वह कुछ-कुछ अपने पिता की आदतो पर गया है।"

नीता हँसते हुए बोली, "गगा-गोमुख, किसमे कौन-सी धारा सुप्त पडी हुई है, इसे कोई नही जानता। निर्झर का स्वप्नभग अचानक ही होता है।"

नीता मन ही मन बोली, "तुम क्या मेरे इस शात, स्तब्ध हिमालय की स्तब्धता को भग करके यहाँ निझर का स्वप्नभग करने आयी हो ?"

सोचने लगी सुचिन्ता, "जाने कैसी लडकी है ? क्या कुछ अधिक चतुर है ? या कुछ अधिक बेहया है ?"

बचारा इद्रनील नासमझ है।

इद्रनील की बात सोचकर वे मन ही मन चितातुर हो उठी।

"सुबह तो आपसे जान-पहचान ही नही हो पायी" निरुपम के कमरे मे घुसते हुए नीता बाला। बिना कहे ही वह एक कुर्सी पर बैठ गयी, "बस वही देखना भर हुआ।"

निरुपम न मन ही मन साचा यह कैसी गले पडने वाली लडकी है ! फिर बोला, "परिचय हाना क्या इतना आसान है ?"

"बिल्कुल आसान नही", नीता हँस पडी, "लेकिन आनन्द तो कठिन काम म हो आता है।"

निरुपम अपने कमरे म है और उसके हाथ म कोई किताब नही है, ऐसा प्राय देखने मे नही आता। आज भी वैसा ही हुआ था। अपने हाथ की पुस्तक पर नजरे गडाते हुए बोला। "बातचीत करने म इद्र माहिर है।"

"इसके मतलब आप माहिर नही हैं।" नीता अकुठित स्वर मे बोली "इससे तो बेहतर होना बडे भैया, अगर आप साफ-साफ कह देते, "तू मुझे परेशान करने यहाँ न आया कर, मेरे कमरे से चली जा।"

बडे भैया !

तू !

शायद निरुपम इस कथन-भगी से चकित हुआ। उसने आँख उठाकर देखा। नही ये किसी मायाविनी की आँखे नही हैं।

हँसते हुए बोला, "नहा, इसका मतलब है मैं बिल्कुल बातचीत नही कर सकता।"

"कोई बात नहा, कमरे म कभी-कभार घुसने की अनुमति मिलने से ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। कितनी किताबें हैं। दूर से, इन्हे दिन भर ललचायी नजरो से देखती रहती हूँ।

मतलब निरुपम भी बात कर सकता है।

उसने कहा, "आपको कमरे म घुसने से रोकने वाला था ही कौन ? दरवाजे तो खुले ही थे।"

"खुले हुए दरवाजे ही तो सबसे भयकर होते हैं। विश्वास का पहरेदार तो अदृश्य रहकर ही पहरा देता है।"

"तुमने कहाँ तक शिक्षा ग्रहण की है ?"

प्रसग बदल कर निरुपम सीधी-सादी बाते करने लगा। और चला आया सीधे आप से तुम पर। वह बडे भाई की तरह ही बात-चीत करने लगा।

बस अब हो गया ! इस गरीब बेचारी की कमजोरी कहाँ पर है, इसे मास्टर की तेज नजरो से आपने ठीक ही पकड लिया। पढने का मौका मिला कहाँ ?" नीता ने गहरी साँस ली। कहने लगी, थड इयर म पढते-पढते ही पिताजी को इस बीमारी ने धर दबोचा। घर मे अकेले छोडकर कही जाना सभव नही था, जान पर चिन्ता बनी रहती। बाबूजी भी समय से पहले ही रिटायर हो गय। उसके बाद स सब ऐसे ही चल रहा है।

"कितने दिन हुए बाबूजी की इस बीमारी को ?'

"यही कोई तीन-साढे तीन साल हुए होंगे।"

निरुपम अब और कितनी देर तक बातें कर सकता था।

अपनी क्षमता से अधिक ही बाते उसने आज की थी।

इसीलिए उसने पुन अपने हाथ की पुस्तक पर अपना ध्यान केंद्रित कर लिया। नीता खडी हो गयी और घूम-टहल कर किताबे देखने लगी। वाकई लालच लगने लायक किताबे वहा पर थी। दुर्लभ और दुष्प्राप्य। लेकिन आलमारी की बगल म वह क्या रखा था ? वह जो नील रग के मोटे कपडे मे लिपटा हुआ दीवाल से लटक रहा था ?

तानपूरा !

और आलमारी के ऊपर ?

बाया तबला। "लगता है आपको गाने-बजाने का खूब शौक है।"

"मुझे ?" निरुपम हँसने लगा "यह शौक तो पिताजी का था। मेरे पिताजी को। घर म जब-तब सगीत की मजलिस बैठती थी।"

"वाह ! आप लोगो को कितना मजा आता होगा।"

"मजा !"

"मजा नही आता था ? मुझे सगीत से बेहद लगाव है। आपके यहा आँगन नही है ?"

"वह भी है।"

"मैं बजाना चाहती हूँ।"

"बजा सकोगी ?" निरुपम हँसते हुए बोला, "बिना किसी सकोच के बजाना, लेकिन उस समय जब मैं घर पर न रहूँ।"

"क्यो, आपका अच्छा नही लगता ?"

"बिल्कुल नही, असहनीय है मेरे लिए।'

"सगीत आपको असहनीय लगता है ? ओ बडे भैया, तब तो आप जरूर

किसी का खून भी कर सक्ते हैं। यह मैं चली रेडियो वजाने। तभी सोच रही थी कि रेडियो भी क्या मुँह वद किए हुए पडा हुआ है।"

"अब मुझे मकान से निकल भागना पडेगा।"

"अच्छा देखिएगा, एक दिन ऐसा गाना गाऊँगी, कि—"

"—कि सारे पडोसियो को मुहल्ला छोडकर भाग जाना पडगा, क्या यही न ?' निरुपम ने वडी गम्भीरता से कहा। लेकिन उस गभीरता की थाड स शायद विनोद की महीन रेखा भी नजर आ रही थी, जिसे समयकर नीता खिल-खिलाते हुए लोटपोट होने लगी।

उधर की कोठरी म रह रही सुचिता के कानो म हँसी की यह आवाज जाते ही वे चौंक पडी। यही हाल दूसरी ओर के कमरे म वैठे हुए नीलाजन का हुआ।

इवना कौन हँस रही है ?

और किसके कमरे मे हँस रही है ?

सुशोभन दरवाजे पर लग कर खड हो गये।

"मुने अकेला छोडकर कहाँ चली आयी हो नीता। मुझे डर नही लगता ?'

नीता खडी होकर वाली, "कहाँ जाऊँगी ? यही जरा वडे भैया से परिचय करने आयी थी। तुम्ह डर लग रहा है ? भूत का डर ?"

नीता मजे लेकर हँसती रही।

"जरा दखो" सुशोभन कमरे म घुसकर खाट के कोने म वैठ कर कहने लगे। "क्या कहती हा। भूत का डर ? मुझे डर था कि तुम मुझे छोडकर कही चली तो नही गयी—"

"यह क्या, ऐसे क्यो जाएगी ?" निरुपम ने स्नेह-कामल स्वर मे कहा, "ऐसे भी भला कोई जाता है ?

नही ऐसे सौम्य असहाय चेहरे वाले व्यक्ति के प्रति उसके मन मे कोई विरू-पता नही पैदा हो रही थी, वल्कि ममता ही महसूस हो रही थी।

"कह रहे हो कोई नही जाता ?"

सुशोभन आश्वस्त हुए। इसके बाद कौतूहलपूर्वक बोल, "तुम इस मकान के कुछ हाते हा न ?'

"यह क्या पिताजी, वे तो इस मकान के वडे भैया है, सुचिता बुआ के सबसे वडे बेटे।"

"हा समझ गया, सुचिता के तो ढेर सारे बेटे हैं। तुम सबसे बड हो ? क्या पढते हो तुम ?"

'पागल' नामक जीव लोगा के लिए हमेशा से ही कौतूहलकारी रहा है। लगता है जैस उसमे ढेर सारे रहस्य छिपे हुए है। सवाला के ढेले फेंकते रहने से

है, शायद उस रहस्य का पर्दाफाश हो जायगा, इसीलिए पागलो से बाते करने मे लोगो को मजा मिलता है, कौतुक का सुख भी मिलता है ।

अल्पभाषी निरुपम को भी जैसे वही मजा आने लगा। इसीलिए उसने जवाब दिया, "कुछ भी नही पढता ।"

"नही पढते ? इतने बडे होकर लिखते-पढते नही—यह तो अच्छी बात नही है ?"

"ऐसा नही है बाबूजी, वे पढाते है ।"

"पढाते हैं ? किसको ?"

"विद्यार्थियो को। वे यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर है ।"

सुशोभन अपनी दोनो भौंहो को माथे पर चढाते हुए बोले, "तब क्या कहा कि सुचिन्ता का बेटा है ? भला सुचिन्ता का बेटा इतना बडा हो सकता है ?"

"बडे आश्चर्य की बात है। क्या नही हो सकता ? क्या मैं तुम्हारी इतनी बडी बेटी नही हूँ ?"

"तुम कितनी बडी हो ! अभी उस दिन तक तो तुम फ्राक पहनकर घूमती-फिरती थी।'—सुशोभन बोले, "जाऊ, जरा सुचिन्ता से पूछकर देखू ।"

"पूछोगे ? अब उनसे तुम क्या पूछोगे ?'

"यही कि सुचिन्ता का बेटा इतना बडा क्यो है ?"

"रहने दो बाबूजी, अब यह पूछने तुम मत जाना", नीता ने अपने पिता का हाथ पकडते हुए कहा, "बुआ को तकलीफ होगी ।"

"तकलीफ होगी ? तब ठीक है, रहने दो। ठीक है, रहने दो।'

"गाना सुनोगे बाबूजी ?"

"गाना ?" सुशोभन उत्साहित हो उठे, "गाना गाओगी ? चलो सुनू ।"

अपनी लडकी का हाथ पकड कर व दरवाजे की ओर बढ चले।

"ऐसे ही इन्हे सभाल रही है ?"

निरुपम ने कोमल स्वर मे कहा ।

नीता भी नम्र होकर बोली, "उपाय भी क्या है। लेकिन उनको सभालने से कही अधिक मुश्किल है अपने आस-पास के बुद्धिमानो को सम्भालना। उनकी बातें और व्यवहार को लोग नजर-अदाज करके माफ करने को राजी नही होते बल्कि उसे स्वस्थ व्यक्ति का किया-धरा ही मानते हैं। इस बात को लेकर गाडी मे तो एक साहब से मेरी मुठभेड भी हो गयी थी ।"

"नीता तुम सुचिन्ता के बडे बेटे के साथ क्या खुसुर-फुसुर कर रही हो ? चलो चलो, गाना सुनने मे देर हो रही है !"

नीता शैतानी से मुस्कराते हुए बोली, "क्या खाक गाऊँगी ? ये लोग तो अपने बाजे-वाजे देने को राजी ही नही हैं ।"

'राजी नही हैं ? जरा मुनू तो कौन राजी नही है ?" सुशोभन भडककर बाले, "सुचिन्ता से शिकायत कर दूँगा ।"

"वही किया जाय बाबू जी । उनसे कहकर जरा इनको डाट खिला दूँ ।" कहते हुए प्रसन्नवदन नीता अपने पिता के साथ कमरे से बाहर चली गयी ।

इसके बाद ?

इसके बाद आस-पडोस के मकानो की सारी खिडकियाँ खुल गयी । सभी खिडकियो से कौतूहल भरे चेहरे झाँकने लगे ।

अनुपम कुटीर मे सगीत !

इससे अधिक चौका देने वाली बात और भला क्या होती !

मधुर नारीकठ और वह कठ भी जैसे हर गीत म अपने हृदय की सारी आकुलता-व्याकुलता को उडेल देने को तत्पर ।

रात का माहौल उस सगीत की मूर्च्छना म शिथिल होता जा रहा था ।

मुहल्ले म तो इस मकान के साथ उस मकान का, दूसरे मकान के साथ तीसरे मकान का आपस म एक दूसरे से परिचय सम्बन्ध दृढ था । बस नही था तो सिर्फ अकेले अनुपम कुटीर से ।

सुबह होते ही लाल मकान की लडकी पीले मकान की लडकी से, गुलाबी मकान की लडकी सफेद मकान के लडके से जाकर पूछ बैठी, "कल रात मैंने गाना सुना था ?"

"जरूर सुना था । बात क्या है बोलो तो ?"

"समझ म नही आ रही है । लगता है कोई नये लोग आये हैं ।"

"पता लगाना होगा ।'

लेकिन पता क्या लगाना होगा, पता लग जाने से किसकी कामना पूरी होगी इसे लेकर कोई नही सोचता था ।

पता लगाने की आड म लोग मौका ढूढ़ते ह ।

सुबल की बँधी-बँधायी दिनचर्या भग हो गयी थी ।

अब उसे जब-तब बाजार दौडना पडता था—कभी रसगुल्ला लाने तो कभी दालमोठ लाने और कभी आलू मूडी लाने ।

लाल मकान की लडकी ने उसे एक दिन बीच रास्ते म पकड लिया ।

"जरा सुनो ।'

"जी ।'

'तुम्हीं अनुपम कुटीर म काम करते हो न ?

"हाँ ।"

"तुम्हारे मकान मे कौन आया है ?"

मुबल ने गभीर होकर कहा, "माँ जी की भतीजी और उसका बाप।"

'मा जी की भतीजी और उसका बाप।'—ऐसी अजीब भाषा लाल मकान की लडकी ने पहले कभी नही सुनी थी—हँसते हुए बोली, "मा जी के भाई और भतीजी आये हैं, ऐसा कहो न।"

"अब ऐसा भला मैं कैसे कहूँ ? वे लोग मुखर्जी हैं, ऐसा ही सुना है।"

"मुखर्जी ? मतलब ? ये लोग तो मित्तर हैं, है न ?"

"हाँ, कायस्थ।"

"इसका मतलब शायद दोस्त-वोस्त होंगे। क्यो ?"

सुबल ने स्वय को सभालते हुए कहा "शायद वही—होगा। कहिए तो, और क्या-क्या जानना चाहती हैं आप ?"

लाल मकान की लडकी लाल होते हुए बोली, "जानने के लिए और है ही क्या ? गाने की आवाज सुनाई दी है, इसी से पूछ बैठी। खैर, ठीक है।"

क्रोध के मारे भुनभुनाती हुई वह अपने मकान मे चली गयी। लेकिन खूब हताश होकर नही। रहस्य की आच उसे थोडी-मिल मिल गयी थी। अनुपम कुटीर की मालकिन की भतीजी और उसके पिता आये हैं, और पिता कायस्थ नही हैं, ब्राह्मण हैं।

वह पीले मकान मे इस समाचार को पहुँचाने के लिए दौड पडी।

गुलाबी मकान के लिए अचानक काफी सुविधा हो गयी थी। घर-घर काम करने वाली नौकरानी सध्या हाल ही मे उनके यहाँ भी काम करने लगी थी। इसलिए उस मकान के रहस्य-भेद की और आशा मे आँगन के किनारे ही माढा बिछाकर गुलाबी मकान की लडकी बैठ गयी।

"तुम उस सामने वाले मकान मे भी काम करती हो न ?"

"हाँ, यही कोई दो बरस से वहाँ हूँ।"

"ओ माँ। तब तो तुम वहाँ का सभी कुछ जानती होगी। इस मकान म एक लडकी बहुत बढिया गाती है। लगता है वह हाल ही मे आयी है।"

"जी हाँ, यही कुछ दिन हुए। अब दोनो बाप-बेटी के आ जाने से वह मकान भी मकान लगन लगा है, नही, तो माँ री, लगता था मकान पर किसो गूँगे की छाया पड गयी हो। कोई किसी से बात नही करता था, मालकिन कभी बुलाकर इतना भी नही कहती थी, "सध्या जरा यह काम कर दो।" अब तो बुला भी लेती हैं। अभी उसी दिन बोली, "सध्या जरा दुमजिले के दालान को पोछ देना, वहाँ पानी गिर गया है। नौकर घर म नही है।" पहले की बात होती बिटिया तो पानी वहाँ पर शायद दिन भर वैसे ही पडा रहता, नौकर का

तबीयत होती तो पाछ देना। अब तो ऐसा नही है। घर मे लोग रहते हैं। उस पर वह रहा पानी या हो नही छाज जा सकता। पर शायद वह कुछ पागल है।"

पागल!

गुलाबी मकान की लडकी मारे उत्साह के गुलाबी होकर बोली,"क्या कहती है री ? तुम लोगों को डर नही लगता ?"

"ओ हो वह क्या कटखना पागल है ? देखकर पता ही नहीं चलता। मुझ तो उस नौकर से मालूम हुआ।

"वे लोग मा जी के क्या लगते है ?"

"क्या जानूँ बिटिया, नौकर तो कहता है, कोई नही होते। दोस्त-ओस्त होगे। मालकिन का तो वे नाम लेकर पुकारते हैं।'

गृहस्वामिनी को नाम से बुलाते हैं, मगर कोई रिश्तेदार नही होते। एक गूगा मकान उन लागा के आने से बोलने लगा है। इतनी सारी बातो की जानकारी होते ही वह सफेद मकान की ओर दौड पडी।

"सुनते हो जी, वह बूढा शायद पागल है। और शायद रिश्ते मे उनका कोई नही होता। लेकिन गृहस्वामिनी का नाम लेकर बुलाता है।"

सफेद मकान मुँह बिचका कर बाला, "आह! तब ता सभी कुछ जान गयी हो। लेकिन वह गायिका अनुपम कुटीर के सबसे छोटे बेटे की नाक मे नकेल डाल कर घुमा रही है क्या इस बात को भी जानती हो ?"

"मतलब ?'

"और क्या मतलब होगा इसका। दुनिया की आदिमतम घटना। रेगिस्तान म थोडी बारिश हुइ है और उसन क्षणाध मे सारा जल सोख लिया है।"

"लडका की उम्र कितनी होगी ?"

"ठीक उतनी ही बडी—जिसकी तुलना रेगिस्तान की बारिश से की जा सके।'

"दखन मे कैसी है ?"

'तुमसे बीस गुनी अधिक सुदर।'

"समझ गयो। इसका मतलब उसने सिफ अनुपम कुटीर के सबसे छोटे बेटे की नाक म ही नकेल नही डाली है।

"उसके अलावा और दूसरा नाक ही कहाँ है ?'

"कमा क्या है ? मेरे सामने ही है।'

"हे भगवान्! इस नाक की व्यवस्था तो कभी की हो चुकी है। लेकिन इतना कहूँगा कि देखकर मन म ईर्ष्या जरूर महसूस हुई।'

'जरूर होगी। अब लगता है तुम सिफ उस बीस गुनी के रास्ते की ओर ही टकटकी लगाए रहोगे।"

"इसमे भी कोई संदेह नही ।'

"तुम मर्दों की जाति बडी लालची होती है ।'

"तुम लोग भी कुछ कम नही होती ।"

"सोच रही हूँ उस लडकी से परिचय किया जाय तो कैसा हो ?"

"क्या, मुझे परिचय करने के लिए कह रही हो ।"

"अरे वाह ! तब तो खूब सुविधा हो जाएगी । वह सब नही चलेगा । समझ लो, मैं जाऊँगी । जाकर कहूँगी, 'आप कितना बढिया गाती हैं, सिफ यह कहने के लिए आपके यहा आये विना मैं रह नही सकी ।' बस इसी तरह मामला जमा लूँगी ।"

"किस के साथ ? इतने दिनो से जिन तीन-तीन बरफ के पहाडा की ओर ललचायी नजरा से ताकती रहती थी, उनके साथ ? लेकिन अब कुछ होगा, ऐसी भी सभावना नही लगती । जरूर पाओगी कि ऊषा के हाथो के स्पर्श से सारी बफ पिघलनी शुरू हो गयी है ।"

"बकवास मत करो । वैसे यह हो भी सकता है । आखिर तुम सभी एक समान लालची हो न ।"

"मर्दों से कम तो तुम लोग भी नही हो । किसकी लडकी किसके लडके के नाक मे नकेल डालकर घुमा रही है, तुम इसी ईर्ष्या से कुढ रही हो ।"

"ईर्ष्या ।"

"और नही तो क्या ? प्रेम के मारे एक लडकी दूसरी लडकी के घर मे जाकर उसकी तारीफ कर आए, इसे तो खुद भगवान भी आकर कहे तब भी अविश्वस-नीय ही लगेगा । इस बात पर भरोसा नही किया जा सकता । जलन के मारे देख आने के मेरा मतलब था वहाँ जाने के लिए किसी बहाने की तलाश करना ।

"दुनिया की सारी रगीनियो को आज के लडको ने मतलब तुम्ही लोगो ने पोछ लिया है ।'

"किसमे इतनी क्षमता होगी ? जो मिला उसी रग के गोले को बटोर कर अपने चेहरे, गालो, नाखूनो और होठो पर तुम्ही लोग तो पोत रही हो ।"

"हमेशा ही पाता है । हमेशा सही लडकियो ने प्रकृति से रग और ऐश्वय संग्रह करके अपना प्रसाधन किया है । महाकवि ने व्यग्य से नही वरन् पूण आनद मे मग्न होकर ही कहा है, 'नारी तुम सिफ विधाता की ही सृष्टि नही हो ।'

"हो गया,—तुम तो गभीर होने लगी । तुम गभीर होने पर भयानक लगने लगती हो ।"

"देखो, मुझे गुस्सा आ रहा है ।"

"कोई बात नही ।"

"सचमुच, वहा एक दिन हो आओ न ।"

"अभी तो अपनी राय घोषित करने का समय नहीं आया है। अपनी माँ से पूछ कर चली जाना।'

"वाह, जरा सामने के मकान में मिलने जाऊँगी इसके लिए भी माँ से पूछने की जरूरत होगी क्या? यह तो पूछने लायक कोई बात नहीं हुई।"

"ठीक कहती हो। यह जो तुम मुझ से प्रेम कर रही हो, यह भी क्या अपनी माँ से पूछकर—"

"खबरदार! खुद को इतना महत्त्व न दो, कहे देती हूँ।'

"कल्पना के इस थोड़े से सुख को भी यदि छीन लेना चाहती हो तो ठीक है।'

जिद लेकर इतनी चर्चा थी उन्हें इसकी जरा भी परवाह नहीं था। इतने दिनों तक वे अपने नियमों में मग्न थे और अब वे उन्हें तोड़ने में जुटे हुए थे।

उन दिनों भोर में अपने छोटे कमरे से बाहर निकलकर स्नान-ध्यान करने के पहले सुचिन्ता दूधवाले की सफाई को परखने के लिए नीचे उतर आती थी। नजदीक की बस्ती के एक दूधवाले से तय हुआ था कि—वह अपनी गाय लाकर सामने दूध दुह जाया करेगा। सुशोभन के लिए यह खास व्यवस्था की गयी थी। खुद अपने सामने दूध दुहवाकर उसे रसोईघर में रखने के बाद ही सुचिन्ता निश्चिन्त हो पाती। ताज्जुब था ऐसे रुचिहीन काम करने के कारण सुचिन्ता के चेहरे पर जरा भी खीझ की रेखा नहीं दीखती थी, बल्कि उनके चेहरे पर सजग नजर रखने का भाव ही लक्षित होता था। ये ग्वाले बड़े धूर्त होते हैं, आँखों के सामने ही धोखा देते हैं, ऐसी उनकी धारणा थी।

रसोई में भी सुचिन्ता को खड़ा रहना पड़ता था। कहना पड़ता था, "खाना आज भी जल्दी ही बना लेना मुकुल, दीदीमनी लोगों को बाहर जाना है।" कहना पड़ता था, "खाने में मिर्च-मसाले का इस्तेमाल कम करने को कहती हूँ मुकुल, तुम भूल क्यों जाते हो? उनको ज्यादा मिर्च-मसाला खाने को डाक्टरों ने मना किया है।'

पागल के झक्कीपन के कारण कभी-कभी सुबह-सुबह ही संगीत निर्झर बहने लगता। उसके कारण नींद टूट जाने पर निरुपम स्तब्ध होकर बिस्तर पर बैठा रहता। नीलांजन परेशान होकर कमरे में चहलकदमी करने लगता था। और इन्द्रनील, वह तो बिल्कुल निर्झर के किनारे ही जाकर बैठ जाता था। केतली की चाय ठंडी हो जाती थी। अब कोई सुबह अखबार उठाकर देखता तक नहीं था। कितनी आश्चर्यचकित कर देने वाली मायाविनी लड़की थी नीवा।

कभी वह गम्भीर वार्तालाप मे बेहद सीधी-सादी हो जाती थी तो कभी बमतलब के तर्कों मे अत्यधिक मुखर और कभी तो साधारण से परिहास मे ही लोटपाट हो जाती थी। उसकी ओर से विमुख होना बेहद मुश्किल काम था।

फिर भी नीलाजन उस मुश्किल को वश मे करने की कोशिश करता था।

नीता का सगीत सुनने के बाद चहलकदमी करते हुए वह नजदीक आकर नही कहता था। वाह, बहुत खूब।"

नीता ही नजदीक आकर कहती, "क्यो मझले दादा, एकदम मौन है, लगता है मेरे गीत-सगीत की धारा से एकदम मुग्ध हो गये हैं ?"

नीलाजन सिर्फ अपनी नजरे उठाकर देख लेता।

नीता कहती है, "कुछ कहिए, कहिए तो कुछ, डाटना हो तो डाटिये, चपत लगाना हो, लगाइये, लेकिन खामोश भर्त्सना मत कीजिए। इसे देखकर धडकने बद होने लगती हैं।"

"भर्त्सना किस बात की ? अच्छा ही तो है।"

"तब 'वाह बहुत सुन्दर' यह सब कहिए न ?"

"क्या हर समय कहना जरूरी है ?"

"तब तो लाचारी है।"

कहकर हाथ से हताशा की भगिमा प्रदर्शित करते हुए नीता भाग जाती थी।

फिर कभी किसी समय आकर कहती, "पिताजी को एक जगह ले चलना है मझले दादा, आज तो इतवार है, ले चलिए न हम लोगो को।"

नीलाजन अपनी भौहें सिकोड कर कहता है, "क्या इन्द्र कहीं गया ? लगता है आज वह जाने को तैयार नहीं है।"

"तैयार नही है ? हुंह। वह तो सारे समय एक पैर पर खडा रहता है, लेकिन मैं ही उसे नही ले जाना चाहती हूँ। पिताजी को समझाना पडता है कि हमारी गाडी मे आप लोग अपने-अपने काम से जा रहे हैं। हर रोज एक ही व्यक्ति को देखने से सदेह हो सकता है।"

"हर रोज जाती कहाँ है ?"

'मनश्चिकित्सक के यहा। वह डॉक्टर पालित हैं न।"

"मैंने तो सुना था आप लुम्बिनी मे दिखलाने आयी हैं।"

नीलाजन की नजरें भावशून्य थी।

लेकिन नीता निर्विकार थी।

"वही के लिए आयी थी। डाक्टर पालित का कहना है कुछ दिन और देख लीजिए। भूमिका बनानी होगी। उन्हे किसी भी तरह यह बात नही पता चलनी चाहिए कि उन्हे मेन्टल हास्पिटल ले जाया जा रहा है। कोई कहानी गढ़कर—"

"आपके पिताजी को देखकर यह नही लगता कि उन्हे कोई रोग है। लगता है उनका स्वभाव ही असम्बद्ध सोच-समझहीन लोगो जैसा है।"

"वैसी बात नही है। यह सोच-समझहीनता ही उनका रोग है।"

नीलांजन कुछ और रुखाई से बोला, "वैसा भी हर समय नही होता। उन्हे कभी भोजन के बाद हाथ-मुँह धोना या उसके उपरात लौंग खाना भूलते तो नही देखा, सोने के पहले वस्त्र बदलना भी तो वे नही भूलते। नहाने के बाद बाल झाडना भी उन्हे याद रहता है। सिर्फ सामाजिक नियम-कानून, व्यावहारिक शोभन-अशोभन मामला म ही उनकी सोच-समझहीनता नजर आती है।

"डाक्टर के अनुसार ऐसे रोगियो के यही लक्षण होते हैं।"

"मानसिक रोगो के डाक्टर रोग न समझ पाने पर ऐसी ही तरह-तरह की बातें करते हैं।"

"लेकिन स्वस्थ लोगो म ही क्या हर समय यह उचित-अनुचित-विवेक रहता है? या रहती है शोभन-अशोभन की समझ? यही जो आप इतनी सारी बातें कर रहे हैं क्या ये भी शोभन हैं? हम लोग असुविधा मे पडकर आपके अतिथि हुए हैं। ऐसे कटु वाक्य मुझे बहुत आहत करते हैं।"

"मैंने आपको तो कुछ भी नही कहा।"

कहकर नीलांजन गम्भीर हो गया।

नीता के सूक्ष्म व्यग्य की ज्वाला मे वह मन ही मन दग्ध होता रहा। लेकिन इस ज्वाला का आकर्षण भी अत्यधिक तीव्र था।

लेकिन इस ज्वाला का इतना तीव्र आकर्षण क्या नीलांजन को ही था? इस आकर्षण को क्या घर के और सभी लोग नही महसूस कर रहे थे?

इस दाहकता का महसूस करना भी अनुपम कुटीर का एक बहुत बडा अनियम था।

दिन के प्रखर प्रकाश म भी जो अनुपम कुटीर सोया रहता था, वह अब रात के अँधेरे म भी जागने लगा था।

बक्स-पिटारे वाले कमरे म दक्खिन ओर की खिडकी खोलकर सुचिन्ता मन ही मन आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाती रहती थी।

व सोच रही थी कि वे न जाने किस षड्यन्त्र म शामिल हो गयी थी।

जो कुछ भी हो रहा था क्या वह ठीक हो रहा था?

जो सुदूर-अतीत गहरी जमीन म मौन के वर्षों के आगोश म दफन था, उसे फिर से सिर उठाने का मौका ही क्या दिया गया?

व सोच रही था, कितने दिनो तक ऐसा विचित्र हालत रहेगी? उन सागो का आये हुए लगभग दो महीने तो हो गए, इस बोध भगवान ही जानता होगा

कि—सुशोभन को कितना फायदा हुआ। लेकिन सुचिन्ता को जितना नुकसान हुआ उसकी तो किसी से तुलना भी नही की जा सकती।

सुचिन्ता की पारिवारिक शृखला तो टूटी ही, जीवन की शृखला भी टूट गयी और अनुपम कुटीर की उस धीर-गम्भीरता की वेदी पर सुचिन्ता का जो श्रद्धा-सम्मान का सिंहासन था, वह भी तो टूट गया।

अपने लडको के सामने तो सुचिन्ता बिल्कुल भी सहज नही हो पाती और वे उनके सामने सामान्यतया पडना भी नही चाहती। वे लोग जब तक घर म रहते है, वे अकारण ही अपने को व्यस्त किए रहती हैं।

लेकिन दूसरी ओर वे उनकी चिंता से भी मुक्त नही हो पाती थी।

सुचिन्ता नीता को समझ नही पाती है। सोचती की जाने कैसी लडकी है। बहुत सीधी है या बहुत चतुर। वह क्या अपने सुखी भविष्य के लिए ही सुचिन्ता के तीनो लडको को अपने जाल मे फँसा रही थी? या स्वभाव से अभी तक वह एक चचल बालिका ही थी।

लेकिन दूसरी ओर वह ढेर सारी बडी-बडी बातें भी कहती फिरती थी।

वह इन्द्रनील के साथ गुल-गपाडा मचाती थी, नोच-खसोट कर बात-बेबात म उसे घर से बाहर अपने साथ ले जाती थी, धूप मे पसीने-पसीने होने के साथ देर से घर लौटती थी, जोरदार बहसा मे उलझाकर वह हर रोज रात का भोजन दस बजे से पहले करने का मौका ही नही देती थी, और इतने जुल्मो-सितम के बावजूद इन्द्रनील के चेहरे पर खुशी की आभा बिखरी हुई रहती थी। इन सब को देखकर सुचिन्ता को महसूस होता था कि मायाविनी ने उनके लडके को बिल्कुल अपने वश म कर लिया है।

फिर थोडी देर बाद ही जब वे निरुपम के कमरे से खिलखिलाने की आवाज पाती, तब वे सोचती पहले वाली धारणा गलत थी? शिव की तपस्या को भग करने के लिए ही यह छलनामयी मदन और वसत को साथ लेकर आविर्भूत हुई है।

लेकिन फिर सारी बाते जाने कैसे गडबडा जाती।

नीलाजन के साथ उसके सम्पर्क की जटिलता को देखकर व विभ्रात हो जाती थी। यह जटिलता ही तो सबसे अधिक सदेहजनक लगती।

परस्पर निकट आने से ही दोनो व्यक्ति आपस म क्या खटपट करेंगे? क्या रह-रहकर उनके बीच स स्फुलिंग निकलेंगे?

सोचते-सोचते थक गयी सुचिन्ता। थमी हुई सोचने लगी, बुरी लडकी है, वह एकदम बुरी लडकी है। पिता की ही तरह नही हुई, जरूर माँ पर पडी होगी। किसी से प्यार नही करेगी सिर्फ तीनो को अपनी उँगलियो पर नचायेगी।'

लेकिन सुचिन्ता के इतने बुद्धिमान, कामकाजी, सयमी और अल्पभाषी

लडके—वे सबी क्यो एक बुरी लडकी के हाथो म खेल रहे थे, इस बात को सुचिन्ता क्यो नही सोचती ? ऐसा सोचने की प्रथा नहीं है, इसी से शायद उस खुली हुई खिडकी पर नजर नही पडती थी।

प्रथा नही है, सचमुच ही प्रथा नही है।

बहुत दिना से यही लाकापवाद प्रचलित है कि छलनामयी नारियाँ लोगा को वश म करके भेड बना देती हैं। अगर व्यक्ति म व्यक्तित्व है तो वह भेड बनता ही क्यो है, इस सवाल को कोई नही उठाता। सुचिन्ता भी इसे नही छूती। सिर्फ मन ही मन कहती है, वह तो सिफ मेरे लडको को ही नही नचा रही है, बल्कि मुझे भी नचा रही है। लेकिन अब अधिक नही, बिल्कुल नही।

रात के आसमान की ओर ताकते हुए वे प्रतिज्ञा करती हैं, "अब नही।" उससे कल सुबह होते ही कह देंगी, अब बहुत दिन हो गये, स्वस्थ होने के कुछ लक्षण देख रही हो ? अभी भी वही बच्चो की तरह विचार व्यवहार है। तब ओर क्या ? अब मुझे छोड दो। देखती नही हो, अपने बेटो के चेहरे की तरफ मैं नजर उठाकर देख भी नही पाती।"

बेटे ?

तब वे भी शायद आज जैसी व्यग्यपूर्ण दृष्टि से देखकर ही शात नही बैठ जाते, मुझ पर व्यग्य करते, तीखे सवाला की तेज बौछार करते हुए कहते, "तुम्हारे बचपन के प्रेमी की हर समय तुम पर पडी मुग्धदृष्टि को आखिर हम लोग कब तक बर्दाश्त करते रहेंगे ? फिलहाल तुमने उनकी दृष्टि को आच्छन्न कर लिया है इसीलिए व कटु नहीं हो पा रहे हैं।

लेकिन तुम कितने दिनो तक ऐसा कर पाओगी ?

जिस दिन तुम्हारा भाजा हुआ मोह का काजल पुँछ जाएगा, उसी दिन मेरी गृहस्थी विरोध से झनझना उठेगी। बहुत सारे समुद्रा को पार करके अब जाकर यही तट पर आश्रय लिया था, अब फिर से क्यो मुझे उसी उत्ताल समुद्र मे ढकेले द रही हो ?

कहेंगी, वह सब कुछ कहने के लिए सुचिन्ता ने मन ही मन स्थिर सकल्प कर लिया, लेकिन सुबह होते ही जाने कैसे सारा सकल्प धरा रह गया। वे खुद ही आ दाखिल हो उठी। दूध के लिए, गरम पानी के लिए, भोजन जल्दी तैयार करवाने के लिए वे निरन्तर ऊपर-नीचे आते-जाते हुए परेशान होती रही।

इसके बाद जैसे ही अपनी दोनो नीली कचो जैसी नजरे उठाकर कोई भारी रोबदार आवाज म बात करता, नजदीक आकर कहता, "सुचिता आखिर सुबह से तुम्हे इतना क्या काम है, बताओ तो ? सुबह से आसमान म कितने रग हुए, कितना उजाला हुआ, सब खो गया, उन्हे कुछ भी दिखा नही सका।' तब

मुचिन्ता अपना मुध-बुध खो बैठती । मुस्कराते हुए कहती, "अभी उजाला खोया कहाँ है, वह देखो कितना उजाला है ।"

"वह तो धूप है । उसमें रंग कहाँ है ? सुबह कितना रंग था ? ठीक हमारे बचपन के आकाश की तरह । वैसी ही जैसी तुम्हारी दुछत्ती पर चढ़कर हम लोग देखते थे ।

दुछत्ती पर ?

निमिष में वह अपने अद्भुत रोमांच सहित अतीत का पथ अतिक्रमित करते हुए उपनगर के उस बाँच के बरामदे मे आकर खडी हो जाती । दुछत्ती की छत । जहाँ अपने को चतुर समझकर बड़े इत्मीनान से दो अबोध बच्चा को एक दूसरे को बगल में खड़े हुए कँटिया से चंपा के फूल तोड़ते हुए देखती ।

एक बहुत बडा बैशाखी चंपा का वृक्ष अपने सुनहले स्तवकों का संभार लेकर सुचिन्ता के घर की दुछत्ती पर झुका रहता था । जहाँ से एक छोटे कँटिये की सहायता से ही उन गुच्छों को झुकाया जा सकता था ।

सुशोभन की दादी के बाणेश्वर बैसाख भर चम्पा के फूलो का अर्घ्य चाहते थे और सुशोभन अपनी दादी के लिए अर्घ्य जुटाने के लिए तत्पर रहता था । इसका कारण था, दादी उसे किसी बात पर टोकती नहीं थी । इसीलिए कँटिया लेकर वह चुपचाप दुमंजिले मकान की छत पर चढ जाता था । लेकिन क्या सिर्फ दादी के अर्घ्य की व्यवस्था करने के लिए ही ? क्या रात के अंतिम पहर से ही सुशोभन को अपना बिस्तर काँटे की तरह गडने नहीं लगता था ? फिर वह कितना ही चोरी-छिपे जाता, सुचिन्ता की तेज नजरों से बच पाना मुश्किल था । तुरन्त सुचिन्ता अपनी दादी से जाकर शिकायत करती वह देखो दादी, डकैत है । तुम्हारे गोपाल भगवान् के लिए एक भी फूल नहीं छोड़ेगा । जरा देना तो फिर से छत पर चढ गया अपनी तसर वाली साड़ी । उसे पहनकर मैं भी जरा छत पर हो आऊँ ।"

दादी उसे डाटकर कहती, "रहने दो, इस समय अब तुम्हें रणचंडिका बन-कर छत पर जाने की जरूरत नहीं है, 'भना' खुद मुझे फूल दे जाएगा ।"

'भना' मतलब सुशोभन ।

दादी की सास का नाम शायद सुषमा था, इसीलिए सुशोभन को पूरे नाम से न बुला पाने की लाचारी थी ।

सुचिन्ता भी बीच-बीच में चिढ़ाती, "भना भनाभन् मच्छर भनभन भन ।"

सुशोभन भी उसे नहीं छोड़ता था । मुँह चिढ़ाकर कहता था, "सुचिन्ता, ता धिन ता । ये बातें जब प्रेम भाव बना रहता तब होती । फूलों की चोरी के मामले में तो दोनों में परम शत्रुता का ही भाव रहता था ।

"भना मुझे फूल दे जाएगा', सुचिन्ता दादी को ही चिढ़ाकर कह उठती हैं

उसी से तुम कृतार्थ हो जाओगी। अपनी ही सपत्ति म भिखारी। क्या, वह दस्यु सारे फूल तोडकर अपनी नादी के लिए ले जाएगा और तुम्हारे सामने तुच्छ भाव स दो फूल फेंक जाएगा, ऐसा क्यो, जरा मैं भी तो सुनू ?"

तव भी सुचिन्ता की दादी अपनी नातिन को ही डांटती, "देखो तो, तुच्छ भाव से क्या फेंक जाएगा ? काफी श्रद्धा-भक्ति से ही देता है। तू शैतानी करने नही जा पा रही है। इसी से जल रही है, यही कह न। नही, नही, तुने नही जाना होगा। तेरी माँ नाराज होती है।"

"माँ की बाते छोडो। माँ तो, जब सुबह तुम गृहस्थी का सारा काम छोड-कर दो घटा पूजा करती हो उससे भी नाराज होती है। इस घर म पूजा-अर्चन म भला किसका मन लगता है ?"

अपनी कार्यसिद्धि के लिए सुचिता विभीषण की भूमिका ग्रहण करने मे भी पीछे नही हटती थी।

खैर, कार्यसिद्धि होती भी थी।

दादी गभीर होकर कहती, 'अच्छा तू जा, दखू तेरी माँ क्या कहती है ?"

उस कहने की डोर पकडकर ही वे उस 'दो घटे' वाली बात का जवाब देकर रहेगी, यह सकल्प करके ही शायद वह घसाघस चदन घिसने लगती। तब वे सुचिता की माँगी हुई तसर की साडी उसकी ओर उछाल कर देना नही भूलती।

एक ही चालाकी से बहुत दिनो तक काम नही चलता था। तब दूसरे उपाय भी करने पडते थे। बेचारे सुशोभन को दो-चार दिन पाप के भय से आखें मूद कर गोपालजी का पावना बद करके खामोशी से उतर आना पडता।

दादी दो घटा बीतन के बाद भी कुछ देर और इन्तजार करके पूछती, "अरी चिन्ते, भना क्या अभी तक पेड ही हिला रहा है ? जरा देख तो ?"

सुचिता गदन घुमाकर बोली, "ओ माँ, तुम्हारा भना तो जाने कब का चला गया। क्यो फूल नही दे गया ?"

"कहाँ दे गया ?'

"अब देख लो अपनी श्रद्धा भक्ति की बानगी।'

कहकर आँखो, भौहो से भरसक कायदा करती थी सुचिन्ता। नही, उसे पाप का डर नही था। उसने फूलचोर को सिखला दिया था कि अँजुरी भर फूल गोपाल के नाम स जल मे बहा देने से ही पाप कट जाएँगे।

"जाती हूँ मैं।' कहकर सुचिन्ता कमर कसने लगी।

"अब कहाँ जायगी तू ?"

"क्यो सही बात सुनाने के लिए। वहा वाली दादी से कहूँगी, क्या आपके

वाणेश्वर ही भगवान् हैं ? और गोपाल शायद बाढ के जल मे वह कर आये है ?"

"रहने भी दा, तिपहरी मे अब तुम्हे पडोस म जाकर झगडा नही करना हागा।" ऐसा कहकर दादी रोकना चाहती, लेकिन दद्दा इस मामले मे सुचिन्ता के समर्थक हा जाते। वे कहते, "बात तो सही है, यह उन लोगो के लडके का अन्याय है। कहना जरूरी है।"

अतएव उचित बात कहने के लिए सुचिन्ता को उनके मकान मे जाना ही पडता।

सुशोभन पूछता, "तेरे छत पर चढने की बात दादी को मालूम तो नही हुई ?"

"नही।"

"मालूम पड जाता तब ? और तुझे भी रोम-राम से पता चलता अगर एक बार भी तेरा पैर फिसलता। एक आख बद करके सूरज के रगो को देखने के चक्कर म बस तू गिरते-गिरते बच गयी।"

"क्यो, शहजादे की आँखे तो खुली थी, मुझे पकड नही सकता था ? वह क्या होता, गिरकर मैं अपनी हड्डी-पसली तुडवाऊँ तुम्हारी यही इच्छा है न।'

"तो सच कहूँ, यही इच्छा हाती है। लँगडी होकर बैठी रहने स तेरी शादी नही हागी।"

सूर्य की सतरगी आभा क्या उस बालिका के चेहरे पर दीप्तिमान हो उठती ?

नही, अब चेहरे पर वह कामलता नही रही थी। अब वहा सात मे छ रग बेमानी हो गये थे। अब सिर्फ एक ही रग नजर आता था और वह था लाल।

लज्जा ! अब लज्जा का रग ही एकमात्र सहारा था।

फिर भी उस एकरगे चेहरे से सुचिन्ता सुशाभन की बाता के जवाब मे कहती, "अभी क्या हम लोगा के बचपन के दिन हैं कि सब कुछ भूल-भाल कर आकाश का रग ही देखते रहगे। क्या हम लोगो की उम्र नही हुई है ?"

सुशोभन ने हताश होकर कहा, "उम्र हो गयी। ओह ! लेकिन सुचिन्ता, आकाश की तो उम्र नही बढती ! पृथ्वी की भी उम्र नही बढती ! सिर्फ मनुष्यो की ही उम्र क्यो बढती है ? चारो तरफ सब एक जैसा रहता है। सिर्फ मनुष्य ही बदल जाता है। कितने ताज्जुब की बात है।"

रात म नीद न आने पर दक्षिण दिशा की खिडकी खोलकर बैठे रहने के वक्त इस आश्चय का प्रश्नचिह्न आखो के सामने दुबारा अपना आकार लेता है, और इस समय आकाश म सिर्फ अँधेरे के रग के सिवाय कोई दूसरा रग नही होता।

लोग ही सिफ बदल जाते हैं। बदलना ही पडता है। कोई उपाय नही है। बदलाव को अस्वीकार करने वालो को लोग पागल कहने लगते है।

लेकिन सुचिन्ता के पागल होने से काम कैसे चलेगा ? व कल ही नीता से यह बात कह देगी।

रात म नीद न आने पर अनुपम कुटीर का बडा लडका भी बिस्तर से उठ कर खिडकी के पास आरामकुर्सी बिछा लेता है। वहाँ से आसमान का एक टुकडा नजर आता। नगर ने वहाँ की जमीन पर अपना कब्जा जरूर कर लिया था लेकिन अभी तक आसमान उसकी मुट्ठी की पकड मे नही आ सका था। बिस्तरे पर लटकर, आरामकुर्सी पर पसर कर आसमान मे बादलो का आना-जाना नजर आता है, नजर आता चाद का क्षय और पूर्ण चन्द्रमा। नजर आता, आसमान की ओर सिर उठाये हुए नारियल के पेड और झिलमिलाते हुए पत्ते।

उसी झिलमिलाहट की ओर देखते-देखते बातो के टुकडे और हँसी झिलमिला उठी—

"धन्य हैं बडे भैया खूब हैं आप भी। ऐसी सुनहली शाम म भी आप कमरे म अधेरा करके पढ रहे है ? खिडकी तक नही खोली ? आपको छुट्टी देने की जरूरत क्या है उन लोगो को। "

"ओह ! बडे भैया आज आप चलिए न हमारे साथ, पिताजी को डाक्टर के चेम्बर म भेजकर बाहर अकेले बैठते हुए मुझे डर लगता है। मँझल दादा ? वे तो बहुत व्यस्त रहते हैं। रहे छोटे बाबू तो सिर्फ मेरे चक्कर म घूमते-फि से वह इम्तहान मे फेल हो जाएँगे।'

"क्यो बडे भैया, आपने तो खूब कहा था कि घर से बाहर चले जाने पर (गीत गाना सभव हो सकेगा ? अब तो सुनते रहते हैं ? शब्दो से परेशान होकर पढ नही पा रहे हैं क्या ? आप गीत म तन्मय नही हो गये थे ? मैंने तो यही समझा था।"

"बडे भैया ! बडे भैया।'

यह सम्मान घर के सबसे बडे बेटे के प्रति व्यक्त किया गया था।

इस सम्मानजनक तिलक का पोछ कर फेंका भी नही जा सकता था। यह तिलक अगर दग्ध भी कर डाले तब भी इसे प्रसन्नचित्त से वहन करना होगा।

दूसरे कमरे म व्याकुल चहलकदमी हो रही थी। नीचे के तल्ले म ठीक इसी कमरे के नीचे सुबल सोया हुआ था। वह सोचने लगा, यह सब क्या हो रहा है ? भुवह मकान को अब क्या ब्रह्मदैत्य ने दबोच लिया ? किसके चलने की आहट रात भर होती है ?

चहलकदमी करने वाला इस बात की चिन्ता नही करता था। मध्य रात्रि

को ही वह सशब्द कुर्सी खींचा लगता, खाट या खींचते हुए वह एकदम पखे के नाचे ला पटकता है।

"वह किसे चाहती है ?"

नीलाजन ने दीवाल से प्रश्न किया।

"या किसी को भी नही चाहती ?"

"बड भैया के कमरे म उसे इतनी क्या जरूरत रहती है ? ऐसी कौन-सी बातें उनसे होती हैं ? भैया की भी बलिहारी है उनके स्वर मे अपना स्वर मिला कर निलज्ज की तरह हँसत रहते हैं।

अनुपम कुटार का हाल क्या अनुपम के समय जैसा ही हो गया था ? हर समय गप्पें, हर समय हँसी की हिलार। बाकी समय म गीत-सगीत। अब तो घर का कोई भी डिस्टब्ड नही महसूस करता। नीलाजन न सोचा, मेरी बात अलग है, मैं अपने को उतना हलका नही बना सकता।

'थोडी-सी हँसी, थोडा-सी मीठी नजर, थोडा-सा स्पश मुझे इन बातो से कोई नही फँसा सकती।'

अगर मैं लूगा तो सब लूगा, पूरा लूगा। मुट्ठी म पीसकर गलाकर उसे खाने की डिबिया मे भर कर रख दूँगा। मुझे अब युद्ध म उतरना होगा, भले ही बडे भैया के साथ हो या फिर इन्द्र के साथ। उतरकर ही देखूगा। देखूगा कहाँ तक उतरा जा सकता है। मुझे हर हालत मे उसे पाना ही होगा।

ओर दूसरी तरफ के कमरे मे लेटे-लेटे एक और प्रतिपक्ष का सोचना था, नही, अब और नही। कल से फिर से लिखने-पढने मे मन लगाना पडेगा। बिल्कुल कुछ नही हो रहा है। नीता की बातो से बचना सभव नही, लेकिन बचना ही होगा। कहना पडेगा, दुहाई है, तुम्हारी यह सर्वनाशी पुकार ही सारे नाश की जड है।

लेकिन अब उस आमत्रण को स्वीकार करने से काम नही चलेगा।

पढ़ना होगा, कल से बिल्कुल लिखायी-पढायी म अपना ध्यान लगाना होगा।

और सुचिन्ता के उस बडे कमरे म ?

सोय हुए पिता की आखो को प्रकाश से बचाकर टेबुल लेम्प के पास बैठी हुई नीता सिर नीचा किए हुए देर रात तक पत्र लिख रही थी—वह जो सारे झगडे की जड और सारी दाहकता का मरहम भी है।

वह किसी नीले फेशनेबिल कागज पर न लिखकर सरकारी मोहर लगे हवाई अन्तर्देशीय पत्र पर लिख रही थी। जिसके कधो पर सागर पार दूत बन कर जाने का भार था।

महीन-महीन अक्षरो से नीता ने पूरा पन्ना भर दिया था, "तुम्हारे निर्देशानुसार पिताजी को यहा ले आयी थी यह सोचकर कि हठ करके यहाँ आ पहुँचने

पर वे भगा नही पायेंगे। दखती हूँ तुम्हारा कहना ही ठीक था। पिताजी के आँखो का वह धूमिल-धूमिल असहाय भाव लगता है बीच-बीच म खत्म हो जाता है। और स्वच्छ आनद की आभा वहाँ फूट पडती है। सचमुच कभी-कभी यह लगने लगता है कि पिताजी को फिर से पहले की ही तरह स्वस्थ पा सकूगी।

तुम जब तक यहाँ आओगे लगता है तब तक तुम्हारी निर्दिष्ट चिकित्सा से ही पिताजी काफी हद तक स्वस्थ हो जाएँगे।

जिनको मैं सबोधन के लिए कुछ न सोच पाकर 'बुआ' कहने लगी हूँ, वे बडी जटिल परिस्थिति मे फँस गयी है ऐसा मैं भी महसूस करती हूँ। एक तरफ वे परेशान हैं, अपने असहनशील पुत्र के कटाक्षो से पीडित हैं और दूसरी ओर प्रतिपल उनके चेहरे पर खुशी की आभा-सी नजर आती है।

इसे बखूबी समझ रही हूँ कि पिताजी की तरह ही उनकी जिंदगी भी अकेलेपन की रही है, इस समय एक बडे बच्चे के खेल म साथ देना ही जैसे उनकी परम परिपूर्णता हो गयी है।

जब मैं आयी थी तब लगा था वे बूढी हो गयी हैं, अब वैसा नही लगता। मन के साथ-साथ जैसे चेहरे से भी उम्र की छाप मिट गयी है। कभी-कभी खुद को अपराधी महसूस करने लगती हूँ। सोचती हूँ पिताजी जब स्वस्थ हो जाएँगे, और मैं उनको लेकर चली जाऊँगी, तब इनका क्या होगा ?

कच-देवयानी की वे अतिम पक्तियाँ याद पडती हैं—

मेरा क्या काम है, मेरा क्या व्रत है।
मेरे इस प्रतिहत निष्फल जीवन मे,
क्या लेकर मैं गर्व करूँगी ?
× × ×
जिधर भी अपनी नजरे फेरूँगी,
सैकडो स्मृतियों की चुभन

दुर, क्या तुम इन पक्तियो को नही जानते कि मैं इन्हे लिखने बैठा हू ? लेकिन उनके सुप्त मन को जगाकर शायद मैंने उनका नुकसान ही किया है या शायद ऐसा नही भी हो।

इतनी ही उनके जीवन की सबसे बडी सार्थकता है।

जीवन मे सबसे बडी प्राप्ति।

जो हुआ सो हुआ लेकिन अब बताओ मुझे क्या करना चाहिए ? मुझे तो तुम्हें पाना ही होगा। पिताजी का स्वस्थ न कर पाने पर मैं तुम तक कैसे जा पाऊँगी। किस मुह से जाऊँगी ? लेकिन 'यह जीवन जाता है तो जाए' कहकर मुस्कराते हुए बैठी रहने का-सा दम भी मुझमे नही है। नि सग जीवन की यहाँ पर जैसी प्रतिक्रिया दख रही हूँ।

डॉक्टर के चेम्बर म भी यही बाते होती हैं।

मानसिक रोगियो की सख्या क्रमश बढती जा रही है, उसका कारण है लोग एक दूसरे से दूर होते जा रहे है। लोग बहुत अधिक भौतिक और बेहद बनावटी बनते जा रहे हैं। 'अतरग मित्र' जैसी बात कहानिया का विषय बन गयी है। मन अगर किसी के मन का स्पर्श न पा सके तो वह जियेगा कैसे ? तुम कब आ रहे हो ? अब और अधिक देर मत करो। देर होने से क्या होगा, कहना कठिन है। तुम्हारी पाली हुई मछली की ओर कौवा, चील और बिल्ली घात लगाए हुए हैं। अब तुम समझ लो। कितना और सँभाल पाऊँगी ? सभी कुछ तो लिख चुकी हूँ। बीमार को लाकर देख रही हैं कि यहाँ सभी कोई बीमार है। सभी मानसिक बीमारिया से ग्रस्त हैं।

उनका राग कैसा है, मालूम है ?

साधारण होते हुए भी असाधारण समझन की चाह। अस्वाभाविक होने से कोई असाधारण नही हो जाता, इसे उन्ह किसी ने समझाया नही। नही समझाया, इसलिए असाधारण होन के लिए जनसामान्य से दूर रहने की प्रवृत्ति से वे लोग खुद ही मुहल्ले म छुतहे रोगी की तरह निर्वासित होकर पडे हुए हैं।

असाधारणता प्रकट करने के लिए घर म एक दूसरे से न कोई खुलकर बात करता है न हँसता ही है। हालाकि सब साधारण हैं, एकदम साधारण। थोडा-सा ही कुरेदने से असलियत सामन आ जाती है।

सुचिन्ता बुआ की बात समझ म आती है। बहुत दिना के नि सग जीवन की शून्यता न ही उन्ह ऐसा मौन और नीरस बना दिया है। फिर एक प्रकार की आत्मरति भी उसी मे जुड गयी है। अपन म निमग्न रहते-रहते अपने से ही प्यार करने लगी हैं।

यह आत्मरति ही इनके जीवन का अवलम्ब बन गयी है। खैर, यह बात तो समझ मे आती है। लेकिन तीन-तीन जवान लडके ऐसे क्यो होगे, कहो तो ? असहनीय नही लगता ? मैं इन लोगो को सामान्य बनाने के लिए प्रयास कर रहा हूँ। हालांकि ऐसा नही लगता कि इसम खूब मेहनत करनी पडेगी। सबसे छोटे को इसी अवधि म काफी कुछ रास्ते पर ला दिया है। घर म अधिक सहज नहीं हो पाता, शायद उसे शर्म आती होगी, बाहर निकलकर उसे ऐसा लगता है जैसे उसे अब साँस लेने का मौका मिला हो।

सच कहता हूँ, इनके लिए मन म थोडा ममत्व भी जाग्रत हो गया है। सब बडे असहाय लगते हैं। सबसे बडे के प्रति मेरे मन म आदर की भावना है, सबसे छोटे के प्रति स्नेह। सिर्फ मँझले के प्रति अभी भी मन म जिज्ञासा बनी हुई है।

लिखा गी अब कार जगह नही है इसलिए लन-दन गी बात फिर कभी। इति—

अनुपम के जमाने म एक मोटर गाडी थी।

अनुपम ने पुराने माडल की एक जजर सेकण्ड हैंड मोटर जोखिम उठाकर एक झटके म खरीद ला थी। उस पर सवार होकर एव मोटरगाडी का मालिकाना जताकर, मन ही मन खूब तुष्ट होते थे, उस गाडी से ही अपने नाते रिश्तेदारो को लाते, उन्ह पहुचाते थ, बुआ-मौसी को गगा स्नान कराते थे। सिर्फ अपनी पत्नी और बच्चो को ही वे इस पर सवार होने के लिए राजी नही पाये थे।

सुचिन्ता के पास कभी भी घूमने का समय नही रहता था और लडको उस विशिष्ट गाडी पर चढ़ने म शर्म आती थी। अनुपम कहते थे, "अरे बाबा गाडी का काम तो तुम्ह एक जगह से ढोकर दूसरी जगह ले जाना भर है वह काम क्या इससे नही होता है ? तब उसकी गलती कहाँ है ?

लडको को गाडी की गलती दिखलाने का मन भी नही होता था। कहते, "कोई जरूरत नही है।'

अनुपम कहते, 'तुम लोगो के मन लायक गाडी ही मैंने खरीदी होती, अगर मैंने इस मकान का काम न शुरू किया होता। वह भी कभी हो जायगा। सब्र करने से मेवा मिलता है।"

लेकिन मेवा मिलने तक इन्तजार करने का अवसर नही मिला अनुपम को। इसलिए फिर से इन लोगो के मनमाफिक गाडी होने का हिसाब नही बैठा। कहते हुए मन म कोई पाप नही है, गाडी का आशा खत्म होने का आक्षेप जितना इनके मन म नही हुआ, उससे अधिक सुखी वे इस बात से हुए कि अनुपम यथासमय मरकर इन लोगो को निष्कृति दे गया। जीवन म पहली बार उन लोगो ने पिता के आचरण की सराहना की।

इस अनुपम कुटीर का गृह-प्रवेश अगर खुद उनके हाथो हुआ होता तो उनके शोर-शराबे भर गृह-प्रवेश की घोषणा से इस परिवार की अपरिष्कृत रुचि ही प्रकट हुई होती।

अनुपम के स्त्री-पुत्र कितने परिष्कृत रुचि के है, कितने परिष्कृत व्यवहार के है, इसे कोई जान ही नही पाता। इसके अलावा तो पूरा मकान ही हर समय आदमियो की धमा-चौकडी से नरक बना रहता।

नरक होता लोगो के आने-जाने, खाने-पीने, हँसी-ठहाके, ताश-शतरज की बाजियो आदि से। बाप रे !

बाँध तोड देने के बाद मर जाने से ही क्या और जिंदा रहने से ही क्या ? खैर, उतना नही हुआ ।

सुचिन्ता और उनके लडको ने अपरिचय का आवरण ओढकर इस मोहल्ले म कदम रखा था, आज वह आवरण उन लोगो ने कायम रखा था ।

टूटी हुई जजर-गाडी को अनुपम का श्राद्ध होन के पहले ही बेच दिया गया । नयी गाडी खरीदने की क्षमता उनके लडको म नही थी, इसलिए अब बस, ट्राम या टैक्सी का ही भरोसा था ।

वैसे घर के सामने से ही बस के जाने से कोई असुविधा नही थी । असुविधा इसी बात की थी कि कही कोई पडोसी बस मे सवार होकर मुस्कराते हुए उनसे पूछ न बैठे, "कहिए क्या हाल-चाल है ?" इसीलिए सारे समय गर्दन टेढी करके खिडकी के बाहर देखते रहना पडता था । लेकिन इधर असुविधा कम हुई है । उपनगर की सीमा पर स्थित रेलवे क्रासिंग की मरम्मत होने से बसे दूसरे रास्ते से आ-जा रही थी । इसको, उसको, सभी को क्रॉसिंग के पास उतरकर पैदल जाना पडता था ।

उसी रास्ते से पैदल आते-आते अचानक नीलाजन को ठिठक जाना पडा, चौराह के पास की स्टेशनरी की दूकान पर वह कौन खडी है ?"

कही नीता तो नही ?

"हाँ, वही तो । जरूर अपने लिए कुछ खरीदने की जरूरत पडी होगी । आयी होगी, नीलाजन को इससे क्या ? यह बात नीलाजन ने भी सोची, इससे मुझे क्या ? लेकिन यह सोचकर भी वह आगे नही बढ सका, खडा ही रहा । हालांकि इस तरह से नही कि उसे देखकर लगे कि वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो ।

"अरे आप !"

नीता को ही सम्बोधन करना पडा । नीलाजन की नजर इस पर तो अभी-अभी ही पडी । या अच्छी तरह से देख ही नही पाया । 'मँझले भैया' कह कर पुकारने की सहजता के कारण नीलाजन ने ध्यान ही नही दिया था । इसलिए सिर्फ आपका सम्बोधन ।

"ओह हाँ, अभी तो लौट रहा हूँ । आप यहाँ कहा ?"

"मैं, यही कुछ खरीदना था । आइए चलें ।"

नीता न चलते-चलते गभीर होकर कहा, "अच्छा क्या आपने भद्रता के प्रारंभिक अक्षर भी नही सीखे है ?"

"क्या मतलब ?"

आरक्त चेहरे से नीलाजल ने पूछा ।

"मतलब बहुत सरल है । एक भद्र महिला अगर कोई सामान ढो रही हो

तो क्या किसी भद्र व्यक्ति के लिए उसे सिर्फ देखते रहना उचित होगा ?

"सामान ढोना ?"

नीलाजन ने कटाक्ष करते हुए कहा, "खरीदने को तो आपने खरीदा है एक क्रीम और स्याही की दावात, इसमे ढोने को वजन ही कितना है ?"

"वजन ही सब नही होता। लीजिए पकडिए, रास्ते मे कोई देखकर कही यही स्याही आपके मुह पर न पोत दे, इसी डर से इसे दे देना पड रहा है।"

"बेहद कृपा की आपने।" नीलाजन ने कहा, "और कही चलेगी ?"

"नही, और कहा जाना है ?" नीता ने गहरी सांस ली, "और कहाँ ? सुना है, यहाँ नजदीक ही कही आप लोगो का 'रवीन्द्र सरोवर' है। लेकिन हतभाग्य की तरह अकेले तो जा नही सकती।"

"मुझे अगर सगो की दृष्टि से आपत्तिजनक न समझें तो मैं चल सकता हूँ।"

"वह आप इस समय दिन भर के बाद थके-माँदे घर लौट रहे हैं।"

"मुझे थकान नहीं होती।'

"तब भी आप लोग जिस तरह के भयकर नियम मानकर चलने वाले लोग है, थोडा इधर-उधर होने से ही शायद आपकी मा चिंतित हो जाएगी।"

"माँ!" नीलाजन के चेहरे पर एक व्यग्यपूर्ण मुस्कान कौंध गयी, "मा के सोचने के लिए और भी मूल्यवान विषय हैं ?"

"क्या ?" नीता ने एक बार अपने ओठो को काट लिया।

"शायद। या शायद नही।" लेकिन कहा उसने सहज गले से ही, "लोगो के प्रति अश्रद्धा करते-करते आपकी ऐसी हालत हो गयी है कि आप श्रद्धा की बात ही भूल गए हैं।"

"श्रद्धा करने के लायक व्यक्ति होने से ही श्रद्धा की जाएगी न।" नीलाजन ने तेज होकर कहा, "वैसा व्यक्ति भी अब कहा मिलता है ?"

"यह आपका दुर्भाग्य है कि इतनी बडी दुनिया मे आपको श्रद्धा करने लायक एक व्यक्ति भी नही मिला। लेकिन क्या आप इसका कारण जानते हैं ?"

"जानकर धन्य हो जाऊगा।"

"कारण है, खुद पर आपने श्रद्धा करना नही सीखा है। खुद पर श्रद्धा कर पाने पर आप दूसरो पर भी श्रद्धा कर सकते थे। श्रद्धा करने के लिए अगर आसमान की ओर गर्दन उठाकर तलाश करते रहेगे तो इसका कोई नतीजा नही होगा। ऊपर वाला बहुत अनुदार है।"

"इस बात की मुझे कोई शिकायत नही है।"

"आपको न हो, लेकिन मुझे आप लोगो के लिए दुख होता है।"

"आप एक महान नारी हैं। खैर, फिलहाल हम लोग रवीन्द्र सरोवर पहुँच

गये हैं।"

"अरे, इतनी जल्दी पहुँच भी गये। क्या यह घर के इतने नजदीक था। पहले श्याम बाजार से गाडी पर चढकर आयी थी, इसलिए ठीक से अदाज नही कर पायी थी। चलिए, कही बैठा जाय।"

नीता ने कितनी जल्दी बातो का रुख दूसरी ओर मोड दिया था।

क्या इसीलिए उसमे इतना आकर्षण था?

लेकिन 'बैठा जाए' कहने से ही क्या बैठना होता है? बैठने की जगह भला कहाँ मिलती है?"

इस ससार म कोई भी किसी के लिए थोडी-सी जमीन देने का तैयार नही है, इसी का प्रमाण ये लेक और पाक हैं।

एक भी बेच खाली नही था। नीता ने इधर से उधर और उधर से इधर सब जगह छान मारा, फिर नीलाजन के पास आकर बोली, "नही, कही कोई जगह नही है। सभी बेंचा पर कोई न कोई युगल बैठा है। यह पार्क एकदम से प्रेमी-प्रेमिकाओ के मिलने का लीलाक्षेत्र हो गया ह। मैंने यू ही नही कहा था कि यहा अकेले आने का मतलब ही दुनिया को पुकार-पुकार कर जतलाना है कि देखो, मैं कितना अभागा हूँ, देखो, मैं कितना अक्षम हूँ।"

नीलाजन ने लज्जित होकर कहा, "आपके हँसी-मजाक का रूप बडा जटिल होता है, उसे हजम करना काफी मुश्किल होता है।"

"यह क्या, इतनी सीधी-सादी बात भी आपके लिए हजम करनी मुश्किल हो गया? इन्द्रनील आपसे छोटा होने पर भी—कही अधिक समर्थ है।"

इन्द्रनील!

इन्द्रनील का नाम सुनते ही नीलाजन गम्भीर हो गया। क्या एक कमउम्र लडके के साथ भी ऐसी ही वाचालता होनी है?

नीता ने एक बार तिरछी नजरा से नीलाजन के चेहरे के भावो को परखकर मन ही मन हँसते हुए कहा, "और क्या किया जाय। आइये, घास पर ही बैठा जाय।"

घास पर!

और वे दोनो!

जैसी सस्ती भगिमा मे चारो ओर लाग बैठे हैं, उनकी ही तरह? मन विद्रोह कर उठा।

"रहने दीजिए, बैठने की बात छोडिये, घूमने मे ही क्या नुकसान है?"

"वाह, सिर्फ भटकती ही रहूँगी? बैठकर आलमूडो खाऊगी, गोलगप्पे खाऊँगी, तभी न लेक घूमने का मजा आएगा।"

नीलाजन मुह बिगाडकर बोला, "मजे की बात क्या आप सिर्फ मजाक म

कह रही हैं या वास्तव म आपको इस तरह का सस्तापन अच्छा लगता है ?"

"सस्तापन से क्या मतलब है ? क्या लोग हर समय स्वय को मूल्यवान बनाकर घूमेंगे ? यू ही कहती हूँ कि आप लोगो के लिए मेरे मन म तकलीफ होती है । जिस बेचारे ने इमली के पानी म डुबोकर गोलगप्पे खाने का मजा नहीं लिया, उसका तो आधा जीवन ही नष्ट हो गया ।"

"शराबी समझता है कि जिसने बोतल का मजा नही लिया उसकी तो पूरी जिंदगी ही बरबाद हो गयी ।"

"अपनी जगह पर वैसा सोचना भी गलत नही है । लेकिन ऐ आलमूडो।"

बडे उत्साह से सुडौल छरहरी देह वाली नीता लगभग दौड पडी । सिर्फ लाई ही नही माग-मागकर उसने नमक-मिर्च भी अधिक लिया, फिर नीलाजन के पास आकर आखे मटकाते हुए बोली, "लीजिए, पकडिए । बिल्कुल फर्स्ट क्लास है ।'

नीलाजन ने हाथ नही बढाया । बोला, "आप ही खाइए ।"

"इसका मतलब ? यह तो सरासर मेरा अपमान है ।"

"मैंने इस तरह से आज तक कभी नही खाया ।"

नीता हँसते हुए बोली, "जिन्दगी मे कभी किसी लडकी के साथ 'लेक' घूमने आये थे ? पहले कभी नही किया, इसलिए आगे भी कभी नही करेंगे, यह तो कोई तर्क नही है । जिन्दगी मे तो कभी शादी नही की, वह भी क्या कभी नही करेंगे ?"

दोनो हाथो मे दो आलमूडी के ठोंगे लिए हुए नीता अट्टहास कर उठी ।

नीलाजन ने चौंककर इधर-उधर देखा ऐसी लज्जाजनक स्थिति को कही कोई परिचित देख तो नही रहा ? लेकिन वह पहचानता ही किसे था ?"

लेकिन नीता क्या कोई अबोध बालिका थी—या कोई बच्ची थी ? वहाँ से ही ठुनकते हुए बोली "हाय, हाय तत्वकथा कहते-कहते तो मेरी आलमूडी का सत्यानाश ही हो गया । लीजिए पकडिए, नही तो दोनो आलमूडी के ठोंगो को लेक के पानी म फेंक दूँगी ।"

'क्या आफत है । दीजिए ।"

"चलिए, घास पर बैठा जाए । '

"चलिए ।'

दूसरी तरफ से घूरती हुई चार आखो म से दो आखे बिल्कुल फैल गयी ।

"लेकिन तुम तो कह रही थी कि वह लडकी छोटे भाई की नाक मे नकेल डालकर घुमा रही है ?"

"परसो तक तो यही धारणा थी ।" सफेद मकान ने गहरी सास ली ।

"तुमने गलत देखा था । यह तो मँझला भाई है ।'

"शायद परसो तक तुम्हे भी अपनी धारणा वदलनी पडे, देखोगी कि वडे भाई के साथ वह मूँगफली खा रही है और हँसते-हँसते लोटपोट हो रही है।"

"यह लडकी तो वहुत वुरी है।" गुलावी मकान ने कहा।

"क्यो ? इसमे वुरा क्या देखा ?"

"आज किसी एक के साथ घूम रही है तो कल किसी दूसरे के साथ। क्या यह किसी भली लडकी का लक्षण है ?"

"भली लडकी का लक्षण क्या होता है ?"

"सरल।"

"और नही तो क्या। वह तो खुलेआम वाहर-वाहर घूम रही है। तुम्हारी तरह गुप चुप नही।"

"देखो यह अच्छा नही होगा।"

"इसकी आशा तो क्रमश घट ही रही है।" सफेद मकान ने बनावटी नि श्वास लेकर कहा। "अनुपम कुटीर इस तरह से चिंता जगा देगा, यह किसने सोचा था।"

"तुम्हारी चिन्ता क्या है ?" गुलावी मकान ने टहोका दिया।

"चिन्ता नही है ? तुम्हारी आँखे तो उस मकान के लडको की गतिविधिया की जाँच मे ही उलझ गयी हैं। उन्हे छोडकर कुछ और भी देखोगी ?"

"रुको, वहुत हुआ—अरे वह लडकी हम लोगो की तरफ क्या आ रही है ?"

सफेद मकान को कुछ कहने की फुर्सत ही नही मिली।

नीता नजदीक आकर मुस्कराते हुए वोली, "आइए न, हम चारो एक ही जगह वैठें। आप लोग इतनी दूर से सिर्फ देख ही रहे हैं, हम लोगो की वाते तो आपको सुनायी पड नही रही हैं।"

गुलावी मकान ने गुलावी होकर कहा, "मैं इसका मतलव नही समझ पायी।"

"मतलव कुछ नही। जान-पहचान करने चली आयी। क्या नाम है आपका। ऐ आलमूडी और दो ठो देना।"

वे लोग जव घर लौटे तव शाम काफी ढल चुकी थी। चार लोगो म से तीन लोग रास्ते भर मुखर रहे जव कि एक व्यक्ति हर क्षण अपनी अक्षमता के कारण मन ही मन कुढ रहा था। सोच रहा था, आखिर वह उनकी तरह सहज क्यो नही हो पा रहा था ?

गुलावी मकान और सफेद मकान दोना ही अनुपम कुटीर के वाद पडते थे। नीता ने गुलावी मकान से हँसते हुए वोली, "आइयेगा जरूर। अगर नही आयी तो समझूँगी गाना अच्छा लगने की वात विल्कुल ही गलत है।"

"जरूर आऊँगी। मुझे गाना सुनना वहुत अच्छा लगता है।"

"मुझे अच्छा नही लगता, ऐसा प्रमाण भी जरूर आपको नही मिला होगा।" सफेद मकान ने आगे बढकर कहा।

"वाह, आप भी जरूर तशरीफ़ लाइयेगा।"

उनके जाते ही नीलाजन कहने लगा, "एक तरफ तो आप कहती हैं कि आपके पिताजी भीड-भाड बिल्कुल नही बर्दाश्त कर पाते, दूसरी ओर आप घर मे जबर्दस्ती भीड बुला रही हैं।"

नीता बोली, "यह भीड नही, सहज होना है। लोगों को जीवन मे सहज होने की जरूरत है। स्वस्थ-अस्वस्थ सभी के लिए यह जरूरी है।" और मन ही मन सोचने लगी, "भीड के माने ही है निर्जनता।"

सुचिन्ता बहुत देर से परेशान हो रही थी।

नीता कहाँ गयी, नीलाजन अभी तक क्यो नही लौटा। सुशोभन बीच-बीच मे शिकायत कर उठते थे, "सुचिन्ता तुम मेरी बातो म मन नही लगा रही हो।"

"वाह मन क्यो नही लगा रही हूँ।"

सुचिन्ता ने कहा जरूर लेकिन वह उठकर बार-बार बाहर वाली खिडकी की तरफ चली जाती थी और वहाँ से बाहर की तरफ देखती थी। आश्चर्य है, सुचिन्ता पहले तो कभी इतनी परेशान नही होती थी। कभी-कदाचित् लडके के लौटने मे देरी होने पर कोई किताब लेकर बैठ जाती थी। लौटने पर न कोई प्रश्न करती थी न शिकायत, सिर्फ कहती,"खाना अभी खाओगे या थोडा आराम करने के बाद ?"

लेकिन आज जैसे ही वे लोग लौटकर साथ-साथ सीढियाँ चढकर ऊपर आये कि सुचिन्ता के स्वर म शिकायत भर आयी। बोली, "तुम लोग भी अजीब हो नीता, तुम लोग कहाँ जाओगी, इसे जाते वक्त बता नही सकती थी ? सोच-सोचकर मैं परेशान तो न होती ?"

सुचिन्ता बिल्कुल बदल गयी हैं।

लेकिन क्या सुचिन्ता का लडका भी बदल गया है ? आज तो उसने ऐसी उद्वेगजनक स्थिति मे बैठे स्वर म नही कहा, "परेशान होने की क्या बात थी ?" यही उसके लिए स्वाभाविक होता। जो अनुपम कुटीर की मानसिकता के अनुरूप होता।

ऐसा ही जवाब वह अपने पिता को भी देता था। लेकिन आज उसने कुछ नही कहा, दरवाजे का पर्दा सरका कर वह चुपके से अपने कमरे मे घुस गया।

जवाब नीता ने दिया।

बोली, "बुआ कैसे बताती, मैं ही क्या पहले से जानती थी ? सब कुछ अचानक हुआ। लेकिन बडा मजा आया। लेक की ओर गयी, वहाँ जाकर आलमूडी खायी, पडोसियो से जान-पहचान की—"

बदल गयी हैं सुचिन्ता, बहुत अधिक बदल गयी है। अन्यथा इतने दिनो से बर्फ हो गया खून अचानक खौल कैसे उठता ? उस उबलते खून के दबाव से सारी शिराएँ फटने-फटने को हो आयीं।

जमाना कितना निडर और कितना लापरवाह हो गया है। इस जमाने की लडकियाँ कितनी बेहया हो गयी है।

और सुचिन्ता ?

सिर्फ डर ही डर।

जीवन भर सिर्फ डरती ही रही। सिर्फ इस अपराध से कि उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन मे किसी से प्यार किया था। किसी दिन साहस करके उस हृदय को झकझोर देने वाले प्रेम का स्वीकृति नही दे पायी। बचपन से यौवन, यौवन से प्रौढता की सीमा पर पहुँच गयी, लेकिन वही एक भयावह अपराध बोध उनके समस्त व्यक्तित्व को अपनी मुट्ठी मे जकडे बैठा रहा। न विद्रोह कर पायी और न उस वज्रमुष्टि को ध्वस्त ही कर पायी। बल्कि कही किसी की आँखें इसे पकड न लें, इसी डर से अपने जीवन भर के प्रेम को धूल-मिट्टी से दबा-दबाकर छिपाती आयी हैं।

वे बडो से भी डरी और छोटो से भी।

लेकिन क्यो ? क्यो ? आखिर क्यो ?

सुचिन्ता के समस्त अणु-परमाणु जैसे प्रचड विक्षोभ से चीख उठना चाहते थे।

"क्यो ? क्यो ? क्यो ?"

और किसी को डरने की कोई जरूरत नही थी बस जरूरत थी तो सुचिन्ता को ही ?

यही जो उनका बेटा है जो इन दिना बिना कारण के उनको नही देखता वह बेफिक्र होकर एक गैर रिश्तेदार लडकी के साथ साँझ ढलने पर घूम-फिर कर लौटा और वह भी निभय होकर गर्दन ऊँची करके।

और सुचिन्ता ? सुचिन्ता अपने भीरु प्रेम के कारण उसी लडके से डर रहा थी।

क्यो ! क्यों ! क्या !

उन्मुक्त रक्त स्थिर होने के पहले, कोई जवाब देने के पहले ही नीता फिर एक बार बोल पडी, "पिताजी शायद बुआ मुझ पर बुरी तरह नाराज हो गयी हैं।"

"बुआ ? तुम पर।"

अचानक सुशोभन अपनी गभीर आवाज से हँसन सा, "सुचिन्ता भला नाराज होगी ? गुस्सा क्या होना है इसे वह भला जानती भी है ? गुस्सा मैं हो रहा हूँ,

खुद तो तुम लोग मौज कर आये, उस पर आलमूडी भी खा आयी और हम लोगा को हिस्सा तक नही दिया ? आह्, बुआ जी के हाथो से आचार के तेल वाली गरम गरम मूडी (लाई) मुझे कितनी अच्छी लगती थी। सुचिन्ता तुम्हे याद है ? बुआ जी तुम्हे बुलाती थी, "सुचिन्ता, आज मूडी तल रही हूँ, आना। मैं बुआजी के मूडी तलने का इन्तजार करता रहता था। अच्छा सुचिन्ता यह घटना दिल्ली की है या दिनाजपुर की ?"

इस बार नीता के चौंकने की वारी थी।

अपने समस्त उछाह को सभाल करके सुचिन्ता खिल-खिनाकर हँसने लगी, "दिल्ली की ?" दिल्ली मे कब हम लाग साथ-साथ थे, जरा सुनू तो ? अच्छा, अब तुम लोग खाने बैठो, आलमूडी की कहानी से तो पेट नही भरेगा। क्या सुशोभन ?"

"हम लोग भी वदला लेगे, कल इन लोगा को दिखला-दिखला कर हम दोना बचपन की तरह आचार के तेल से सानकर आलमूडी खायेंगे।"

यह खबर लाये खुद सुशोभन के बडे भाई सुविमल। कोट से लौटने के वाद ही रहस्योद्घाटन किया।

यह समाचार कहा से मिला, इसे बताने से पहले ही पूरे घर मे अचरज का ज्वार आ गया। सुविमल ने कानून की परीक्षा उत्तीण करके प्रारभ मे दिनाजपुर की पैतृक जमीन पर ही वकालत करनी शुरू की थी जो अच्छी ही चल रही थी। लेकिन दूसरे हजारा लोगा की तरह उनका भी भाग्य देश-विभाजन के फलस्वरूप पलट गया।

पैतृक घर, खेत-खलिहान, गाय बैल, मुवक्किल आदि सब को छोडकर सिफ अपनी जान बचाकर सुविमल दिनाजपुर से कलकत्ता चले आये। साथ सिफ अपनी ही जान नही थी बल्कि सुविमल की अपनी गृहस्थी और वे खुद बेरोजगार! छोटे भाई की गृहस्थी भी साथ थी। जो भी हो, उनको सुविमल ने छोडा नहीं, सभी को साथ लेकर श्यामापुकुर के इस ध्वस्त मकान को खरीदकर रहने लगे।

सुशोभन बहुत दिनो से ही देश छोडकर दिल्ली मे रहने लगे थे। लेकिन अपने घर को मोह-माया उनमे जबदस्त थी। दिनाजपुर से सम्पक खत्म होने का समाचार पाकर वे सारे दिन शोकाहत होकर अपने बिस्तर पर पडे रहे।

नही रहा ? दिनाजपुर अब नही रहा ?

भारतवर्ष के नक्शे से दिनाजपुर का नाम मिट गया ?

पूजा की छुट्टी होने के महीने भर पहले से ही अब किस बात को लेकर सुशोभन दिन गिनेंगे ? सारे साल की छुट्टी अब किसके लिए बचाकर रखेंगे ?

साल भर के लिए अब अपने मन को किसकी स्मृति से और किसके भविष्य की कल्पना से भुलाए रखेंगे ?

यह क्या हुआ ? यह क्या हुआ ?

निर्दयी भाग्य लोगा का स्वास्थ्य, धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, नाते-रिश्तेदार सभी कुछ छीनता रहा है। पुरखो की भोट भी शायद छीन लेता है लेकिन बाप-दादो की जन्मभूमि भी भला इसने कब किसकी छीनी है।

सुशोभन शोक-विह्वल होकर पडे रहे। हमेशा के लिए सम्पक समाप्त होने से पूर्व अतिम बार देश न जा पाने की-बात सोचकर उनका मन और अधिक कचोटने लगा।

सुविमल ने जब पत्र लिखकर कहा था और अधिक रहना अब मुश्किल हो रहा है, तब सुशोभन ने अर्जेंट टेलिग्राम भेजा था, "और दो-चार दिन रुको, मैं छुट्टी लेकर आ रहा हूँ।

अतिम बार की तरह एक बार—"

लेकिन छुट्टी की दरख्वास्त देकर सुशोभन जब एक छोटी अटैची मे थोडा-बहुत सामान रखकर जाने की व्यवस्था कर रहे थे, ठीक उसी समय बडे भैया का तार मिला, "आने की जरूरत नही है, हम लोग निकल पडे है, अब एक और घटा रुकना भी सभव नही है।"

फिर दिनाजपुर जाना नही हुआ।

न ही सभव हुआ सुचिन्ता के बगीचे के बकुल पेड के गाठे के गड्ढे म सुचिन्ता द्वारा छिपाकर छुरी से खोद-खोदकर लिखा गया वह अक्षर 'सु' जिसको लिखने के बाद सुचिन्ता ने चुपके-चुपके कहा था, "देखो कैसी चालाकी की। तुम्हारे नाम का पहला अक्षर अपने इस बकुल वृक्ष पर खोद दिया लेकिन दूसरे लोग देखकर यही सोचेंगे कि मैंने अपना ही नाम यहा खोदा है। मजे की बात नही है क्या ?"

लेकिन क्या यह सिफ बकुल वृक्ष पर ही था ?

दिनाजपुर के मकान मे क्या हर जगह अदृश्य अक्षरा म 'सु' 'सु' 'सु' यही नाम नही लिखा हुआ था ?

सब गया। सब खत्म हो गया।

माँ, पिताजी, दादी, बुआ सभी खो गये, सारे नाम मिट गय। सुविमल का श्यामापुकुर का मकान जैसे एक दूसरे वश का परिचय देन के लिए जग गया है। वे लोग दूसरे ही किस्म के हैं, बिल्कुल अलग है। दिनाजपुर के परिवेश से अलग होकर भाभी भी जैसे बिल्कुल अनजानी लगती हैं।

फिर भी हर साल पूजा के दिना मे सुशोभन यहाँ चले जाते थे, दिल्ली म मन नही लगता था। वहाँ जाते थे तो साथ म ढेरा उपहार ले जाते थे, पानी

की तरह रुपया बहाते थे और छुट्टियाँ खत्म होने के बाद भारी मन से अपनी बेटी के साथ लौटने के लिए रेल पर चढ़ जाते थे।

इस नियम में व्यवधान हुए यही कोई तीनेक साल हुए होंगे। तब से सुशोभन कलकत्ता नहीं गये। नीता ले नहा गयो। 'पिताजी की तबियत ठीक नहीं है, इसलिए इस बार भी आना नहीं हुआ।' लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेती।

बड़े भैया भी अलग से उस चिट्ठी का जवाब न देकर साल में एक बार विजयदशमी के अवसर पर आशीर्वाद समेत जवाब भेज देते थे। भाभी कहती थी, "बाबू ने अब गरीबों का संग-सम्पर्क त्याग दिया है।"

लेकिन सुविमल से आज यह समाचार पाकर सभी के आश्चर्य की कोई सीमा न रही।

सुना सुशोभन को कलकत्ते में आए हुए दो माह हो गए।

और आकर रह कहाँ रहे हैं सुचिन्ता के घर में। वही सुचिन्ता, दिनाजपुर में बगल के मकान की घोष परिवार की लडकी।

इसका मतलब क्या है?

चार वर्ष पूर्व जब वे लोग आये थे तब क्या किसी ने सुशोभन से दुर्व्यवहार किया था? सुशोभन की लडकी का क्या किसी ने अनादर किया था?

छी छी क्या ऐसा भी सम्भव था! जिस सुशोभन के दिए हुए कपड़े सुविमल और बेरोजगार भाई सुमोहन के बच्चे चार साल पहनते थे, जो सुशोभन वहाँ पर आकर पानी की तरह अपना रुपया बहाता था, भला उससे दुर्व्यवहार! उसकी लड़की का अनादर!

लेकिन अगर असावधानीवश ऐसा कुछ घटा भी हो तो क्या इस त्रिभुवन में सुशोभन के रहने की कोई जगह नहीं थी कि उनको सुचिन्ता के यहाँ जाने की जरूरत पड़ी?

तब क्या सुचिन्ता अपने घर में कमरा अलग करके किराए पर उठा रही है? वही कमरा क्या सुशोभन ने किराए पर लिया है?

लेकिन उनकी छुट्टी कितने दिनों की है?

तब क्या रिटायरमेंट ले लिया है?

जिस सवाल का कोई जवाब देने वाला नहीं था, उसी सवाल से सारा परिवेश मुखरित हो उठा।

इसके बाद सुविमल ने कहा, "शायद रिटायर हो गया है, लेकिन भाडा-बाडा देकर नहीं ऐसे ही रह रहा है।"

सुविमल की पत्नी माया अपने गालों पर हाथ रखकर बोली, "हाँ जी, यह तो बाप-दादा का परिचय न देकर नाना का नाम बताने वाली बात हुई। इतन

नाते-रिश्तेदार होते हुए सुचिन्ता। लेकिन उसके पति और लडके कुछ नही कहते क्या ?"

सुविमल ने मुस्कराते हुए कहा, "लडके कुछ कहते है या नही यह तो मालूम नही, लेकिन पति के कहने के दिन नही रहे। अब वह शायद ऊपर से आँखें फाड-कर देख रहे होंगे।"

"आह माँ, ऐसा हुआ है ? विधवा हो गयी है ?" माया आक्षेप भरे स्वर म बोली, "बचपन मे मँझले देवर जी के साथ सुचिन्ता का खूब हेल-मेल था।"

सुविमल ने नाराजगी जाहिर की। बोले, "बेकार की बातें छोडो, तुम स्त्रियो को भी क्या-क्या बातें याद रहती हैं। मैं सोच रहा हूँ आखिर हुआ क्या ?"

माया ने पूछा, "यह बात तुमसे कही किसने ?"

"कही किसने ? फिर तो बहुत सारी बातें बतानी पडेगी। मेरे एक पुराने मुवक्किल ने सुशोभन को देखा था। उसकी साली का मकान सुचिन्ता के मकान के नजदीक ही है। साली के यहाँ मिलने जाकर अचानक उसकी नजर सुबह सडक घूमते हुए पिता-पुत्री पर पड गयी।"

"अच्छा जो कुछ उसने देखा वह सही है इसी का क्या प्रमाण है ? ? शायद उसने किसी और के धोखे म किसी और को देख लिया हो।"

"पागल हुई हो ? उसकी नजर बडी पैनी है।"

"फिर तुम जो कह रहे हो शायद ठीक ही है। अब लेकिन हमे करना क्या चाहिए ?"

सुविमल ने गम्भीरता से कहा, "हम क्या करना है ! जब वह खुद ही सम्पर्क नही रखना चाहता है।"

माया की आँखो के सामने तैर गया कपडे-लत्तो का ढेर, टैक्सी पर चढ़कर पूरे कलकत्ते की सैर, हर रोज सिनेमा, थियेटर और खाने-पीने का भव्य दृश्य। सुशोभन जितने दिन रहते, दैनिक खरीदारी की पूरी व्यवस्था अपने कधा पर उठा लेते।

तबियत खराब होने के कारण आना नही हो रहा था, यह दूसरी बात है। सिर्फ एक जवान कुवारी लडकी का सहारा लेकर जो व्यक्ति दूर विदेश म रह रहा है, उसकी तबियत खराब होने पर नजदीकी रिश्तेदारो का जो कर्त्तव्य होता है, उसकी ओर किसी ने ध्यान नही दिया, लेकिन कामधेनु कलकत्ता आने पर भी किसी दूसरी गोशाला मे पडी रहेगी, यह कैसी बात हुई ? उसे समझा-बुझाकर ले आना क्या माया का कर्त्तव्य नही है ?

मायालता ने अपने सबसे बड लडके को बुलाया।

बोली, "उनसे पता लेकर जरा तू अपने मँझले चाचा से एक बार मिल तो आना।"

बडे लडके ने बेजारी से कहा, "मुझसे नही होगा। पिताजी ठीक तो कहते है, वे जब सम्पर्क ही नही रखना चाहते हैं—"

"सम्पर्क नही रखना चाहते, यह बात तुम लोगो को किसने बतलायी?"

"कहेगा कौन? उनका व्यवहार ही बता रहा है। सुना है बहुत दिनो से आए हैं अब तक उन्हाने कोई खबर ही नही दी—"

इस तर्क से हारकर उन्होने अपने मँझले लडके को पकडा। चुपके-चुपके बोली, "तेरे बडे, भाई ने तो बात नही मानी, तू ही एक बार चला जा। हम लोग अपना तो कर्त्तव्य निभाएँ।"

"कोई कर्त्तव्य नही है। लेकिन जब कह रही हो तो चला जाता हूँ। मुझे लगता है यह सब नीता का किया धरा है। वह बडी अहकारी लडकी है।"

"यह कहने की बात है। हालांकि ऊपर से दिखाएगी कि वह कितनी निरहकारी है।"

"लेकिन माँ यह सुचिता कौन है?"

"इसे बताने से क्या तेरी समझ म आएगा?" माया बाली, "वही दिनाजपुर के किसी पडोसी की लडकी है?"

"तुम पहचानती हो?"

"पहचानती हूँ क्या, पहचानती थी। उस पर भी कोई खास जानकारी नही। मैं शादी के बाद वहा गयी नही और उसकी भी शादी हो गयी।"

"लगता है मँझले चाचा ने सम्पर्क बनाए रखा था।" मन ही मन हँसते हुए वह बोला।

आखिर वह इस युग की चालू सतान है, जो क्षण मे ही सारी चीजो को समझकर उसके काय-कारण सम्बन्धो पर विचार कर लेता है।

"सम्पर्क?"

मायालता उद्विग्न होकर बोली, "कहाँ? मुझे तो नही मालूम? मैंने तो कभी उसके मुँह से उसका नाम तक नही सुना। खैर, तू जाकर जरा मिल आ।"

"जा रहा हूँ। तुमने जब एक बार पकड ही लिया है तब बिना भेजे हुए भला तुम मान सकती हो?"

पता देने की इच्छा सुविमल की नही थी। लेकिन जब माया ने जिद पकड ली तब दे ही दिया। तैयार होकर मँझला लडका बाहर निकल गया।

फिर दो घटे बाद आकर स्याह चेहरा लेकर बोला "हो गयी तो शिक्षा?"

"क्यो क्या हुआ?"

माया आशकित होकर पूछ बैठी।

लडके ने नाराज होकर कहा, "मँझले चाचा मुझे पहचान ही नही पाये ।"

"पहचान नही पाये ।"

क्या वाकई नही पहचान पाये ? या न पहचानने का नाटक किया । तुम लोगो की सुचिन्ता थी या कोई और, वे खाने की थाली हाथ मे लेकर नजदीक आकर बडी आत्मीयता जतलाने लगी, "अरे, तुम सुविमल दादा के लडके हो, क्या नाम है ?" मैं बिना खाये-पिये चला आया ।

"अच्छा किया । और नीता ? नीता ने कुछ कहा ?"

"उनसे भेट ही नही हुई । वे उनके लडको के साथ सिनेमा गयी हुई थी ।"

मायालता थोडी-देर तक भौंहे सिकोड कर बैठी रही फिर बोली, "समझ गयी ।"

"सुचिन्ता, सुचिन्ता ।"

मर्दानी आवाज मे पुकारते-पुकारते नीता को पीछे छोडकर, सुशोभन सीढियो से चढकर ऊपर चले आये । यह देखकर नीता आश्चयचकित हो गयी । वह धीमे-धीमे बातचीत करना, आहिस्ते-आहिस्ते चलना-फिरना, हर बात मे बटी के प्रति निर्भरता, सुशोभन की ये सारी बाते कहाँ चली गयी ?

थोडा नाटा और भारी शरीर लेकर सीढी पर जोर-जोर से धप्प-धप्प करते हुए चढ गये ।

सुशोभन ऊपर चले आये ।

उन्हें सुचिन्ता की जरा भी आहट नही मिली । बुरी तरह नाराज हो गये । और अपने कठस्वर से अपने क्रोध को जाहिर करने मे जरा भी सकोच नही किया ।

"सुचिता ! तुम घर मे हो भी या नही ?"

इस बार सुचिन्ता अपने चश्मे को आचल से पोछते-पोछते उस छोटे-से कमरे से बाहर निकल आयी । शायद अभी-अभी नहाकर तरोताजा होकर निकली हैं । उनकी वेश-भूषा को देखकर लगा कि वे शुभ्रता की कोई प्रतिमूर्ति हो ।

सुचिन्ता के माथे पर बालो के सिरो पर अनगिनत जलकण थे । चश्मा हाथ मे रहने के कारण आँखे जाने कैसी धूसर-धूसर लग रही थी ।

सुचिन्ता कुछ नही बोली सिर्फ सामने आकर खडी हो गयी ।

हालाँकि सुशोभन ने इस स्थिरता की ओर ध्यान नही दिया, अस्थिर होकर कहने लगे, "हर समय कहाँ रहती हो, सुचिन्ता ? बुलाने से कोई जवाब नही मिलता ।"

अभियोग का स्वर, दावे का स्वर ।

सुचिन्ता हर क्षण अपने को खिन्न महसूस करती थी, इस बार फिर नय सिरे से विपन्न हुईं। इसलिए उनके भी स्वर म अभियोग झलक आया, "तुम भी खूब कहते हो सुशोभन, मुझे क्या और कोई काम नही है ?"

"काम ! तुम्हे काम है !" सुशोभन शात नही हुए, और भी नाराज हो गये, "तुम्हारे लिए काम ही सबसे बडा हो गया ? मेरी बातें कुछ नहीं ? तुम पहले तो ऐसी नही थी सुचिन्ता ।"

पहले के प्रसग पर सुचिन्ता चकित हुइ, झटपट बोली, "यह काम-धाम खत्म करके बिना निश्चित हुए क्या तुम्हारी बातें सुनी जा सकती हैं ? अब कहो, सुनती हूँ। नीता, तुम लोगा ने आज बहुत देर कर दी ।"

"देर नही होगी ?' अभियोग भूलकर सुशोभन बडे उत्साह से कहने लगे, "क्या यह तुम्हारे सामने वाले पार्क मे घूमने जाना है ? जाने कितनी मजेदार जगहों में नीता मुझे ले जाती है, जानती हो ? इस बार कलकत्ते म आकर घूमते घूमत वह कहने लगी कि उसका वजन बढ़ गया है। लेकिन असली बात ही सुचिन्ता तुम नही सुनना चाहती हो ।"

सुचिन्ता मुस्कराने लगी ।

इस समय थोडा निश्चित होकर वे मुस्करा सकती हैं। इस समय तीना बेटा मे से कोई भी घर म नही है ।

आश्चर्य की बात है। लोग कितने आश्चर्यजनक रूप से अपने को बदल सकते हैं ।

भले ही स्नेह का उच्छ्वास प्रकट नही होता था, सभ्य होने की कडी साधना मे भले ही वे शात बनी रहती थी लेकिन लडका के घर रहने पर पहले तो ही सुचिन्ता बडा निश्चित महसूस करती थी ।

लेकिन अब ।

अब लडके जितना अधिक बाहर रहते है उतना ही ज्यादा जैसे मन भी बडा निश्चित रहता है ।

इसीलिए सुचिन्ता मुस्कराती हैं ।

मुस्कराते हुए कहती हैं, "तुम्हारी असल बात कौन-सी है, यह भला मैं कैसे जान सकती हूँ ।"

"मैं कैसे जान सकती हूँ ? वाह, खूब रही। सारी बाते कह दी गयी। कल से तुम भी हम लोगा के साथ घूमने चलोगी, समझी" सुचिन्ता को जैसे दड दिया गया हो, कुछ इस प्रकार की भगिमा के साथ भारी-भरकम आवाज मे सुशोभन ने अपनी बात खत्म की। 'तुम्हे जाना पडेगा। घर मे वुद्धू की तरह बैठे रहने का कोई मतलब नही होता। कल हम लोग फिर वही जाएँगे—क्या कहती हो नीता ? वह कितने मजे की जगह है सुचिन्ता ।"

सुचिन्ता हँस पडी, बोली, "मुझे अब और मजे की जरूरत नही है।"

"जरूरत नही है ? कहने से ही हो गया कि जरूरत नही है।" सुशोभन ने अपने नजदीक रखी खान की मेज पर एक जोरदार मुक्का मारा, "मैं कहता हूँ जरूरत है। स्वस्थ लोगो को भी बीच-बीच म जाकर मेटल हास्पिटल देखना चाहिए —समझी ?"

"मेन्टल हास्पिटल ?"

नीता की ओर देखकर सुचिन्ता ने इसे धीमे-धीमे दोहराया। नीता ने बढावा देने का इशारा किया। मतलब इन्हे कहने दो, देखो ये क्या कहते हैं।

"हाँ।" अचानक सुशाभन हँस पडे। बाले, "तभी तो। अन्यथा मैं कह ही क्यो रहा हूँ ? अगर तुम वहाँ जाओगी—" फिर सुशोभन हँसने लगे, "तुम्हे ही शायद रोगी समझकर देखने लगेंगे, ठीक है न नीता।"

सुचिन्ता ठीक तरह से रहस्य के मूल तक न पहुँच पाकर यूँ ही अदाज से बोली, "वाह, मुझे क्या यू ही रोगी समझने लगेगे ?"

"यही तो बात है।"

सुशोभन भारी-भरकम आवाज म ठहाका लगान लगे।

"मैं ऐसा उन्हें भला सोचने ही क्यो दूँगी।"

सुचिन्ता बात पर बात करती जा रही थी।

"क्यो दूँगी ? नीता तुमने सुना। सुचिन्ता की बाते सुनो। कहती है—क्यो दूगी ?' मैंने कहाँ दिया ? पागलो की बातो का प्रतिवाद करना चाहिए ? नेवर-नेवर। और वे लोग तो ठीक बिगडे हुए पागल नही हैं। ठीक वैसे ही—जिसे कहते हैं सम्-सम् सम्भ्रात पागल। उनकी बाते सुनकर उन्हे कौन पागल कहेगा। हम लोगो के जाते ही अचानक एक आदमी को ख्याल आया, जैसे मैं एक मानसिक रोगी हूँ और वह एक विद्वान डाक्टर हो। इसके बाद की बाते क्या हुई जरा तुम बता तो दो नीता।"

"तुम्ही बताओ न पिताजी।" नीता मुस्कराने लगी, "तुम्ही ठीक से कह पाओगे।"

"कहती हो मैं ही बता पाऊँगा।"

"हाँ, यही तो।"

सुशोभन अचानक धूसर स्वर म बाले, "लेकिन क्या कह रही है ? हम लाग किसकी बातें कह रहे थे ?"

"वाह वही—मानसिक रोगियो के बारे म—"

"ओह हाँ-हाँ।" सुशोभन अत्यत कौतुकपूर्ण स्वर म कहने लगे, "उस पगला बाबू को ख्याल हुआ कि वह एक डॉक्टर है। मुझसे जिरह करन लगे।"

"जिरह !"

"आह, जिरह का मतलब सिर्फ पेचदार बातें। जैसे उसका और कोई उद्देश्य न हो सिर्फ मुझसे बातें करने ही बैठा हो। बस बातें ही बातें। सोच रहा था जैसे मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। मैं रहता कहाँ हूँ, क्या करता हूँ, कब-कब कलकत्ते मे आना हुआ था, पिछले दिनों मैंने क्या-क्या किया था—फिर मेरी कोई 'हाबी' है कि नहीं, पुस्तक पढ़ना, सिनेमा देखना, मैच देखना मुझे अच्छा लगता है या नहीं,—और भी कितनी बातें। बड़ी-ही निरीह भाव-भगिमा से। इधर तो मैं सब समझ गया था—"फिर से अपनी रोबदार आवाज में सुशोभन हँसने लगे, "इसीलिए मैं भी भले व्यक्ति की तरह चुपचाप उसके सवालों का जवाब देता गया। जैसे यह मैं बिल्कुल नहीं समझ पाया होऊँ कि यह आदमी बना हुआ डॉक्टर है। अच्छा नीता इसके बाद क्या हुआ? बीच-बीच म अचानक इतना भूलने लगा हूँ। नीतू के कारण ही मुझे ऐसा हुआ है।"

"मेरे कारण?"

नीता ने अभियोग के स्वर मे कहा, "यह तो खूब रही। खुद बातें करते-करते दूसरी बात सोचने लगोगे और दोष मुझे दोगे।"

"बातें करते-करते दूसरी बातें सोचने लगता हूँ। हाँ, वही तो। तू बिल्कुल ठीक कहती है नीता। सुचिन्ता समझो, यह नीता बिल्कुल सही बात समझ लेती है। दूसरी बात—दूसरी बात ही तो सोच रहा था। अच्छा बता, तो मैं क्या सोच रहा था?"

सुशोभन की आँखो म कोई कौतुकपूर्ण मुस्कान झलक उठी।

"वाह, तुम क्या सोच रहे थे, इसे मैं भला कैसे बता सकती हूँ?"

सुचिन्ता जान छुडाने की भगिमा मे बोली।

लेकिन उनकी जान छोड कौन रहा है?

अचानक सुशोभन ने हाथ बढ़ाकर उनके कधे पर रख दिया और उसे झकझोरते हुए बोले, "तुम नहीं जानती? मैं क्या सोचता हूँ तुम इसे नहीं जानती? दिल्ली म तो सुचिन्ता तुम ऐसी नहीं थी? वहाँ तो तुम सब समझ जाती थीं।"

"पिताजी, तुम फिर गडबडा रहे हो।" नीता ने अपने पिता की पीठ पर अपना हाथ रख दिया, 'दिल्ली म सिर्फ तुम और मैं—हम दोनो ही रहते हैं। बुआ तो वहाँ नहीं रहती।"

"नहीं रहती? तुम्हारे कहने से ही मैं मान जाऊँगा?"

सुशोभन ने पुन टेबिल पर मुक्का मारा, "तू कितना जानती है? अभी ना उस दिन तू पैदा हुई। तू जब पैदा नहीं हुई थी, तब भी सुचिन्ता वहाँ थी। याद है हम दोनो कभी-कभी कुतुब चले जाते थे, और कभी चले जाते थे फिरोजशाह कोटला, हुमायूँ के मकबरे के आस-पास घूमते रहते थे—तुम्हें याद पड रहा है न सुचिता?"

सहसा सुचिन्ता टेबिल पर अपनी दोना कोहनिया और दोना हथेलियो म अपना चेहरा रखकर बैठे-बैठे आगे की ओर थोडा झुकते हुए बडी ही स्थिर आवाज म बोली, "बिल्कुल याद आ रहा है। पहले भूल रही थी, अब याद आ रहा है।"

"याद आ रहा है न—। याद क्यो नही आयेगा ? देख लिया नीता ?" सुशोभन आत्मगौरव से मुस्कराए, "समझी सुचिन्ता, नीता सिर्फ यही समझती है कि पिताजी बूढे हो गये हैं, भुलक्कड हो गये है। तुम्हारी कौन-सी बात मैं भूल गया हूँ जरा वह बता तो दो।"

नीता अचानक खिलखिलाकर हँसते हुए बोली, 'वाह, यह मैं कैसे कहूँगी। मैं तो तब पैदा ही नही हुई थी।"

"यह भी सच है। अच्छा सुचिन्ता दुकानो मे इतना बढिया-बढिया कपडा रहते तुम एक बिस्तरे की चादर क्या लपेटे रहती हो भला ? उस समय मैं यही सोच रहा था। तभी तो जाने कैसे सब गडबडा गया। लेकिन बताओ ऐसा कपडा क्यो पहनती हो ?"

नीता तुरत बोल पडो, "कलकत्ते मे आजकल बहुत मिलावट चल रही है पिताजी। अच्छी-अच्छी पहनने की साडियाँ एक बार धोबी के यहा से धुलकर आने को बाद ही बिस्तरे की चादर लगने लगती हैं।"

"तो दिल्ली से क्यो नही खरीदती ?" सुशोभन नाराज हो गये, "दिल्ली म कितनी अच्छी साडिया मिलती हैं।"

"ठीक है पिताजी, अब से सुचिन्ता बुआ दिल्ली से ही कपडा खरीदेगी।"

"खरीदेगी ? सुचिन्ता खरीद लेगी ? क्यो हम लोगो के पास रुपया नही है ? हम लोग नही खरीद सकते उसके लिए ?"

"ठीक कहते हो पिताजी—तुम्ही तो खरीद दे सकते हो।"

"मैं ? मुझे खरीद देने के लिए कह रही हो।"

"हाँ, यही तो कह रही हूँ।"

नीता बलपूर्वक बोली।

यही तो चिकित्सा है।

सुशोभन तृप्त स्वर म बोले। "तब देखना सुचिन्ता दिल्ली का रग कितना असली, कितना पक्का होता है।"

"वह तो देख ही रही हूँ।"

सुचिन्ता गभीर होकर बोली—दीर्घ निश्वास को छिपाकर।

"जरा मैं जाकर हाथ-मुँह धो लूँ"—नीता बोली, 'कब की निकली हूँ। बहुत गरम लग रहा है।"

नीता के जरा-सा हाथ-मुँह धोन का मतलब है एक घटे की फुरसत।

सुचिन्ता ने घडी की ओर देखा।

साढे चार बजे थे।

ठीक एक घटे बाद निरुपम लौटेगा। अगर उस समय नीता यहाँ बैठकर मेकअप न करे तो ठीक है। अगर निरुपम लौटकर देखे कि सुचिन्ता और सुशोभन दोनो दिन ढलते वक्त मुहामुँही बैठकर एक दूसरे से बातें कर रहे हैं ?

पागल के बिना विचारे काम करने के कारण शायद ठीक उसी समय सुशोभन सुचिन्ता के कधो को झकझोर रहे हो, या शायद हाथ ही पकडे हुए हो, या शायद खूब नजदीक अपना चेहरा लाकर कुछ फुसफुसाकर कह रहे हो।

तब सुचिन्ता क्या करेगी ?

नीता पर सुचिन्ता को बहुत गुस्सा आता था। प्राय आता था। लगता था नीता उनको अजीब अडदव मे डालकर मजा ले रही हो। लेकिन ऐसा वे नीता की अनुपस्थिति मे ही सोचती हैं। उसे देखने से ही मन बदल जाता था। उसके कसकर बँधे गए बालो के बधन को नकार कर माथे पर बिखरी हुई केश राशि, मोम की तरह चिकनी, मुलायम और निराभरण दोनो बाहे निर्मल प्रसाधनहीन चेहरा और हमेशा सफेद साडी पहने हुई दुबली देह सब कुछ मिलाकर जैसे ग्लानिहीन पवित्रता की सृष्टि करते थे। उसे देखकर यह नही महसूस होता था कि वह बहुत दिन पहले दिवगत हुई अपनी माँ की तरह लगती थी।

सुशोभन की लडकी सुशोभन को तरह ही सरल लगती है। लेकिन आँख के आट होते ही उसे नीता पर गुस्सा आने लगता है। जाने क्या ऐसा होता है।

सुचिन्ता नही जानती लेकिन सुचिन्ता का अन्तर्मन जानता था नीता के नजदीक न रहने से सुचिन्ता को एक सर्वग्रासी-भय निगलने लगता था। वह डर क्यो था उसका स्वरूप क्या था, इसे सुचिन्ता नही जानती। सिर्फ जानती थी कि नीता के नजदीक रहने से मन ही मन उनकी ताकत बढ जाती थी। उस इत्मीनान मे बाधा पडते ही आक्रोश बढ जाता था, मानसिक अवरुद्धता की-सी स्थिति हो जाती थी।

"मैं भी चलू ।" सुचिन्ता बोली।

"तुम भी चलोगी !" सुशोभन ने नाराजगी जाहिर की, "वाह खूब रही, तब मैं क्या वह मजेदार कहानी इस मेज को सुनाऊँगा।"

"ठीक है, कहानी सुनके जाती हूँ।"

"लेकिन तुम नही जाओगी। कहानी सुनने के बाद भी नही।" सुशोभन ने बडे ही उन्मुक्त गले से कहा, "तुम्हारे दूसरी जगह रहने से मुझे बुरा लगता है।"

सुचिन्ता एक खतरनाक खेल खेल रही थी।

ऐसा क्यो कर रही थी ?

अकेले रहने के साहस से ?

"जिन्दगी भर तो मैं दूसरी जगह ही रही।"

सुशोभन ने आखे उठाकर सुचिन्ता की ओर देखते हुए भरे हुए गले से कहा, "यह क्या ठीक है, कहो तो सुचिन्ता मैं इसे क्यो नही समझ पा रहा हूँ। तुम कहती हो तुम हमेशा दूसरी जगह रही, नीता कहती है तुम कभी दिल्ली मे नही रही, लेकिन—"

"लेकिन क्या ?"

सुचिन्ता ने पूछ ही लिया।

"मुझे लगता है कि तुम मरे पास थी। जाने कितने दिन तुम मेरे पास रही हो। तुम्हारे साथ जब मेरी शादी हुई थी—"

"ओह सुशोभन !"

सुचिन्ता कुर्सी छोडकर उठ खडी हुईं, "क्या पागलो की तरह बक रहे हो ?"

"पागलो की तरह ?"

"बिल्कुल ! मेरे साथ किसका विवाह हुआ था क्या तुम इतना भी नही जानते ? तुमने अनुपम मित्तिर का नाम कभी नही सुना ?"

"अ-नु-प-म। ओह आई सी। तुम्हारा वही हतभाग्य पति। जिसने तुम्हारे सारे गहने बेच दिए हैं। लेकिन उसने बेचा क्या कहो तो ? उसके पास तो काफी रुपया था।"

"वे तो दिवगत हो गये हैं।"

अस्वाभाविक दबाव डालकर सुचिन्ता कह उठी।

"दिवगत हो गय हैं।" सुशोभन सहसा उद्दीप्त हो उठे, "ठीक हुआ, बहुत अच्छा हुआ। पुलिस न गोली चलाकर मार डाला है शायद ? तुमसे शादी करके तुम्हे परेशान करने का दण्ड मिला। लेकिन सुचिन्ता तब तुम कब मेरे साथ शाम को चादनी अग मे लगाकर हुमायू के मकबरे के पास घूमती रहती थी ?"

"मैं तो नही घूमती थी।" सुचिन्ता ने निर्लिप्त स्वर मे कहा, "तुम्हारे साथ घूमती थी तुम्हारी पत्नी।"

"मेरी पत्नी। वह कौन है ?"

"क्यो जिससे तुम्हारी शादी हुई थी। जो नीता की माँ थी।"

"तुम फिर से बेकार बातें करने लगी सुचिन्ता—तुम्हारे अलावा और किसके साथ मेरी शादी हुई था ? तुम्हारी दादी कहती थी—"

सुचिन्ता ने गभीर होकर कहा, "तुम सारी बाते सोच-समझकर कहने की कोशिश करो सुशोभन ? तुम बहुत अधिक बहकने लगे हो। दिनाजपुर के मकान मे अनुपम के साथ मेरी शादी हुई थी, तुम बहुत अधिक रोये थे यह भी क्या याद नही अब पडता ?"

"मैं रोया था ? इतना बडा एक प्रौढ व्यक्ति होकर मैं रोने लगूँगा इसका

मतलब ?" सुशोभन ने भौंहें सिकोडकर कहा, "तुम भी जैसे मस वाले हस्पताल के उसी पागल की तरह मुझे पागल समझ रही हो।"

"उन दिना तुम्हारी क्या इतनी उम्र हुई थी ?" सुचिता ने ठडी आवाज मे कहा, "मेरे सबसे छोटे बेटे की उम्र के थे तुम जब मेरी शादी हो जायगी सुनकर—"

"सुचिन्ता, सुचिन्ता।"

सुशोभन कुर्सी से उठकर सुचिन्ता के दोना कधा को जोर से दबा दिया।

"सब याद आ रहा है। सभी कुछ। तुम्हारी दादी न कहा था, "सुचिन्ता की शादी के समय काफी मेहनत करना पडेगा भानू। कर सकेगा न ?"

गर्दन हिलाकर मैं दौडकर अपने विलायती अमरख के पेड के नीचे पहुँच गया, जहाँ बचपन मे हम दोनो मिल जुलकर खेलते-कूदते थे। कहो, ठीक कह रहा हूँ न ?"

सुचिन्ता क्या भूल गयी थी कि वे एकदम ठीक सुशोभन के सामने खडी हुई हैं। भूल गयी कि उनके दोना कधा पर सुशोभन की भारी भरकम हथेलियाँ रखी हुई हैं। भूल गयी कि इस तरह किसी की आँखो म आँखें डालकर देखने की उम्र उनको अब नही रही।

और भूल गयी कि अब निरुपम के घर लौटने का समय हो रहा है। इसलिए आखें उठाकर निष्पलक देखते हुए वे रुद्ध स्वर मे बोल पडी, "हाँ, हाँ, बिल्कुल ठीक कह रहे हो। ऐसे ही कहते रहो।"

सुशोभन बोले, "सिर्फ मेरे ही रोने की बात कह रही हो, खुद तुमने क्या किया था सुचिता ? सोचती हो इसे भी मैं भूल गया हूँ। रोते-रोते तुम्हारा चेहरा और आखे नही सूज गयी थी ? हूँ, भूल जाने वाला लडका सुशोभन मुखर्जी नही है। उस रोने-धोने के पर्व के बाद मैं तुम्हे तुम्हारे घर तक जाकर छोड आया था। नही छोडा था ?"

सुचिता गर्दन हिलाकर बोली, "हाँ।"

कहा था, "मुह और आखें कैसी लाल हो गयी हैं, घर जाकर क्या कहोगे ? तुमने कहा, 'कहूँगी सर्दी लग गयी है।' कहो, एक-एक बात सही है कि नही ?"

सुचिन्ता अब गदन भी नही हिला रही थी—आँखा के इशारे से बोली, "हाँ।"

"तुम्हारी शादी के दिन मैंने बिल्कुल काम नही किया था।" सुशोभन सहसा हँस पडे, "तुम्हारी बूढी दादी को खूब ठगा था। कहा था, मुझे बुखार हुआ है। बीमारी का झूठ पकड जाने के डर से मैंने तुम्हारी शादी ही नही देखी। सिर्फ जब वह हतभाग्य अनुपम मित्तिर तुम्हे लेकर जाने लगा तब स्टेशन के करीब जाकर रेलगाडी न छूटने तक वही खडा रहा था—"

शात, शीतल स्तिमित सुचिन्ता सहसा ऐसी उद्वेलित क्या हो उठी ? इतनी व्यग्र व्याकुलता से क्या पूछने लगा, "इसके बाद सुशोभन तुमने क्या किया ? कहो, खूब अच्छी तरह से याद करके कहो, इसके बाद क्या किया। पिछले सत्ताइस वर्षों से जब तक मैं यही सोचती रही हूँ, इसके बाद—ठीक इसके बाद तुमने क्या किया ?"

दोनों भारी-भारी बाजू शिथिल होकर लटकने लगे।

सुशोभन खुद भी शिथिल होकर कुर्सी पर बैठ गये। खोये-खोये गले से बोले, "इसके बाद और कुछ याद नही पड रहा है सुचिन्ता। रेलगाडी की आवाज और इजन के धुएँ ने जैसे सब कुछ गडबड कर दिया। उसके बाद क्या मैं बहुत देर तक स्टेशन पर ही टहलता रहा था ? कुछ बताओ सुचिन्ता, इसके बाद क्या मैं किसी दूसरी गाडी म सवार हो गया था ? मुझे कुछ भी याद नही पड रहा है सुचिन्ता—अचानक सुशोभन चीख पडे, ' मुझे कुछ भी याद नही पड रहा है। सिर्फ देख पा रहा हूँ अधमैले कपडा वाले एक लडके को जिसके पैरा म सिर्फ चप्पल थी, हाथा म कुछ नही था, वह रेलगाडी म सवार हो गया। सुचिन्ता, तुम इस लडके को पहचानती हो ?"

नही, सुचिन्ता जवाब नही दे पायी। उस लडके के बारे म बता नही पायी। न जाने कब निरुपम ऊपर आ गया था। उसने पूछा, "क्या हुआ ?"

पूछेगा ही तो।

पूछना ही पडेगा, "क्या हुआ ?"

उसने नीचे तल्ले से आते हुए सुशोभन की चीख सुन ली थी।

सुचिन्ता क्या भगवान को मानती थी ?

वह सिर्फ मनुष्य की सत्ता स्वीकारती थी, भयानक विपत्ति से बचाने की क्षमता उसी की है।

भगवान ही जानते हैं कि वह उन्हे मानती थी या नही।

लेकिन आज ऐसे मौके पर उन्होने भगवान की सत्ता स्वीकार की। बिना स्वीकारे रह नही सकी। सोचने लगी सुशोभन अगर अचानक ऐसे समय अपनी स्मृति-शक्ति खोकर शिथिल न हो पडते तब क्या होता ?"

क्या हुआ, इसका जवाब सुशोभन ने ही दिया। बोले, "वह लडका कौन है, इसे नही समझ पा रहा हू।"

"कौन लडका ? '

मा की ओर निरुपम ने पूछने की भगिमा मे ताका।

सुचिन्ता ने इशारे से अपने दोनो हाथो को हताशा म हिला दिया।

"किस लडके की बात कह रहे है ?"

"वह तुम नही जानते। वह अनुपम मित्तिर के रेलगाडी पर चढकर चले

जाने के बाद, बहुत बाद, नये सिरे से धुएँ और आवाज भरी रेलगाडी मे जो लडका सवार हुआ था, उसी को लेकर चिन्ता है।"

निरुपम के कानो मे एक शब्द ढेरो रहस्य छिपाये हुए प्रवेश कर गया— "अनुपम मित्तिर," "वर अनुपम मित्तिर।"

जाने कब की बात चल रही थी वहा पर ?

प्रसग क्या था ?

इसका मतलब सुचिन्ता अपने बचपन के साथी के साथ बैठकर अतीत का दोहन कर रही थी। लेकिन वह लडका ?

"वह लडका कही मुखर्जी घराने का सुशोभन तो नही था ? ओ सुचिन्ता के बडे बेटे, सुना तुम तो लडको को पढाते हो। विद्वान् हो। बताना जरा—क्या यही सच है ?

"मैं तो ठीक समझ नही पा रहा हूँ। मतलब इसके पहले की बात तो मैंने नही सुनी है।"

"पहले की बात तो वही रात की बात है। सुचिन्ता तुम्हारा बडा लडका पहले की बाते जानना चाहता है। बता दूँ ?"

सुचिन्ता खामोश और आत्म-केंद्रित हो गयी।

बोली, "उससे सुनने से क्या फायदा ? वह नही सुनेगा। वह थका-मांदा आया है। अब वह नहा-धोकर भोजन करेगा।

लेकिन सुशोभन जब उद्दीप्त होते थे तब युक्ति और प्रतिवाद बिल्कुल नही ठहर पाता था। इसलिए निरुपम की तकदीर मे जल्दी आराम करने की स्थिति नही हो पायी।

सुशोभन ने अवहेलना के स्वरो मे कहा, "यगमैन ! को भला कभी थकान आती है ! सुनो बडे बेटे, तुम लोगो की उम्र मे मुझको जरा भी थकावट नही होती थी। सिर्फ जब सुचिन्ता का निधन हुआ, जब सभी मर गये—इस ! फिर यह मैं कैसी गलती कर रहा हूँ। नीता नाराज होगी। सुचिन्ता भी है और सारे लोग भी जीवित है।

निरुपम ने मुस्कराते हुए कहा, "आप भी तो यगमैन हैं।'

"धत्त, मेरे कितने बाल पक गये है।"

"उससे क्या हुआ ?" निरुपम ने हँसते हुए कहा।

लेकिन कहा किससे ?

सुचिन्ता सोचने लगी निरुपम ने यह बात किससे कही है ?

इस भोले-भाले पागल को ? या किसी और को ?

'सुचिन्ता, जरा अपने बडे लडके की बाते सुनो।

सुशोभन मेज पर हाथ पटककर हँसने लगे।

इस बार सुचिन्ता उठकर बोलीं, "सुशोभन, तुम सिर्फ बडे लडके, मॅझले लडके ऐसा क्यो कहते हो ? मेरे लडका का क्या कोई नाम नही है ?"

दूसरे ही क्षण सुशोभन ने बिना किसी ग्लानि के कहा, "तुम्हारे तो ढेर सारे लडके हैं सुचिन्ता। इतने नाम भी क्या याद रहते हैं ?"

"क्या पागलो की तरह बकते हो।' सुचिन्ता शर्म के मारे धिक्कार उठी, "मेरे तो सिफ तीन लडके हैं।'

"ठगो मत सुचिन्ता, बेकार बाता से ठगो मत। तुम्हारे ढेर सार लडके है। मुझे क्या नजर नही आते ? घर म कितनी भीड रहती है। और जब वे लोग नही रहत, तब घर कितना शान्त रहता है।—"

"नीता तुम खाली हुई ?"

सहसा अपने स्वभाव के विरुद्ध नीता चीख पडी। इन सब अद्भुत भयावह कणकट्टु प्रसगा से मुक्ति पाने के लिए ही जैसे वे आत स्वर मे चीख उठी।

आश्चय है। यह लडकी आखिर कर क्या रही है ?

जाने कब से गयी है।

नीता ने कमरे से जवाब दिया, "आ रही हूँ बुआजी।"

निरपम क्या अपन कमरे म नही जा रहा है ?

सुचिन्ता सोचने लगी, ये लोग तो इस तरह से कभी नही खडे होते। सुचिन्ता उनकी ओर ताक नही पा रही थी।

उसे हटने के लिए कह भी नही पा रही हैं—जाओ मुँह धो लो, जरा आराम कर लो।

लेकिन उद्धार किया नीता ने ही आकर।

आडम्बरहीन साज-सज्जा होने के बावजूद उसमे एक चमक थी।

"क्या हुआ ? लगता है बुआजी मेरी पीठ तोडने की व्यवस्था कर रही हैं।"

"तुम्हारी जैसी लडकी के लिए वही उचित होगा।"

स्नेह-भर तिरस्कार के स्वर मे सुचिन्ता ने वातावरण की बोझिलता को कुछ कम करने की कोशिश की। बोली, "तभी से तुम शाम होने तक नहा ही रही थी ?"

"ओह बुआ, शाम को न्हाने मे बडा मजा आता है।'

मारे प्यार के नीता जैसे पिघलने लगी।

और साथ ही साथ सुचिन्ता को लगा कि इस तरह से पिघलने का कोई कारण हो नही था।

ऐसी भगिमा का लक्ष्य क्या था ?

निरपम ने नीता की ओर देखकर आँखो ही आँखा म पूछ लिया, उस वक्त कुछ हुआ ?

पूछने का कारण था ।

नीता ने लुम्बिनी जाते समय निरुपम से साथ चलने के लिए कहा था । लेकिन मन समीक्षक डॉक्टर ने किसी को साथ न लाने की सलाह दी थी । भीड करने की जरूरत नही थी । रोगी को यह बिल्कुल न पता चल कि उसके लिए यह सब किया जा रहा है । उसे यही समझने दिया जाय कि नीता जिस तरह से अपने पिता को लेकर इधर-उधर घूमने जाती है, वैसे ही वहा भी जा रही है । इसी-लिए निरुपम साथ नही गया ।

लेकिन डाक्टर से इस सम्बन्ध मे हुए परामश का तो वह भागीदार था । इसीलिए उसने नीता से इशारे से पूछा कि उस वक्त क्या हुआ ?

इशारा ! किस बात का था, इसे दूसरा कैसे समझता ।

सुचिन्ता का मन कडवाहट से भर गया । उसके ऐसे देवतुल्य पुत्र का भी यह हरकत ! नीता जिसे बड भैया कहती थी ।

लेकिन नीता ने इशारे की परवाह नही की । जोर से बोला, "बडे भैया आपने उस वक्त की बाते सुनी ?'

निरुपम मुस्करा कर बोले, "भला कैसे सुनता, दीवाले तो बाते नही करती ।

"अच्छा तो मैं ही कह रही हूँ ।" नीता बैठते हुए कहने लगा, "तो पिताजी, तुम्ही न सुना दो बडे भैया का—वही मजेदार किस्सा ।

सुशोभन विरक्ति से बोले, ' लेकिन बडा बेटा तो अभी तक खडा ही है । इस तरह से खडे रहने से क्या कहानी सुनायी जा सकती है ?'

"ठीक ही तो है ।'

निरुपम हँसकर बोल पडा, "यह लीजिए, बैठ गया । अब अपनी कहानी सुनाइये ।"

"अरे वह एक मजेदार घटना है । एक पागल हजरत को ख्याल आया कि वह एक डाक्टर है और मुझको उसने एक मानसिक रोगी समझ लिया । मुझसे बडे ढग से बाते करने लगा जैसे मैं बिल्कुल समझ नही पा रहा हूँ । उसका एक बना हुआ असिस्टेंट भी मौजूद था । उसने एक तरफ बैठकर ऐसी मुद्रा बना ली जैसे वह हम लोगो की सारी बाते नोट करता जा रहा हो । बाते करते हुए मैंने कितनी गढी हुई बातें उसे बता दी, इसको तो वह समझ ही नहा पाया ।'

अपनी परिचित मुद्रा म सुशोभन हँसते रहे ।

छोटा-सा आँगन उनकी हँसी की गम-गमाहट से भरपूर हो गया ।

"वाकई बडा मजा हुआ ।"

निरुपम ने कहा ।

सुशोभन बोले, "बीच-बीच म मानसिक रोगियो को देखने जाना स्वस्थ

व्यक्तिया के लिए वहुत जरूरी है। समझ म आया बडे साहवजादे। मैंने तो सुचिन्ता से कहा, हम लोग फिर वहा जाएगे। इस सम्बन्ध म मैंने काफी अध्ययन किया है। अस्वाभाविक लोगा को देखने से ही पता चलता है कि हम लोगा मे कोई अस्वाभाविकता है या नही। नजर आने पर व्यक्ति उनको तुरत सुधार लेता है।"

आश्चर्य।

सुचिन्ता चकित होकर सोचने लगी, जब यह और पाच जनो के साथ बाते करते ह तब इनकी मानसिक दुबलता बिल्कुल समझ म नही आती।

सिफ सुचिन्ता से बाते करते वक्त ही—

ऐसा क्यो ?

ऐसा क्या होना था ? वह नही जानती। सुचिन्ता इसे नही बतला सकती। इसीलिए ता उनका लेकर सुचिन्ता को इतना डर बना रहता था। तभी इतना सुख भी मिलता था।

"डाक्टर ने क्या कहा ?"

नीता गदन घुमाकर खिडकी से बाहर आकाश की ओर देखते हुए बोली, "उन्होने कहा, एक दिन म कुछ भी नही कहा जा सकता। ऐसे बहुत सारे रोगी ह जो कई-कई दिना तक स्वाभाविक लगते हैं लेकिन अचानक किसी दिन सब कुछ तोड-ताडकर तहस नहस कर देते ह, बावजूद इसके उन्होंने कहा, यह जो 'सब मर गय है, उन्ह सब छोडकर चले गये है, इस शून्यताबोध की कमी शुभ लक्षण मानी जा सकती है।"

"अब ऐसा नही कहते ?" निरुपम ने पूछा।

"अधिक नही। यहा आकर तो काफी इम्प्रूव किया है। ओफ, दिल्ली मे तो मेरा एक-दिन जैसा बीता, बता नही सकती।"

"डाक्टर दुबारा जाँच करना चाहते हैं ?"

"सप्ताह म दो दिन दिखलाने के लिए कहा है, लेकिन अब वहाँ नही, उनके अपने चेम्बर म।

"तुम्हारी हालत को देखकर बडा दुख होता है।"

"और भी कितनी कष्टकर अवस्था म मनुष्य को रहना पडता है। उदाहरण के लिए मेरे पिताजी, सुचिन्ता बुआ जो को ही देख लीजिए। मेरी हालत के लिए तो भाग्य उत्तरदायी है, लेकिन इन लोगो की हालत के लिए कौन जवाबदेह है ? सिफ लोगा की निर्ममता और उदासीनता के कारण दो-दो व्यक्तियो का सुन्दर जीवन राख म मिल गया। ऐसे कितने नष्ट हुए हैं, न जाने कितने होगे।"

अपना माँ के सम्बन्ध म इस तरह की बातें सुनने का अभ्यस्त मन कुछ कह नही सका। निरुपम मौन हो गया।

नीता ही फिर से धीरे धीरे कहने लगी, "इस देश म सब लोगो का यही धारणा बनी हुई है कि प्रयोजन सिर्फ यौवन म ही होता है। लेकिन मुझे तो लगता है कि वार्धक्य म ही साथी की जरूरत अधिक गहराई स महसूस होती है। जब उम्र कम रहती है, तब तो ढेर सारा चीजें करने के लिए पडी रहती हैं, कितनी गहमागहमी, कितने सुनहरे ख्वाब होते है। लेकिन उस ज्वार की समाप्ति के बाद, उस काम के खत्म हो जाने के बाद जब निष्ठुर पृथ्वी उसे भूल कर निश्चित हो जाती है, तब भी तो मनुष्य जीवित रहता ही है? तब आदमी कितना अकेला पड जाता है? लेकिन उस समय हम लोग समझते हैं कि दुनिया से अब इस आदमी को कुछ पाने की जरूरत नही रह गयी है। साथ ही उस व्यक्ति की भी कोई कामना नही रह गयी है। बडे भैया, क्या ऐसी धारणा बना लेना गलत नही है? अगर कोई आध्यात्मिकता म अपने मन को लगा लेता है, तब तो कोई बात नही, अगर किसी के प्रति घर ससार की विरक्ति है और तब भी वह व्यक्ति इस सासारिकता को ही जकडे रखकर अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहता है, तब भी कोई बात नही है, वह ऐसा करे। लेकिन जो इन दोनो म से किसी एक का भी अवलम्बन नही कर सकते, उनके लिए?"

"उनके लिए तुम क्या सोचती हो?"

निरुपम की आवाज काफी शात-गभीर लगी। तब भी लगा जैसे उसकी बात म छिपा हुआ कोई व्यग्य हो। लेकिन नीता ने इसकी परवाह नही की। वह भी गभीर लहजे म बोली, "वैसी क्षमता मुझम कहाँ है? सिर्फ यही लगता है कि साथी की जरूरत हर उम्र म लोगो को रहती है। अकेलापन हर उम्र के लिए कष्टकर होता है। बुढापे म और भी अधिक।"

"इतनी देर से तो वही एक बात कह रही हो। लेकिन वृद्ध लोगो के विषय मे इतनी बाते सोची कब? और ऐसा सोचा ही क्या? उनके मन की बाते तो तुम्हारी समझ म नही आ सकती हैं।"

"स्वस्थ लोग ही तो अस्वस्थ लोगो के बारे म सोचते है बडे भैया। शक्तिशाली लोग कमजोरो के लिए। पैसे वाले गरीबो के लिए सोचते हैं और बडे लोग बच्चो के लिए। ऐसा न हो तो सोचने का मतलब ही क्या होगा?"

"अच्छा, तुम्हारी इस थ्योरी पर बाद मे सोचूगा।' कहकर निरुपम ने बात समाप्त कर दी। फिर वह एक किताब लेकर देखने लगा।

इतनी सी लडकी की ऐसी बडी बडी बात उसे बहुत अच्छा नही लगती थी। इस लडकी से उस थोडा ममता भी हो गयी थी, इसलिए जब वह सरल, नि शक मन से उसके पास आकर बैठती थी तो उसे अच्छा लगता था। अच्छा लगता था,

नार्मल आदमी भी। उस पागल ने कहा था, "सुचिन्ता, जरा तुम इस बात को मुझे समझा देना कि या सिफ मुझे ही लगता रहा है कि तुम हमेशा मेरे साथ ही रही हो, साथ-साथ घूमती-फिरती बातें करती, गुस्सा, मान-अभिमान, हास-परिहास, प्रेम आदि करती रही हो, लेकिन इसके साथ-साथ सिर्फ ऐसा ही क्यो महसूस होता है कि सब कुछ खाली है, शून्य है। जाने कितने दिन आगे तुम मर गयी हो, खो गयी हो। ऐसा क्यो होता है ? तुम्हे क्या लगता है, कहो तो ?"

"हर समय मेरे बारे म ही क्या सोचते रहते हो ?"

सुचिन्ता बाली थी।

"तुम्हारे बारे म क्यो सोचता हूँ ? विचित्र सवाल तुमने किया है सुचिता ! तुम्हारे बारे म क्या मैं जान-बूझकर सोचता रहता हूँ ? चिंताएँ तो मन मे बनी ही रहती हैं।"

उनके दिमाग म हमेशा सुचिन्ता का बाते ही घूमती रहती थी। लेकिन सुचिन्ता ?

सत्ताइस वर्षों से सुचिन्ता जब-तब यही सोचती रही थी, इसके बाद सुशोभन ने क्या किया ? सोचा था जिंदगी मे अब इस सवाल का जवाब नही मिलेगा। लेकिन क्या सारे जीवन वे सुशोभन क बारे म ही सोचती रही थी। सिफ सुशोभन की स्मृति से ही मन को भुलाए रखे थी ?

नही, सुचिन्ता इसका जवाब इतनी सरलता से नही दे पायी।

सारे जीवन 'सुशोभन' नामक व्यक्ति की स्मृति उनके मन की गहरी परतो के नीचे दबी पडी रहा बीच-बीच म वह स्मृति विषाद के बादलो के रूप म ऊपर उठ कर मन को वाझिल और असहिष्णु बना देती थी, फिर कभी वह बिल्कुल मुरझाकर पडी रहती थी।

लेकिन क्या ऐसे भावोद्वेलन का कभी बाह्य प्रकाशन हुआ था ? चूडियो भरे हाथो का खनकाकर मसाला पासन से लेकर मास-मछली और विविध व्यजना के पाक-कौशल का प्रदशन क्या कभी किसी दिन भी बन्द हुआ था ?

सुचिन्ता न सोचा सुशोभन के पागलपन के कारण ही उसम इतना आवेग है। यह भी लगा कि इतने प्रबल आवेग के कारण ही पागलपन हुआ होगा। सोचन लगी, अगर सुशोभन की पत्नी जीवित होती, अगर सुशोभन का आच्छन्न किए होती, तब क्या सुशोभन के मन मे सुचिन्ता की अनवरत याद बनी रहती ?

इसके बाद सुचिन्ता सोचने लगी कि सुशोभन की इस हालत को देखकर उन्हे मर्मान्तिक पीडा क्यो हो रही है ?

वे इसे समझ नहीं पायी।

हर रोज रात म सोते समय और हर राज स्नान के बाद उपासना करते समय वे भगवान् से यही प्राथना करती थी, हे भगवान् ! उन्हे स्वस्थ कर दो।'

लेकिन प्राथना के इन शब्दा म भी तो वे जान नही डाल पाती है, बिना इसके सारे शब्द जमीन पर बेजान पड़ हुए नजर आते हैं। ज्योतिर्मय पक्षा से उडकर वे सब उर्ध्वलोक तक नही जा पाते ।

अनुपम कुटीर की खामोशी खत्म हो गयी थी। अधिकाश समय सीढिया पर कई-कई जूतो के चढने-उतरने का शब्द होता रहता था। तरह-तरह की आवाजा से दीवारें गूजती रहती थी। समवेत कठो की हँसी और सगीत से सारा वातावरण मुखरित हो जाता था।

प्राय वे लाग शाम के वक्त घूमने आते थे।

आते थे लाल, पीले, सफेद और गुलाबी मकान के लडके-लडकियाँ। जमघट इन्द्रनील के कमरे म होता था।

उनके साथ इन्द्रनील उन्मुक्त होकर ठहाके लगाता था, नौकर को समय-असमय चाय के लिए कहता था और देर रात तक उसके कमरे म गाने-बजाने की महफिल जमी रहती थी।

अब वह न कुठित होता था न उसे किसी तरह की आशका होती थी।

शायद उसने अच्छी तरह समझ लिया था कि उसकी इन हरकतो पर अब डाँटने-डपटने का किसी को साहस नही रह गया था। इन्द्रनील क्रमश अपने पिता की तरह होता जा रहा था। शायद सुचिन्ता भी सिर्फ ऐसा कहकर उसे धिक्कारना बन्द करने वाली थी।

इन्द्रनील को अपने पिता अपने अनुपम मित्तिर का स्वभाव मिला था।

अगर सुचिन्ता इसे पसद नही करती तो व क्या कर सकती थी। सभी कोई तो एक ही रुचि के नही होते।

लेकिन अपने कमरे म बैठकर कभी-कभी सुचिन्ता चकित होकर सोचती थी अचानक इस घर मे इतना बडा परिवर्तन कैसे हो गया ?

किसने इन्द्रनील का घर की धारा का उल्लघन करने का साहस दिया ? किसने सुचिन्ता को यह सब शोरगुल आदि सहने की शक्ति दी।

क्या नीता के कारण ऐसा हुआ ?

या हुआ सुशोभन के कारण ?

शायद सुशोभन ही हो। सुशोभन के रहने से ही ऐसा हो।

सुचिन्ता को एहसास हो रहा था कि उसके थोडा-सा भी नाराज होते ही वे लोग भी बदले म अपनी नाराजगी जाहिर कर देंगे।

अगर सुचिन्ता कहे, "यह सब मैं पसद नही करती" तो वे भी अपनी नापसदगी जाहिर करने मे नही चूकेंगे।

इसीलिए सुचिन्ता को इन सारी चीजा का दखते हुए भी न देखने का अभिनय करते रहना पडेगा।

यह सब सुचिन्ता को बर्दाश्त करना ही पडेगा।

सुशोभन ने सुचिता की विरोध करन की शक्ति नष्ट कर दी थी।

न जान किसने जहर और अमृत दोनो को एक ही पात्र म लाकर सुचिता के सामन रख दिया था।

लाल मकान की लडकी बाते करते-करते सीढी से उतरने लगी। बातें करते हुए सीढियो से इन्द्रनील और नीता के उतरने की आवाज सुचिन्ता के कानो म भी गयी।

इन्द्रनील को कहते हुए सुना, "लेकिन बहस अभी खत्म नही हुई। हार-जीत का फसला बाद मे होगा।"

जवाब म लाल मकान वाली लडकी ने क्या कहा। इसे वे स्पष्टत सुन नही पायी। सुनने का मन भी नही था।

ऐसा अहसास हुआ जैसे इन्द्रनील के स्वर म अनुपम मित्तिर बातें कर रहे हो। अनुपम अपने घर म ताश-शतरज, पासा आदि की बाजियाँ जमाए रहते थे। भाग लेने वालो को विदा देते हुए कहत, "लेकिन आज मामला खत्म नही हुआ। हार-जीत का फैसला बाद म होगा।"

खैर, अनुपम मित्तिर तो अपनी हार-जीत का फैसला मुल्तवी रखकर ही बीच मे चले गये।

सुचिता की हार-जीत का फसला कब होगा, क्या कोई बता सकता था?

क्या यह हारन की ही शुरुआत हा रही थी?

क्या अनुपम कही से यह सब दखकर हस रहे थे?

या शात, सम्य, शातल सुचिन्ता की अशात, उत्तप्त अवस्था देखकर अनुपम अपना मुँह व्यग्य से विकृत कर रहे थे?

नही, इसे अस्वीकार नही कर सकती सुचिता कि उनका इतने दिना का पत्थर मन अब भी अशात होना भूला नही था।

नही ता जब कल शाम को अचानक सुशोभन कह उठे, 'देखो सुचिता, कितनी सुदर चादनी खिली है, चला दिनाजपुर के मकान की तरह छत पर चलें।'

तब हृदय से लेकर मस्तिष्क तक और वहा से देह की समस्त शिराओ मे रक्त का प्रवाह अचानक तात्र हो गया था।

दिनाजपुर वाले मकान मे दोना चाँदनी रात का मजा लेने के लिए छत पर चले जाते थे।

लेकिन इसका मतलब यह नही था कि सुशाभन और सुचिता अकेले रहते थे। सुचिता के एक फूफाजी भी वीच-बीच म आते रहते थे। वे बडे शौकीन मिजाज के थे। उनके आते ही घर म तरह-तरह की मजेदार वाते होती थी। वे बेले की माला गले मे डाले रहते थे, बारहो मास शातिपुरी धाती पहनते थे और उनकी देह पर हमेशा एक चादर रहती थी।

गर्मिया की चादनी राता मे वे छत पर चटाई और तकिया लेकर चलने का हुक्म देते।

और घर तथा आस पडोस के बच्चा को इकट्ठा करते।

इनको लेकर मजेदार किस्से-कहानिया, मीठे-मीठे गानो और बीच-वीच म ताश के खेल आदि से वह एसा समा बाधते थे कि सभी बच्चे फूफाजी के नाम की बलिहारी जाते थे।

उनकी उम्र पचास वप की थी। रिश्ते मे हाते थे फूफाजी। इसलिए पसद न करन पर भा मना करने का साहस किसी को नही होता था। इसके अलावा वे दादी के जमाइ थे। दादी के पास उनके सात खून माफ थे।

वे अपन साथ अपनी पत्नी का भी जबरन ले जाते थे लेकिन बेचारी पत्नी बेले का महक और मद-मद बयार से प्रभावित होकर दो-चार मिनट म ही खर्राटे लेने लगती थी।

छत पर जाती सुचिता, साथ जाते सुशाभन, सुमाहन और सुशोभन की बहने।

लेकिन इससे क्या ?

तब किसे मालूम था, प्रेम क्या है। अकेले मिलने का सुख भी किसे मालूम था।

नजदीक बैठे रहना ही तब सबस बडा सुख था।

नजदीक बैठना नही बल्कि बैठ पाना। जाने कब से 'अब तुम बडी हा गयी हो' कहकर सुचिन्ता पर प्रतिब ध लगा दिया गया था। शाम होते ही छत पर छिडकाव करके चटाई ढान की परेशानी के बावजूद काई उस पर अपनी नाराजगी जाहिर नहा करता था। सभा फूफाजी को बहुत चाहते थे।

उसी छत पर—

अचानक एक दिन बेल की एक माला न एक नय ही इतिहास को सृष्टि कर दी।

शायद वह माला फूफाजी के गले से गिरा हागी या शायद तश्तरी मे मल्लिका पुष्पो के साथ पडी रह गया हागी।

वहा माला—

सुशाभन कह पडे, "सुचिन्ता, तुम्हे वह वेले की माला वाली घटना याद है ?"

याद थी, बाद म सिरे से याद आयी भी था।

याद आने के साथ-साथ तीस वप पहले की उस रात का घटना आँखा के सामन तैर गयी। लगा ताजे बेला के फूला की महक वातावरण म फैल गयी हो।

लेकिन सुशोभन का अब वह सब क्या याद आ रहा था ?

सुशाभन तो सब कुछ भूल हा जाते थे।

वही बात सुचिन्ता कहन लगी, "तुम तो सभी कुछ भूल जात हा, भला इतनी पुरानी बात तुम्हे कैसे याद है ?"

"याद नही थी। याद रहती भी नही। सब धुधली हो गयी थी। अब तुम्हे देखकर सब याद आ रहा है। यहाँ वेले की माला नही है ?"

"वाह, यहा कहाँ माला होगी ? यहाँ पर क्या फूफाजो हैं ?"

'लेकिन हम लाग तो है सुचिन्ता ?'

अचानक तमतमाये चेहरे से वेमतलव ही सुचिन्ता चीख पडी, "नही हम लोग नही है। हम लोग भा खत्म हो गय है।"

"क्या हम लोग भर गये है ?'

यह आवाज दु ख और कष्ट की न हाकर तज झनझना दने वाली आवाज थी। इसी से लग गया कि मायालता न पति के पास आकर आक्रमण किया होगा। यह जरूर है कि इस तेज आवाज को जवाबदेही सिर्फ मायालता के स्वभाव की ही नही थी, सुविमल के कारण भी थी।

इस तरह से बिना चिल्लाए रहा भी नही जाता। सुविमल अधिकतर जिस दुनिया मे खाये रहत थ वह दुनिया मायालता क अधिकार म नही थी इसलिए वहा स सुबिमल को खीचकर इस दुनिया मे उतारना पडता था और यह प्रेम-कामल, नम्र-मधुर वाता से सभव नही था।

इधर उम्र हा जान के कारण सुविमल कुछ अधिक अयमनस्क भी रहने लगे थे। यह भा हा सकता था कि उनके मुवक्किला की सख्या म बढोत्तरी हो गयी हो। क्याकि बीच-वाच म मायालता को कहते हुए सुना जा सकता था। अगर मैं तुम्हारा पत्नी न हाकर मुवक्किल होती तो मुझे अधिक सम्मान मिलता।

जवाब म सुविमल हसते हुए कहत, "तब भी तो कभी किसी मुवक्किल को जिता नहा पाया। हमशा ही हारता रहा।

"ताज्जुब है ! केस तो अभी खत्म ही नही हुआ। बिना फैसला हुए ही कैसे तुमने समझ लिया कि किसका जीत और किसकी हार हुई है।"

"गुद न मरने पर क्या समझ मे नही आता ?" मायालता ने फिर स्वर चढ़ाया, "यह जो जिंदगी भर भूत का बेगार करती आयी न कभी कोई गहना पहना न कोई तीरथ-धर्म निबाहा। बस तुम्हारे मा, बुआ, भाई, भतीजे आदि के लिए रसद जुटाते-जुटाते अपना सब कुछ खतम कर दिया, क्या इसी को जीतना कहते हैं ?" जिनने अच्छी आय की है, उसने मकान-गाडी सभी कुछ कर लिया है।"

इस अभियोग का मूल लक्ष्य सुशोभन था। वह भी अपन ही किस्म का व्यक्ति था।

एक स्वस्थ व्यक्ति और वाल-बच्चेदार आदमी होने के बावजूद यह उपाजन करने की बिल्कुल चिन्ता नही करता था। हालाकि खान-पहनने के मामले मे घर म सबसे अधिक नकचढा वही था। घर वाला को व्यग्य से आहत करने के लिये उसकी जीभ जैसे लटपटाती रहती थी।

सुविमल के अन्तमन म अगर अपने छोटे भाई के प्रति स्नेह प्रेम की अत - सलिला न प्रवाहित होती तो शायद मायालता ने अपनी गृहस्थी के बागीचे से उस झाड झखाड को उखाड कर कब तक फेक दिया होता। लेकिन वे मन ही मन सुविमल से बेहद डरती था। इस वे अच्छी तरह जानती थी कि भले ही वह पति पर बौछार करती रह, जली-कटी बाते सुनाती रहे और सुविमल उन वाक्या को हँस-हँसकर टालते रहे लेकिन इन सबकी एक लक्ष्मण रेखा खीची हुई थी। परोक्ष रूप से उस रेखा को लाँघने का साहस मायालता को न हो पाने के कारण ही उह जीवन भर इन सार झझटा के बीच अपनी गृहस्थी की गाडी चलानी पडी।

ससुराल म अकेले मँझल देवर सुशोभन ही ऐसे थे जिन्हे मायालता अच्छी नजर से देखती थी, लेकिन वहा सुविमल का रुख बिल्कुल भिन्न था।

प्राय समवयस्क अपने छोटे भाई सुशोभन के प्रति उनके मन मे स्नेह-प्रेम की वैसी भावना नही थी। शायद उसके समर्थ होने के कारण ही ऐसा रहा होगा। अपने सबस छोटे असमर्थ बेकार भाई के प्रति उनके मन मे कही ज्यादा गहरे स्नेह और प्रेम की भावना रही थी।

इसीलिए सुशोभन को मायालता अपनी एक अलग सम्पत्ति की तरह ही— समझती थी, इसलिए भी कि जो सम्पत्ति की अधिकारिणी थी, उसका निधन काफी पहले ही हो चुका था और व नीता के साथ अकेले थे।

सुशोभन जब भी आते थे, मायालता घर-गृहस्थी को दर-किनार रखकर सुशोभन के सत्कार मे जुट जाती थी।

लेकिन पिछले तीन-चार वर्षों से सुशोभन के न आने से जीवन बडा नीरस और फीका लगने लगा था।

इस बात से मायालता बहुत दु खी रहती थी।

खैर उसका तो कोई उपाय नही था। लेकिन अब ? क्या इस कष्ट की तुलना की जा सकती थी ?

कामधेनु ने दूध देना बद कर दिया था।

अकारण ही उसने ऐसा निष्ठुर संकल्प क्यो किया ? अकारण ! मायालता तो यही समझती थी। बहुत सोच-विचारकर भी वह सुशोभन के इस रहस्यपूर्ण आचरण के कारण के बारे मे सही अनुमान नही लगा पायी।

लेकिन कामधेनु की विमुखता से दु खी होकर उसके थनो के नीचे से अपना कटोरा लेकर चुपचाप सरक जाने की मूर्खता कोई भले ही करे, मायालता नही कर सकती थी।

इसलिए आज फिर उन्होने पति के दरबार म नालिश कर दी थी।

"हम लोग क्या मर गये हैं ? क्या नीता हम लोगो के घर की लडकी नही है ?"

यही कहते-कहते मायालता कमरे म घुसी। या शायद घुसते ही उन्होने कहा हो। सुविमल समझ गये कि फिलहाल उन्ह अपनी दुनिया से बाहर आना होगा।

हाथ की पुस्तक बद करके मुस्कराते हुए बोल, "हम लोगो के मरने की खबर दुश्मन भी प्रचारित करता फिरे तो भी कोई विश्वास नही रहेगा। हम लोग जीवित हैं इसके लिए मैं ढेरो अकाट्य प्रमाण दे सकता हूँ। और नीता हम लोगो के घर की ही लडकी है यह भी कानूनन सच है। लेकिन इन दोनो बातो के योग सूत्र को मैं नही समझ पा रहा हूँ।'

"इसे तुम क्या समझ पाओगे। पेचदार बाते ही जानत हो तुम, सीधी सादी बातो से तुम्हें क्या मतलब। तपो की बात तो तुमने ध्यान से सुनी नही।'

तपो या तपोधन उनका मझला बेटा था। वही जो सुचिन्ता के घर जाकर अपने चाचा से मिल आया था।

अचानक सुविमल थोडे गम्भीर हो गये। सक्षेप म बोले, "सुनी है।"

"सुनी है ? सुनकर भी निश्चित होकर बैठे हुए हो ? मैं कहती हूँ माना कि मझले देवर जी का दिमाग खराब हुआ है लेकिन तुम लोगो का तो नही हुआ ? इतनी बडी कुआँरी लडकी को लेकर वह न जाने किसके यहा रह रहे हैं, लडकी उनके लडको के साथ सिनेमा देखती फिर रही है, भगवान जाने वह और क्या-क्या कर रही है, क्या इन बातो को लेकर तुम लोग जरा भी सिर नही खपाओगे ?"

सुविमल कुछ और गम्भीर होकर बोले, "हम लोग कौन होते हैं ? अगर वह किसी दूसरी जगह किराये पर रह रहे हैं, अगर उन्होने अपनी लडकी को जान-बूझकर छूट दे रखी है तो इससे हम लोगो को क्या करना है ?"

"हम लोगा को क्या करना है ?"

मायालता सिर पर हाथ रखकर बोली, "हमे क्या ? तुमने बडी सरलता से यह बात कह दी ? नीता तुम लोगो के कुल की सतान नही है ? उसको लेकर कोई ऊँच-नीच हाने से तुम लोगा को बुरा नही लगेगा ? उसकी मा नही है, कोई उसका भला बुरा विचारने वाला नही ?—"

सुविमल ने पत्नी की आर बेधने वाली नजरो से देखते हुए कहा, "चार साल की उम्र से ही उसकी माँ नहीं रही। उसके बाद पिछले बीस वर्षों म वह तुम लागा के हिफाजत से दूर रहकर ही बडी हुई। अगर इतने दिनो तक उसके बारे म कोई ऊँच-नीच बातें सुनने म न आयी हा तो इसी समय ऐसा हाने का कारण क्या है ?'

इतने पर भी मायालता दबने वाली नही थी।

बाला, "विदेश मे, बाहर रहकर कोई क्या कर रहा है क्या नही कर रहा है, इसे कोई देखने नही जाता, लेकिन यहा नाते-रिश्तेदारो के सामने "

सुविमल गम्भीर होकर मुस्कराते हुए बाल, ठीक कहती हा ! यह बात याद नही थी। अब परनिन्दा करने वाले लोग जरूर हुए है।"

मायालता नाराजगी से बोली, 'देखो इस तरह से तुमने मुझे जीवन भर धिक्कारा है, लेकिन मैं इससे विचलित नही होती। मैं कहती हूँ, मैं खुद एक बार जाकर अपनी आखो से देखना चाहती हूँ कि मँझले देवर जी का ऐसा करने का कारण क्या है ?"

सुविमल यह सुनकर खीझ उठे।

भौह सिकोडकर बोले, "कारण जानकर क्या तुम्हे कोई फायदा होगा ?"

"इसम फायदा-नुकसान की क्या बात है।" मायालता उदारतापूर्वक बोली, "मनुष्य क्या हर समय नफे नुकसान की ही सोचता रहता है ? क्या दुनिया सिर्फ अदालत और व्यक्तिगत कानून की ही किताब है ? '

सुविमल बोले "ऐसा ही है। सिफ लोग अपनी धूर्ततावश इसे स्वीकार नही करते।"

'ऐसी बडी-बडी बाते अपने मुवक्किला के लिए ही रहने दो। मैं कल ही सुचिता के यहा जाऊँगी।"

सुविमल हेय दृष्टि से बोले, "चला जाना। इसके लिए इतनी धूम-धाम से मेरी अनुमति के लिए आने का कोई मतलब है ?"

"अनुमति ! अनुमति किस बात की ?" मायालता अत्यधिक नाराजगी से बोली, "मैंने क्या अपने को बेच दिया है कि तुम्हारा अनुमति मागूगी ? आजकल नयी नयी बहुएँ तक अपने स्वसुर-पति की अनुमति की परवाह किए बिना अपने मन की कर रही हैं और मैं इतनी उम्र की हान पर भी आस-पडोस मे जाने के

लिए अनुमति मागूगी ? अपन जाने की खबर मैंने ही तुम्हे दी थी। क्या सुचित्रा के यहा जाने म कोई दोष है ? बचपन का दोस्त, कहा जाय तो ननद ही हुई, उससे मिलने की तबियत नही हो सकती क्या ? उस पर पता चला कि बेचारी विधवा हो गयी है, मिलने जाना तो उचित ही है।"

सुविमल ने वैसे ही मुस्कराते हुए कहा, "विधवा होने पर मिलने जाना उचित है, मैं इस बात को नही मानता। लेकिन जाना है तो जाओ, कैफ़ियत देने की क्या जरूरत है ! मैंने तो तुम्हे वहा जाने से रोका नही है। सिर्फ पूछा था कि किसी अस्वाभाविक आचरण करने के पीछे जरूर कोई कारण रहता है लेकिन दूसरो का उस छिपे कारण का उद्घाटित करने की जरूरत क्या है उससे उन्हें तो कोई लाभ नही होगा ?"

मायालता अपने पनडब्बे से पान निकालते हुए बोली, "इस दुनिया मे गलत-फहमी नाम की भी तो कोई चीज होती है। कोई अगर गलतफ्हमी से मिथ्या अभिमान कर लेता है तो क्या उसे दूर करने की कोशिश नही करनी चाहिए ?"

सुविमल बोले, "वह फिर, मतलब उस तरह की कोशिश ही गलत है। पेड के फल को जिस तरह धुआँ देकर पकाने से वह सिर्फ दरकच्चा होकर रह जाता है, सचमुच पकता नही, लोगो के मन की धारणाएँ भी वैसी ही होती हैं। वास्तविक गलती को जानने के लिए धारणाओ को समय के हाथो म छोड देना चाहिए। जब तक मान-अभिमान का आवेग घटकर दृष्टि को परिच्छन्न न कर दे तब तक गलत धारणा को तोडने की कोशिश से सिर्फ नुकसान ही हाथ लगेगा। सुशोभन या उसकी बेटी को अगर हम लोगो के किसी व्यवहार से नाराजगी हुई होगी तो तुरन्त जाकर उनकी चोट का सहलाने की कोशिश न करना ही अच्छा होगा। एक न एक दिन उन्हे अपनी गलती का एहसास होगा। लोगो को जाने कितनी चोट गलत समझने के कारण लगती है, कितनी असतर्कता से लगती हैं, इन सबको अगर कोई अपराध की सजा दे तो कम से कम मैं उसे बुद्धिमान नही कह सकता। जबकि मैं सुशोभन को हमेशा ही बुद्धिमान समझता रहा हूँ।"

"सभव है, यह सब बेटी की राय से हुआ हो"—मायालता बोली, "वह लडकी बिल्कुल ही सरल नही है। मेरा मन तो यही कह रहा है कि जरूर उसी ने अपने बाप को फुसलाया होगा, यहाँ रहने से तरह-तरह के खर्च और उतनी आजादी भी उसे नही मिलती थी, इसीलिए—"

अचानक सुविमल ठठाकर हँसने लगे। बोले, "अरे मैं तो देख ही रहा हूँ कि तुम कार्य कारण सम्बन्ध हमेशा तैयार रखती हो। तब फिर बेकार मेहनत करने की जरूरत क्या है ?"

"ओह ! लगता है तुम्हारी भी यही धारणा है—" मायालता ने सन्देह व्यक्त किया।

"यह धारणा ही स्वाभाविक है—" सुविमल बोले, "हालाँकि यही सही हो, ऐसा भी नही कहा जा सकता। इसीलिए समय के हाथो ही निर्णय का अधिकार सौंप देना बेहतर होगा।"

मायालता का गुस्सा बढता गया। बोली, "बात का व्यवसाय करने के कारण बस सिर्फ बाते फेटना ही जानते हो। तुम्हारी बाता का सिर-पैर मेरी समझ म नही आता। मैं कल जाऊँगी और तुम्ह पहुँचाना पडेगा।"

"मुझे।" सुविमल ने सिर हिलाकर कहा, "मुझे काट भी डालोगी तब भी नही।"

"जरा सुनू तो क्यो ?" मायालता का उत्तप्त कठ सहसा रुद्ध हो गया, "मुझे तुम कही पहुँचा दोगे क्या मैं इस बात का भी दावा नही कर सकती ?"

"क्या मुश्किल है ?" वकील की पत्नी होने से ही देख रहा हूँ कि तुम भी बात-बात मे दावा दायर करने लगी हो। तुम तो जानती ही हो, मुझे तुम लोगो को कही ले जाने की बिल्कुल फुरसत नही होता। अब तो बच्चे बडे हो गये है—"

"बच्चो ने तो बडे होकर मुझे खरीद ही लिया है।" मायालता फिर फुफकार उठी, "वे लाग अब बडे हो गये है" बस जमाने से वे बडे होने की सुविधा हथिया रहे है, बाकी बडो की तरह जैसा आचार-व्यवहार होना चाहिए, नजर आता है ? बडे होने के साथ-साथ घर-गृहस्थी के प्रति उनका एक कर्तव्य भी पैदा हो जाता है, क्या इस पर वे अमल कर रहे है ? पढ-लिख गये हैं लेकिन बडो की इच्छा-अनिच्छा को शिरोधार्य करके चलना वास्तविक शिक्षा है इसे भी क्या वे जानते हैं ?"

आक्षेप करते हुए मायालता की भाषा बहुत सुदर हो जाती थी।

सुविमल कह सकते थे, "इसे सिखाने का जिम्मेदारी मा की होती है। और बच्चो के पैदा होने के समय से ही इस जिम्मेदारी का निर्वाह शुरू हो जाता है।" लेकिन वे खामोश रहे। जानते थे, कहने से कोई लाभ नही होगा। इस जरा-सी बात से आत्मालोचना तो होगी नही बल्कि उल्टे अश्रुपात का दृश्य उपस्थित हो जायगा।

आँखो मे उँगली डालकर दिखाने से ही क्या किसी ने अपना दोष स्वीकार किया है ? बाते जस की तस रहती हैं अपने स्वभाव के अनुसार ही लोग आचरण करते हैं, सिर्फ बेमतलब की वाद-विवाद की स्थिति पैदा हो जाती है।

बुद्धिमान व्यक्ति कभी किसी दूसरे को ज्ञान देने की चेष्टा बिल्कुल नही करते। पानी के तल के कीचड को कभी ऊपर लाने की कोशिश नही करते। इससे शाति बनी रहती है, वे बाहरी प्रेम और भाईचारे को ही असली चीज मानते हैं, इसलिए वे अबोध, अन्यमनस्क, क्रोध से दूर, उदार होने का अभिनय करते रहते हैं।

सुविमल बुद्धिमान थे।

इसीलिए मायालता जब अपने पति से बच्चो की शिकायत करती थी तो सुविमल मूर्खों की तरह यह नही कहते कि "तुम्ही इसके लिए दोषी हो, तुम्हारा अक-स्नेह ही इसका जिम्मेदार है और जिम्मेदार है तुम्हारी अपरिणामदर्शिता।"

सुविमल सिफ मुस्कराकर बात के वजन को कम कर देते थे। आज भी उन्होने वैसा ही किया।

मुस्कराकर बोले, "क्यो मैं तो देखता हूँ सभी तुम्हारी बातें सुनते है।"

"देखते हो?" मायालता क्रोध और क्षोभ मिल स्वर मे बोली, "अपने देखने की बात लेकर अपने मुँह मिया मिट्ठू मत बनो। इस दुनिया मे आखिर तुम कौन-सी चीज देख पाते हो? और अगर ऐसा होता तो क्या मेरी यह दुर्दशा हुई होती? देख पाते तो देखते कि मरे कहने से कोई नही चलता, उन्ही लोगो के अनुसार मुझे चलना पडता है। यह जो तुम्हारे भाई हैं, भाई की श्रीमती जी हैं—"

सहसा सुविमल प्रतिवाद करते हुए बोले, "अब रहने दो, इस समय उनकी बाते तो नही हो रही थी।'

मायालता जरा बुझ गयी। शायद अपमानित महसूस करने के अहसास से ही चुप हो गयी थी।

इसके बाद बोली, "इसे समझती हूँ कि उन लोगो की चर्चा किसी समय भी न करना ही ठीक है। लेकिन रात-दिन जिसके सीने पर मूग दली जाती हो, वही इसके दद का समझता है। खैर, लडको की ही बात करूँ, वे लोग मेरी बात सुनते है? इतने समझदार हो और इसे नही समझते—वे बाते नहा सुनते—इस अपमान से बचने के लिए ही मैं हर समय उनकी इच्छा के अनुसार ही चलती रहती हूँ। मैं जब उन्हे अच्छा खाने को कहती हूँ, अच्छा पहनने का कहती हूँ, तुम्हारी नाराजगी के बावजूद उन्हे मन-भरकर खलने-कूदने की भी छूट देती हूँ। घूमने-फिरने का कहती हूँ, तब तो वे मेरी सारे बातें मान लेते है लेकिन जब भी कोई काम कहती हूँ तभी किसी के कानो म जू नही रेंगती। कल की ही बात लो, पहले बडे लडके साधन से मँझल देवरजी के पास जाने के लिए कहा था। क्या वह गया? छुट्टा जवाब मिला, "मुझसे नही होगा।' तब तपो से कहा। तो वह मारे क्रोध के भुनभुनाता हुआ आया। शायद देवरजी उसे पहचान ही नही पाये। अब भला वह दुबारा जाने के लिए राजी होगा?"

शायद प्रसगेतर का मौका पाकर सुविमल हसते हुए बोले, "तुम्हारे लिए भी तो यही चिंता बनी रहेगी। अगर वह तुम्हे भी नही पहचान पाये तब?"

"मुझे? मुझे नही पहचानेंगे?"

मेघाच्छन्न आकाश म बिजली की चमक की तरह मायालता अब तक के

लोपाकार मुख पर गर्वित मुस्कान लाकर बोली, "मुझे न पहचान पाने का नाटक करेंगे ? और ऐसा करके वह सफल हो जायेंगे ? पहचनवाकर ही छोड़ूगी मैं।"

"वह तो है।" सुविमल बोले, "तुम इस बात पर जरूर गर्व कर सकती हो।"

"तब ले चल रहे हो न ?"

एक बार पुन: मायालता विजयगर्व से हँस पडी, शायद सोचा हो कि घुमा-फिरा कर पति को उन्होंने अपने काम के लिए राजी कर लिया है।

लेकिन हँसी मुरझाते देर नही लगी, न गलती समझने मे।

सुविमल बाले, "एक ही बात बार-बार क्यो कह रही हो ? उसका तो फैसला हो चुका है।"

"हो चुका है ? तुम जो भी कहोगे उससे तिल-भर भी नहीं हटोगे ?"

"वाह अपनी बात से हटना क्या ठीक है ? जानती हो हाकिम भले ही हिल जाए, उसका हुक्म नही हिलता।"

"लेकिन तुम तो हाकिम नही हो।"

"हमेशा हाकिम के पास रहते-रहते लगता है उसका थोडा प्रभाव मुझ मे भी आ गया है।"

"ठीक है। मैं अकेली चली जाऊँगी।"

सुविमल बोले, "यही तो समझदारी की बात है। इसके लिए तो मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ।"

इस बार मायालता बुरी तरह फुफकार उठी। कमरे से निकलते हुए बोली, "इसे क्यो नही कहोगे ? इससे तो बोझ कुछ कम हो जाता है। लेकिन इस निर्देश का फल क्या हुआ ? जब जवान थी, जब शक्ति और साहस था तब उन दिनो क्यों ऐसा निर्देश नही दे पाए थे। तब तो सिर का घघट थोडा कम होने से तुम्हारी माँ-बुआ नाराज हो जाएँगी इस भय से तटस्थ रहते थे। बूढी महरिन तक ने आलोचना की थी। अब उसी पखकटी चिड़िया को पिंजडा खोलकर उड जाने को कहते हो। अकेली चली जाऊँ। राह-घाट कुछ पहचानती भी हूँ कि अकेली चली ही जाऊँगी ?"

"क्या मुश्किल है ! तुम तो जो कहती हो उसी का खडन भी करती हो। कहो तो, इतनी परस्पर विरोधी बातें क्यो करती हो ?"

"नही मालूम तुम्हे ? आपस मे विरोध है इसलिए।"

इस बार सचमुच झटके से मायालता बाहर चली गयी।

मायालता भले ही दुर्बलचित्त हो, लोभी हो लेकिन मायालता की बाते बिल्कुल उपेक्षा योग्य नही कही जा सकती।

मनुष्य को तो उसका परिवेश ही गढता है।

ऐसे कितन लोग है जो बिना किसी सहारे के अपना निर्माण कर लेते है ?

सभो के व्यक्तित्व मे लोहा और पत्थर नहा होता, इस दुनिया मे बालू-मिट्टी वाले लोग ही अधिक हैं।

बालू-मिट्टी।

इसीलिए मायालता ने अभिमान से आहत होने के बावजूद अपना प्रयास नही छोडा।

इस बार वे अपने देवर सुमोहन से पास जा पहुँची। हालाकि इन दोना देवर-भाभी म बिल्कुल नही बनती फिर भी कोई एक सूत्र था जहाँ दोनो एक थे।

शायद यह बधन प्राचीन सस्कारा का ही था।

मायालता इसे समझती थी कि कुछ भी हो वह उम्र मे छोटा है। सुमोहन भी इसे समझता था कि जो भी हो भाभी आखिर उम्र म बडी हैं।

इसलिए बीच-बाच म भले ही दोनो देवर-भाभी मे तुमुल लडाई-झगडा घट भी जाए, मगर बात-व्यवहार बद होने की नौबत आज तक नही आयी।

सुमोहन की बेकारी का मायालता जरा भी फायदा नही उठाती थी। इसको नकारना सत्य को नकारना होगा। मायालता न चूडामणि योग के अवसर पर गगास्नान करना चाहा था, सुमोहन के कारण ही सभव हुआ था। हालाकि काफी व्यग्य बौछार करने के बाद ही वह भाभी के साथ गया था।

उसन कहा था, "आज अचानक भूत के मुँह मे राम नाम क्या ? कभी तो धर्म-कम की बात होती नजर नही आयी, लगता है चूडामणि के दिन फिरे।"

मायालता बडे जतन से गरद की साडी पहनते हुए बोली, "तुम लोगो के ससार म आकर तो सिफ पेटपूजा के लिए नैवद्य सजाना ही सीखा है, देव-देवियो के लिए, सोच रही हूँ, अब नैवेद्य सजाना सीख ही लू। इसलिए पहले 'योग' के अवसर पर स्नान करके देहशुद्धि कर ले रही हूँ।"

सुमोहन मुँहामुँही होकर बोला, "देह तो नल के पानी से नहान से भी शुद्ध होती है लेकिन मन ? सतो ने जिसे चित्त कहा है। कभी चित्तशुद्धि का चेष्टा की है ? मेरा ख्याल है थोडा उसे ही शुद्ध कीजिए।"

इसके बाद तो फिर घमासान वाग्युद्ध छिड गया। लेकिन अन्त म देखा गया कि सुमोहन और मायालता बड मजे से एक गाडी म सवार होकर चल दिए। और भी आश्चर्य की बात था कि वे दोना रास्ते भर बडे प्रेम से बातें करत हुए गये।

आज भी बाधा नही होगी, शायद यही सोचकर मायालता अपने पति के पास से हताश होकर पति के अनुज के घर मे जा पहुँची।

लेकिन घर तो पुरुष का नही होता, होता है घरनी का।

सुमोहन के घर म भी घरनी का वास है, जिससे मायालता मन ही मन कुढ़ती रहने के बावजूद प्रत्यक्ष म तरह देने को मजबूर थी।

सुमोहन और उसकी पत्नी अशोका दोनो ही अलग-अलग किस्म की धातुओ से बने हुए थे।

हर जगह ऐसा ही नजर आता है। औरत-मर्द स्वभाव स एक दूसरे के विपरीत होते हैं। भगवान एक दूसरे का पूरक बनाने के लिए जानबूझकर ऐसी स्थिति गढते है या महज मौज मे आकर ही ऐसा करते हैं, कहना जरा कठिन है। लेकिन प्राय हर घर मे विपरीत स्वभाव का ऐसा ताल-मेल नजर आता है।

लेकिन सुमोहन और अशोका के स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था।

भावधाराओ के अनुसार मनुष्य स्वभाव का एक निश्चित वर्गीकरण किया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो उन दानो मे से एक का शूद्र की कोटि म रखा जा सकता था और दूसरे को विप्र की कोटि म।

सुमोहन म आत्मसम्मान की रचमात्र भी भावना नही थी लेकिन अशोका म यह भावना अत्यन्त प्रवल थी और अहकार की सीमा तक थी।

सुमोहन ने जीवन म कभो उपार्जन की चेष्टा नही की।

ऐसा क्यो किया, यह कहना बडा कठिन है। सुमोहन शिक्षित था। स्वास्थ्य-सम्पन्न था। इसलिए बाधा तो कुछ भी नही थी लेकिन उसने बाधा की सृष्टि खुद ही कर ली। उसका तक था, कानून पढना, वकालत करना, यह सब उससे नही होने वाला था। वकालत का मतलब ही है हमेशा झूठ बोलते रहना।

सुमोहन-सुशोभन के पिता भी वकील थे लेकिन वे दिवगत हो चुके थे, इसी से जान बची थी, लेकिन माँ-बुआ तो अभी जीवित ही थी।

बुआ नाराज होकर कहती, "छोटा मुँह बडी बात। तेरे पिता न जिंदगी भर वकालत नही की ? तेरा बडा भाई भी क्या वही नही कर रहा है ?"

"इसीलिए तो इस वात को मैंने जाना है।' सुमोहन ने बडे शात चित्त से जवाब दिया।

इसलिए कानून की पढाई उसने नही की।

तब नोकरी-चोकरी।

सुमोहन अपनी लम्बी जुल्फो को झटकते हुए बोला, "दूसरो की गुलामी मुझसे नही पासायेगी।"

"तब क्या मास्टरी करोगे ?"

मास्टरी।

सुमोहन अट्टहास कर उठा।

"बुद्धिमान आदमी भी कभी स्कूल मास्टरी करता है ? सात गधे मरते हैं तो एक—"

सुविमल ने 'बस अब रहने दो' कहकर चुप करा दिया। फिर बोले, "दूसरा

की नौकरी मत करा, कोई व्यवसाय शुरू करो। थोडे पैसो से जो भी सम्भव हो—"

"थोडे पैसा से ?" सुमाहन हँसता हुआ बोला, "तब स्टेशन के किनारे पान बीडी की दूकान खोल लेनी चाहिए।"

उस दिन उसने अपने बडे भाई से व्यवसाय के बारे मे बडी बडी बाते की थी। कहा था, "लाख-लाख रुपयो से रोजगार आरम्भ न कर पाने से रोजगार का नाम ही मुह पर नही लाना चाहिए। बगालिया का व्यवसाय इसीलिए—"

ये सारी बाते दिनाजपुर की थी। इसके बाद जब लडाई दगे और देश विभाजन के तीनतरफा प्रहारो से विकल होकर जीवन मे प्रतिष्ठित ढेरो लोग बाढ के पानी मे तिनको की तरह बहने लगे तो एक लडका, वह भी घर का सबसे छोटा लडका, वह कोई काम तलाश करके अपने को प्रतिष्ठित कर रहा था या नही, तब इसे देखने की किसे पडी थी।

शादी हो गयी थी। लेकिन उससे क्या, तब भी घर मे खाने की समस्या नही पैदा हुई थी।

इसके बाद तो देश ही छोडकर चले आना पडा था।

विदेश मे आकर क्या सुमोहन जिस-तिस के पास जाकर खुशामद करके काम ढूढ़ता फिरता ?

नही, सुमोहन फिर इन सबके चक्कर मे नही पडा। वह अपनी रात को यथासभव लम्बी करके सुबह उठकर बासी मुह से चाय पीने के बाद बडे आराम से दाढी बनाता, उसी तरह बडे आराम से नहाता बडे आराम से अखबार पढता, इसके बाद ग्यारह बजे के करीब वह प्रातः भ्रमण पर बाहर निकलता था।

लौटने के बाद एक गिलास मिश्री का शरबत या डाभ का पानी पीकर थोडा आराम करके फिर खाना-खाने बैठता था।

खाने मे रोजाना की चीजो के अलावा खास उसके लिए दो-एक तरह की चीजें और भी बनायी जाती थी फिर भी उसकी व्यग्य-मुद्रा बनी ही रहती थी।

भोजन का रग, स्वाद, बनावट आदि से अलावा अगर दो दिन एक ही तरह की सब्जी बन गयी तो इसे भी लक्ष्य करके वह पडोसियो को सुना-सुनाकर घर की गृहिणी के गृहिणीपने की सुव्यवस्था पर व्यग्य करता रहता।

भोजन के बाद वह जाकर सोता था।

इसके बाद वह सायकालीन भ्रमण को रात तक ठेलकर किसी तरह दिन का समापन करता।

सुमोहन की यही दिनचर्या थी।

अपने दोना बच्चा को भूलकर कभी अपने पास बुलाकर प्यार करते हुए

उसे नही देखा गया, बल्कि उनकी चर्चा होने पर दोनो को 'हृतभागा' कहकर ही उनसे छुट्टी पा लेता था।

बच्चे जब छोटे थे, तब रात मे राने पर वह अशोका को कडा हुक्म देकर कहता, "इन्हे लेकर कमरे से बाहर चली जाओ, या गला-दबाकर इन्हे मार डालो। नीद पूरी न होने से मैं किसी को सह नही सकूगा।"

फिर रात मे रोने की उम्र किसी की नही रही, सब दिन भर गुलगपाडा मचाए रहते, लेकिन अपने कमरे मे गुलगपाडा होते ही पखे या छाते की डडी से बच्चो को खदेडने म सुमोहन को वक्त नही लगता था।

श्यामापुकुर के इस घर मे इतने लोगो के रहने के बावजूद सुमोहन अपने आराम आदि की सुविधा जुटा ही लेता था।

मिजाज ठीक रहने पर सुमोहन हँसते हुए कहता, "चीनी खाने वाले को चिन्तामणि चीनी जुटा ही देती है। लेकिन चिन्तामणि अपने कन्धे पर चीनी का बोरा लादकर तो नही पहुँचा जायँगी। आदमी मे रस निकालने की बुद्धि होनी चाहिए। ईख रस का सागर होता है लेकिन क्या अपने आप उससे रस निकलता है? उसे पेरने की कला आनी चाहिए। यह ससार भी ईख के खेत की तरह है। रस हर जगह मौजूद है लेकिन वह अपने आप नही मिलता। अगर ईख के प्रेम, करुणा या सद्-विवेक के भरोसे हाथ मे पात्र लेकर आदमी बैठा रहेगा तो उसे खाली पात्र लेकर ही घर लौटना पडेगा। मशीन चलाना जरूरी है।"

अशोका अगर दूसरी आम लडकियो की तरह होती, अगर बात-बात मे वह पति की भर्त्सना करती, गले मे रस्सी डालने जाती, जहर खाने की धमकी देती तब परिणाम क्या होता, कहा नही जा सकता। लेकिन अशोका बिल्कुल दूसरे तरह की लडकी थी। पति के मामले मे वह बिल्कुल उदासीन रहती। सुमोहन को लेकर उसे रचमात्र भी शिकायत थी इसका पता बिल्कुल नही चलता था। उसके मन मे कोई क्षोभ, आक्षेप-अभियोग भी था, इसे कोई देखकर नही बता सकता था।

एक शात, हँसमुख आवरण ओढकर वह अपनी दिनचर्या मे व्यस्त रहती थी, मायालता के तरकस के चुनिंदा तीर भी उस तक जाकर व्यर्थ हो जाते थे।

सुमोहन से मायालता का झगडा होने पर वह बाद मे अपने व्यग्य बाणो की बौछार अशोका को सुना-सुनाकर करती रहती थी।

लेकिन अशोका भी तो एक तरह की दीवाल ही थी।

पत्थर की दीवाल।

दीवाल जिस तरह निर्विकार चित्त से सारी बातें हजम कर लेती है, यह समझ मे भी नही आता कि वह सुन भी रही है या नही, अशोका भी वैसे ही स्वभाव की थी। मायालता के तरकस से जिस समय खच्च-खच्च करके तं

छूट रहे होते थे, ठीक उस समय भी अशोका निर्विकार, प्रसन्नवदन कुछ भी पूछ सकती थी, या कहिए पूछ लेती थी, "दीदी, शाम को बच्चो के लिए नाश्ता क्या बनेगा ?" या "दीदी, शाम के लिए सब्जी क्या इसी वक्त काट लूं ?"

एक-एक करके मेहनत के सारे काम अशोका के कधो पर सिमट आये थे लेकिन यह बात अशोका और मायालता इनमे से किसी के भी व्यवहार से समझ मे नही आने वाली थी।

अशोका हर बात को जिस तरह जिस स्वर म पूछती थी उससे लगता था कि वह काफी शिक्षित और सभ्य लडकी थी। और मायालता जिस तरह से हर बात मे "अरे बाप रे माँ रे अब मुझसे तो नही होता—" करती रहती थी उससे लगता था कि वे हर समय परेशान ही रहती थी।

मन मे असताप रहने से शायद लोग ऐसे ही असहिष्णु हो जाते ह।

लेकिन आखिर उसे सतोष किसी बात से था ?

अशोका के बारे म मायालता सोचती रहती थी। सोचती थी और ईर्ष्या के मारे कुढती रहती थी।

अशोका की ऐसी सहिष्णुता भी शायद मायालता की असहिष्णुता का मुख्य कारण हो सकती थी।

अस्थिर, अव्यवस्थित चित्त वाले लोग ऐसे आत्मकेन्द्रित व्यक्तियो से कुढे बिना रह ही नही सकते।

इसीलिए मायालता हमेशा से उनकी छत्रछाया म रहने और पलने वाली, अपने बेटे से भी छोटी उम्र की देवरानी से बाकायदे जलती रहती थी।

आश्रिता अगर आश्रिता की तरह न रहे, हथेली की छाँह मे रहने वाला हाथ अगर सामने न आ पाये—तब सुख कहा मिलेगा ?

अशोका इस तरह से रहती थी जैसे वह सुविमल की लडकी ही हो।

उसके दो-दो बेटे थे, उनकी मागें तो थी ही, भले ही वे कितनी ही कम क्या न हो, लेकिन वह सभी को निर्विकार चित्त से सुविमल के सामने पेश कर देती था।

मायालता ऐसी बातो पर भी व्यग्य करना नही चाहती थी, "जरूरी बातें मुझसे नही होती, जेठ से होती हैं। मेरे भाग्य म जाने क्या-क्या देखना लिखा है।"

ऐसी बाते अशोका के कान म भी जाती थी, ऐसा नही लगता था बिना कुछ कहे-सुने ही वह अपना काम करती रहती।

फिर भी ताज्जुब था मायालता मन ही मन अशोका से डरती रहती थी। डर के पीछे सम्मान की भावना भी थी।

इसीलिए देवर के कमरे मे जाने की जरूरत पडने पर पहले वह देख लेती थी कि देवरानी कमरे मे हैं या नही।

आज भी उन्होने पहले यही देखा।

देखा, नही थी।

जान मे जान आयी।

बोली, "सुनो देवरजी, मेरा एक काम करोगे ? या तरह-तरह के बहाने बनाने बैठोगे ?"

सुमोहन इस अवेला मे भी बिस्तर पर लेटे-लेटे अपनी टागें नचा रहा था। बडी भाभी के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए अपने पैरो को सिकोडकर बडे ही सुस्त भाव से उठकर बैठ गया लेकिन अपनी सम्माननीय भाभी की बातो के प्रति उसका पूरा-पूरा ध्यान था इसे प्रकट तो नही किया जा सकता था इसलिए वह अपने तकिये के नीचे से कबूतर का एक पख निकालकर उससे अपने कानो को गुदगुदाते हुए आलस्य भरे स्वर मे बोला, "काम क्या है, पहले सुन तो लू किसी कोरे कागज पर दस्तखत तो नही किया जा सकता।"

"मैं कोरे कागज पर तुमसे दस्तखत नही करवा रही हूँ।" मायालता नाराज होकर बोली, "और यह काम मेरे बाप का भी नही है, है तुम्ही लोगो का।"

सुमोहन उसी मुद्रा मे बोला, "कोई बात नही, पेश करो।"

"पेश ! पेश करूँगी ?" मायालता नाराज होकर बोली, "बातें करते समय जरा ध्यान रखा करो, कि किससे बाते कर रहे हो। मैं तुम्हारे पास अर्जी पेश करूँगी ?"

सुमोहन इस बार पल्थी मारकर बैठ गया और कपट-भक्ति की मुद्रा मे बोला, "माफ कीजिए, भूल हो गयी। कहिए, क्या आदेश है ?"

"इसीलिए तो इस तरफ नही आना चाहती," मायालता मारे गुस्से के चीखते हुए वहा से लगभग चली आने को हुईं।

"अरे बताइए भी तो हुआ क्या ?" सुमोहन दोनो हाथो से रोकने की मुद्रा मे बोला, "अच्छा मुसीबत है, बाये जाओ तो आफत, दाहिने जाओ तो आफत। इतनी कवायद न करके फट्ट से कह देने से ही तो झझट खतम हो जायगा। अब कहो भी, सुनूँ।"

मायालता भी सचमुच वहाँ से चली जाकर काम बिगाडना नही चाहती थी, लेकिन, सुमोहन की बाते और उसके कहने का तरीका इतना तन बदन मे आग लगा देने वाला होता था कि मिजाज ठीक रखना मुश्किल हो जाता था।

इस समय सुमोहन के स्वर मे अफसोस का आभास पाकर उन्होने अपने को

सभाल लिया, गम्भीर होकर बोली, "कोई भयानक काम नही सौंप रही हूँ मैं कह रही हूँ, मझले देवर जी से एक बार मिलने जाऊँगी, वहाँ ले जा सकोगे ?"

"मझले देवर जा।"

सुमोहन ने अभ्यस्त विलम्बित लय मे दुहराया, "मझले दवर जी से 'मिलने' जाऊँगी ? उन्हे 'देखने' नहा। अर्थात् बीमारी-वीमारी कुछ नही है। मँझल भैया का भाग्य इतना अच्छा कैसे हा गया, यह मेरी समझ म नही आ रहा है।"

"इसमे समझ न पाने की क्या बात है भाई-भाई सब एक जैसे ही हैं। सीधी बातो का टेढा उत्तर मिलता है। ले जा सकोगे या नही ? बस, इसी का सीधा जवाब दे दो।"

सुमोहन पुन कबूतर के पख को तकिए के नीचे टटोलते-टटोलते पहले से भी विलम्बित लय म बोला, "उसमे नही कर सकन की क्या बात है। फस्ट-क्लास गाडी म बर्थ रिजर्व करके "

मायालता ने छोटे देवर को डाँट कर चुप कराया, "इतना बन क्यो रहे हो ? गाडी किसलिए ? मैं क्या तुम्हे दिल्ली ले चलने के लिए कह रही हूँ ? क्या तुम नही जानते कि मझले देवर जी कलकत्ते म ही रह रहे हैं ?'

"कलकत्ते म रह रहे हैं। मझले देवर जी, यानी मझले भैया ?"

"तो और कौन मझले देवर जी हो सकते है, जरा सुनूँ ? तुम्हारी बातो से क्या यू ही मुझे जहर चढता है ? घर मे इसे लेकर इतनी-इतनी बातें हुई और कहना चाहते हो कि तुम्हे कुछ भी खबर नही है ?"

इतनी देर बाद जाकर सुमोहन को कबूतर का पख मिला, अतएव उसका उपयोग करते-करते आँखे मूदे-मूदे ही वह बोला, "घर मे जितनी बाते होती हैं, अगर ध्यान देता रहूँ तो घर मे टिकना ही मुश्किल हो जाएगा।"

"हाँ वह तो देख ही रही हूँ।" मायालता व्यग्यपूर्वक बोली, "लेकिन मझले देवर जी कलकत्ता आकर हम लोगो को बिना कोई सूचना दिए हुए दूसरी जगह रह रहे है यह खबर तुम्हारे कानो मे पडती भी तो तुम्हारा कोई नुकसान नही हा जाता।"

"रुको, जरा मुझे समझने दो, मझले भैया कलकत्ते म हैं, दूसरी जगह रह रहे है और—"

"सिर्फ दूसरी जगह रह ही नही रह हैं, बहुत दिनो से रह रहे हैं, समझे ? इसके मतलब रिटायर होन के बाद उन्होने दिल्ली छोड दिया है। लेकिन—'

सुमोहन न भौहे सिकोडकर कहा, 'बात सही होने पर मामला जरूर चौकाने वाला है लेकिन इस अफवाह को फैला कौन रहा है ?"

"अफवाह।" मायालता पुन उत्तेजित हो गयी। अफवाह फैलान का जिसे शौक हा, कम से कम तुम्हार बडे भैया को नही है। अफवाह ! तपो भी तो वहाँ

हो आया है। तुम कहना चाहते हो कि तुम इस बारे म कुछ भी नही जानते ?"

"कहना चाहते हो, क्यो, कह ही रहा हूँ। उम्मीद है, तुम यह उम्मीद नही कर रही होगी कि श्रीमान तपोधन जी आकर मुझे सब कुछ बता गये होगे ?"

मायालता झल्लाकर बोली, "अहा! तपोधन के न कहने से दुनिया की बातो को जानने का और कोई जरिया नहीं है तुम्हारे पास ? आखिर आप कौन-सी बात खुद जानते-बूझते हैं ? जिसे जतलाना होता है वही जतलाती हैं, जिसे समझाना होता है, वही समझाती है।"

सुमोहन कौतुकपूर्ण मुद्रा म हँसते हुए बोला, "यह बात किसे इगित करके कह रही हो ? कही इशारा छोटी-बहू की ओर तो नही है ?"

"नही तो क्या—पडोस की बहू के बारे मे कहूँगी ?" मायालता नाराज हो गयी।

"तुम ऐसा चेहरा बना रहे हो जैसे छोटी बहू से तुम्हारी बातचीत नही होती।"

सुमोहन बोला, "नहा, बातचीत नही होती, यह नही कहता। बाते तो होती है। लेकिन वाक्यालाप का आलाप ? उसी मे काफी सदेह की गुजाइश है।"

"अहा, वारी जाऊँ—" मायालता होठ उल्टाकर चेहरे को विकृत करके थोडी अशालीन भगिमा म बोली, "अगर दो-दो बार पकड नही जाती। मै खुल कर नही कहना चाहती, लेकिन तुम लागो का यह बनावटीपन देख-दखकर मुझे जहर चढता रहता है।"

"मायालता की बातो का तरीका ही ऐसा था इनका सुन-सुनकर देवर के कानो मे गट्ठे पड गये थे, इसलिए बहुत अधिक परेशान हुए बिना वह भी मुँह टेढ़ा करके बोला, "स्पष्ट कहने मे अब रहा ही क्या। और जहर चढ़ने की बात अगर कहो तो वह तुम्हे किस बात से नही चढता। खैर, फिलहाल इन जहर भरे प्रसगो को छोडकर मझले भैया की बात पर ही आएँ। वह जरा रहस्यमय लग रही है। तपो अगर सचमुच अपनी आँखो से देख आया है। तब इसे अफवाह कहकर टाला नही जा सकता। तब वह हैं कहाँ पर ? बडी बुआ के लडको के यहाँ ?"

इतनी देर बाद असल बात पर आने से मायालता थोडी उत्साहित हुई। बोली, "जब तुम्हे कुछ पता ही नहीं है तब शुरू से हा तुम्हे बताती हूँ। तुम्हे सुचिन्ता का याद है ?"

"सुचिन्ता !"

सुमोहन हँस पडा, "सुचि ता, सत्चिन्ता इन सबम मैं नही हूँ। मामले को थोडा-सा और सरल बनाना होगा।"

"अरे भाई वह तुम लोगो के दिनाजपुर वाले मकान के बगल वाले घोष चाचा ? उनकी लडकी "

"सुचिन्ता, सुचिन्ता—! ओह ! हाँ, हाँ अब याद आया। सुचिन्ता दी। हर समय उछलती-कूदती घूमती रहती थी। मुझे जरा भी लिफ्ट नही देती थी। उन लोगो के साथ खेलन जाने पर ईंटें ढोवाकर, फूल तोडवाकर कचूमर निकाल देती थी। लेकिन अचानक मझले भैया को छोडकर इस प्रसग पर क्यो चली आयी ?"

मायालता अचानक नाराजगी और व्यग्य मुद्रा त्यागकर रहस्यपूर्ण ढग से मुस्कराते हुए बोली, "देवरजी अब वह दोनो प्रसंग मिलकर एक हो गये हैं। वही तो कह रही हूँ। तुम्हार मझले भाई इन दिनो उसी सुचिन्ता के यहाँ हैं।"

"आई सी ! मामला तो खासा इटरेस्टिंग लग रहा है। इसके बाद ?"

"अब और क्या ! तुम्हारे बडे भैया को जाने कहाँ से यह सूचना मिली, यह सुनकर मैंने तपो को वहाँ भेजा, लेकिन मझले बाबू तपो को पहचान ही नही पाये।"

'अरे, अब तो यह और भी इटरेस्टिंग लग रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि आखिरी बार जब मझले भैया आये थे, तभी उन्होने यह पवित्र-सकल्प कर लिया था। हालाकि ऐसा सकल्प करने का कारण भी हुआ था।"

मायालता थोडी देर पहले की रहस्यपूर्ण मुद्रा भूलकर क्रुद्धमूर्ति अपनाकर बोली, "तो वह कारण, आशा करती हूँ, मैंन ही घटाया था।"

"अरे रे, उस आरोप को स्वेच्छा से अपने ऊपर क्या ले रही हो ? उस कारण के मूल म मैं या और कोई भी हो सकता है। असल बात यह है कि उनका दोहन जरा कुछ ज्यादा ही हो जाता था, यह सच है।"

बात को अपने ऊपर लागू न करने की सलाह के बावजूद मायालता ने अपनी बात जारी रखी, बोली, "घास-पत्ते से मछली ढँकने से क्या फायदा, किसे अपनी बात का तुमने लक्ष्य बनाया है, यह समझन म मुझे कोई द्विविधा नही है। लेकिन देवरजी एक बात कहती हूँ, अपने लडका को—"

अचानक मायालता ने बात की लगाम खीच ली और अचानक बात अधूरी छोडने के सकोच से बचने के लिए ही शायद वे भरपूर जभाई लेने लगी।

जब तक अशोका कुछ कह नही लेगी, तब तक मायालता की जभाई और आलस्य भगी खत्म नही होने वाली।

हाँ, अशोका के आ टपकने स ही मायालता की बात अधूरी छोडकर रुक जाना पडा। भगवान जानता है, मायालता अशोका से इतना क्या डरती थी। डरती थी या उसकी इज्जत करती थी। इसलिए अशोका के सामने कोई छोटी

बात मायालता अपने मुँह से नही कह पाती। जरूरत पडने पर दूसरी ओर मुँह फेरकर दीवाल को सुनाकर कहती।

जरा तमाशा देखो, मायालता सोचने लगी, इतनी देर तक तो दूसरी बाते हो रही थी, बस ठीक जिस समय मायालता ने 'तुम्हारे लडके को' कहा था कि उसी समय अशोका आ पहुँची। अपनी बात तो वह सुमोहन से नही कह पायी और इधर अशोका ने आकर सोचा होगा—लेकिन सोचकर भी अशोका क्या मायालता को फांसी पर चढा देगी ?

लेकिन नही।

अशोका ने अपने जीवन मे कभी भी सुनी-सुनायी बातो पर कहा-सुनी नही की।

फिर भी असुविधा महसूस होती थी। शायद इसीलिए ही। इस मन ही मन भयभीत होने की बात से ही शायद मायालता मे इतना आक्रोश पनप गया हो। आमने-सामने कुछ कह सुन न पाने के कारण ही वह दीवाल को अपना माध्यम बना लेती थी।

तब भी ठीक था। मायालता सोचने लगी, बात तो अधूरी हो रह गयी। सुशोभन के पैसो के सुमोहन के बच्चो के साल भर के कपडे बनते हैं, यही तो मायालता कहना चाहती थी।

खैर, अशोका को जो कहना था वह हो गया।

मायालता ने जँभाई रोककर बिखरा-बिखरा जवाब दिया, "उस वक्त के लिए मछली की बात कह रही हो ? तो उस वक्त के लिए रखने से अगर कम पड जाए तो सारी मछली इसी वक्त बना लो। उस वक्त के लिए बल्कि एक दजन बत्तख का अडा मँगाकर—" बात पूरा होने के पहले ही अशोका ठीक है, कह कर रवाना हुई ही थी कि तुरत सुमोहन ने उसकी ओर मुखातिब होकर सवाल दाग दिया, 'घर म जो भी बातें होती हैं, खबर होती है, वह सब मुझे बतायी क्यो नही जाती ?"

अशोका ने जवाब नही दिया, लेकिन वह वहाँ से गयी भी नही। शायद सवाल के दूसरी बार पूछे जाने की प्रतीक्षा करती रही।

हालाकि उसके चेहरे से जिज्ञासा बिल्कुल नही प्रकट हो रही थी। वह सिर्फ खडी देखती रही।

सुमोहन गभीर स्वर मे बोला, "मँझले भैया को लेकर घर मे इतनी बाते हो गयी हैं, मैं अब तक जान क्यो नही पाया ? तुम अच्छी तरह जानती हो कि यह सब मुझे बताना तुम्हारी ड्यूटी है।"

अशोका न मुस्करायी और न नाराज हुई—उसने कोई प्रतिवाद भी नही किया। बडे ही सहज भाव से बोली, 'मुझे भी ठीक-ठीक नही मालूम।"

"देख लिया ?" सुमोहन ने मायालता की ओर देखकर कहा।

"देख रही हूँ। सारा जीवन ही देख रही हूँ।" कहकर मायालता उठ खडी हुई। बोली, "कल सवेरे के वक्त जाऊँगी।"

"अच्छी बात है। वहाँ से आकर सुचिन्ता के रहने की जगह के बारे म मुझे बता देना ?"

"वह तुम्हे वपा से मालूम हो जाएगी।" कहकर मायालता चली गयी। जाते हुए सोचती रही, ठीक इसी मुहूर्त म उन्हे अशोका के सामन पडना चाहिए या नही।

भीतर-भीतर इस डर के रहने के कारण ही शायद जब मायालता जबर्दस्ती कुछ कह बैठती थी तब उनकी भाषा कुछ अधिक ही मृदु हो जाती थी।

हर सुबह अपने पिता के साथ थोडी दूर तक घूमन जाना नीता की दिनचर्या बन गयी थी। आज भी वह गयी थी और घूमते-घूमते वह उस ओर निकल गयी थी जिधर कार्पोरेशन की ओर से गैरकानूनी मकान तोडे जाने की कार्रवाई की जा रही थी।

उधर से गुजरत हुए सुशोभन अचानक चौंक कर खडे हो गये, इसके बाद बडी फुर्ती से नजदीक आकर व्याकुल होकर कहने लगे, "नीता, देख रही हो यह सब ! घर-द्वार सब तोड-ताडकर खत्म कर दे रहे हैं।"

पिता को सहज बातो के बीच परीक्षा करने के उद्देश्य से नीता भी खडी होकर बोली, "ठीक ही तो कर रहे है पिताजी।"

"ठीक कर रहे हैं ?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "नीता तू कह क्या रही है। गरीबो का घर बार ताडकर उन्हे बेकार बना रहे हैं, क्या यह अच्छा है ?"

"अच्छा क्या नही है ? तोडना ही तो आखिरी बात नही है। उनके लिए फिर से नया मकान बनेगा। तोडकर खत्म न करने से तो फिर से नया बनाया नही जा सकता। लाग तो वही सडी चाजें पकडकर बैठे रहेगे।"

थोडी दूर पर कुछ लोग झुड बनाकर आपस म उत्तेजित हाकर बातचीत कर रहे थे, और इधर-उधर जगह-जगह पर बस्ती के गरीब लोगो के टूटे-फूटे सामानो के ढेर लगे हुए थे। अर्थात् साफ-समझ म आने वाली बात थी कि बस्ती तोडन के पहले सिर छिपाने की कोई भी योजना कारपारेशन वालो ने नही बनायी थी। उधर ही उँगली उठाकर सुशोभन ने अत्यधिक उत्तेजित होकर कहा, "तूने तो कह दिया नये घर का निर्माण होगा ! तो वह पहले क्यो नही किया जाता ? अब वे लोग कहाँ जायेगे, कहाँ रहेगे ?'

अपने पिता को मनोलोक से निकल कर बाह्य जगत की चिंता करते पाकर नीता के मन में आशा की किरण फूट पडी ।

लगा वे लौट रहे थे । लौट रहे थे सुशोभन ।

लौट रहे थे सोच-विचार के जगत मे, सहज जान-पहचान की दुनिया मे । इसलिए सवाल-जवाब करके वह देखना चाहती थी कि आखिर जडें कितनी-गहराई मे थी ।

"कही तो वे रहेगे ही पिताजी ।"

"देख नीता, तू इन दिनो बडी कठोर हुई जा रही है । कही-न-कही वे रह लेंगे, क्या यह सोचकर निश्चित हुआ जा सकता है ? वे कहाँ रहेगे इसे सबसे पहले देखना होगा ।"

"वाह ! हम लोग कहाँ से देखेगे ?"

"नही देखेगे ? हम लोग नही देखेगे ?' सुशोभन लगभग चीख पडे," गरीबो को हम लोग नही देखेगे ? वे लोग बाढ के जल मे बहते रहेगे और हम लोग महलो मे बैठकर देखते रहेगे ? मैं जानना चाहता हूँ किसने उन लोगो के मकानो को ताडने का हुक्म दिया है ।"

ऊँचे स्वर से आकृष्ट होकर इधर-उधर से लोग देखने लगे । नीता हडबडा कर बोली, "बडी मुसीबत है, यह तो कारपोरेशन की स्कीम के मुताबिक हो रहा है । यह गदा और कच्चा ड्रेन अस्वास्थ्यकर आबो-हवा क्या इसे बदलने की जरूरत नही है ?"

"इससे बदलाव आयेगा ?"

सुशोभन थोडे मुलायम हुए ।

मुलायम और शात गले से बोले, "माना कि इससे उन्नति होगी । लेकिन नीता जो यहाँ से उखड गये हैं, क्या वे दुबारा लौटकर फिर से यहाँ आ सकेंगे ? यहाँ जो नये नये मकान बनेंगे, उनमे क्या वे रह पाएँगे ?"

नीता सात्वना और अफसोस भरे लहजे मे बोली, "ओह, अगर यही लोग यहाँ लौट कर नही आ सकेंगे, तो कोई दूसरा आयेगा । और ये लोग भी जरूर कही दूसरी जगह 'सेटल' हो ही जाएँगे ।"

"किसी दूसरी जगह !"

सुशोभन पुन उत्तेजित हो गये, दबे भारी स्वर मे शेर की तरह गुर्रा पडे, "दूसरी जगह मतलब किसी दूसरी बस्ती म । यही न ? नीता तुम अभी बच्ची हो, इसलिए अब भी लागा की धूर्तता को समझ नही पाती हो, बेकार की बातो पर भरोसा करती हो । मैं कह रहा हूँ इनकी हालत कभी भी नही सुधरेगी । ये सारे कच्चे ड्रेन पक्के हो जाएँगे, कच्ची सडकें पक्की हो जाएँगी, उसके दानों तरफ कक्रीट के ऊँचे-ऊँचे मकान खडे हा जाएँगे, और तब उनम आ र रहग

हम जैसे लोग। समझ गयी नीता, यही पैसे वाले लोग। विकास ! परिवर्तन। घोडे का पक्ष। सब कुछ कपट भरा है, समझी नीता सब कपट भरा। गरीबो को दूर हटाने का षड्यत्र। इनको ठेल-ठेलकर ये लोग एकदम समुद्र मे धकेल देंगे। समझ गयी ? सिर्फ पैसे वाले ही इस दुनिया म रह जाएँगे।"

नीता चकित हो गयी थी।

सुशोभन ने इस तरह से बहुत दिनो से सोचा-विचरा नही था। यह सोचना कितना सही है या गलत है इसे नीता नही सोच रही थी, वह साच रही थी कि पिताजी अब बात की तह तक जाकर सोचने लगे हैं।

पहले इस तरह की जाने कितनी बाते सुशोभन कहते थे। यह जरूर था कि तब बात-बात मे इतने उत्तेजित नही होते थे, ठढे दिमाग से तक करते थे और नीता कितना ही बढ-चढकर तक क्या न करती रही हो, वे कभी इसे धृष्टता नही समझते थे। वे भी अपना तर्क प्रस्तुत करते थे।

लेकिन उस अखाडे म क्या सिफ सुशोभन और नीता ही रहते थे ?

एक ओर बुद्धिदीप्त उज्ज्वल मूर्ति एक तरफ खामोश बैठकर परम कौतुक से इन दोनो वयस्क और नाबालिग के सोच-विचार और बहस के प्रबल पार्थक्य को देखती रहती थी।

आह ! तब कितना सहज-जीवन था !

वे दिन कितने सुन्दर थे !

आकाश कितना मनोरम होता था, हवा कितनी मधुर बहती थी, प्रकाश कितना उज्ज्वल होता था।

वे दिन क्या फिर कभी नीता के जीवन मे लौटकर आएगे ?

सोच-सोचकर मन व्यथा से कराह उठा। अभिमान से आहत हो गया।

नीता ने बहुत दिनो से सागर को चिट्ठी नही लिखी थी।

सागर ने भी बहुत दिनो से नीता की कोई खबर नही ली थी। नही, अभी उसी दिन तो चिट्ठी मिली थी।

जाने कब वह सागर पार से लौटेगा।

दो साल मे क्या इतने दिन होते हैं ?

"अचानक तुम्हारा चेहरा उतर क्यो गया ?" सुशोभन शिकायत कर उठे, "तुम्ह तो मैंने दोषी नही ठहराया था।"

नीता ने झटपट अपने बहते हुए मन को तट पर खीच लिया और बोली, "भला चेहरा क्यो उतरेगा ? मैं सोच रही थी।"

"सोच रही हो ? गरीबो की बात तुम सोच रही हो ?"

"जरूर सोच रही हूँ पिताजी।"

"बहुत खूब। तब उनको समुद्र मे ढकेले जाने से रोको।"

नाता चितातुर भगिमा म बोली, "सचमुच यह बद करना होगा, सामूहिक कोशिश करके रोकना होगा। लेकिन पिताजी क्या वे ऐसा होने देंगे ? बिना गरीबा के पैसे वाला का क्या हाल होगा ? उनके न होने से अमीरो का चौका-बासन कौन करेंगे ? कपडा कौन कचारेंगे ? जूते कौन साफ करेंगे ? बोझा कौन ढोएँगे ? रिक्शा कौन चलाएँगे ? अपने स्वाथवश ही पैसे वाले उनका अस्तित्व बनाए रखेंगे।'

"यह बात तुम्ह किसने बतायी ? '

सुशोभन फिर बिगड गय, "तुम कुछ नही जानती। दुनिया म अभी तुम्हे बहुत कुछ देखना बाकी है। वे लोग नहा रहगे। वे खत्म हो जाएँगे। मिट जाएँगे। समुद्र अगर छोटा पड जाये तो वे बडे-बडे बम फेककर उनका एकदम से नामो-निशान मिटा देंगे। यह सारा काम मशीना से होगा।"

"मशीन।'

"और नही तो क्या। इतने दिना से विज्ञान यही सब तो कर रहा है। पैसे वाले अपना सारा काम मशीनो से करवा लेंगे और गरीबा को मिटा देंगे।"

नीता ने महसूस किया कि बहुत सारी दृष्टियाँ उन्ही को देख रही हैं। यहा से भाग चलन मे ही कुशलता होगी। लेकिन अपन पिता की बातो के सिलसिले को भी एकाएक तोड दने का मन नही हुआ।

न जाने अभी और कितना कुछ सुशोभन कह सकते हैं। देखा जाय वे और कितना सोच पाते हैं।

इसीलिए यथासभव धीमे गले से वह चर्चा का सूत्र बनाए रही, "पिताजी ऐसा क्या कभी सभव है ? दुनिया म गरीबा की सख्या तो काफी है, व कितना का विनाश करेंगे ?"

"करोडो-करोड आदमियो का सहार करेंगे"—सुशोभन तैश म आकर बोले—"दुनिया का अधिकाश हिस्सा अपने कब्ज म करके हाथ-पैर फैलाकर बैठे रहने के लिए वे झुड के झुड लागो को खत्म कर देंगे। नीता, मैं तुमसे कह रहा हूँ, इसके बाद सामान्य-जन के रूप मे कोई भी बचा नही रहेगा। रहगे सिफ पैसे वाले और सिफ यत्र।"

नीता ने पिता का हाथ अपनी हाथा मे लेकर कहा, "कोई खत्म नही होगा पिताजी तब तक तो ये गरीब भी पैसे वाले बन जाएँगे।"

' नही, बिल्कुल नही। नीता तुम मुझे बहलाने की कोशिश मत करो।'

'अच्छा पिताजी चलो, घर चलकर फिर इस पर बहस करेंगे।"

"क्यो घर चलकर क्यो करें ? सुशोभन धमाधम पैर पटककर थोडी दूर तक चहलकदमी करते हुए बोले, "यही पर फैसला हो जाए न। उनम से किसी एक को बुला ला। वे लोग क्या कहते है, इसे उन्ही की जुबानी सुना जाय।'

"अब वे लोग क्या कहेगे ?"

नीता ने चकित होकर पूछ लिया ।

"वे लोग क्या कहेगे ! वाह खूब कही ! अपनी बाते वे नही बताएँगे । क्या वे लोग हमेशा खामोश ही रहगे ? क्या उनकी ऐसे ही मौत होगी ?"

"ऐसा क्यो होगा पिताजी । वे भी अब चुप नही रहत । चुपचाप बैठकर मार नही खाते । सिफ उनम एकता न हाने से ही उनकी उन्नति नही हो पाती है । सब लोग मिलकर एक होकर एक स्वर मे चिल्लाकर कह नही पाते कि हमे घर चाहिए, मकान चाहिए, भोजन-वस्त्र चाहिए । वे सिफ फुसफुसाकर ही कह सकते हैं, हमे घर-मकान, भोजन-वस्त्र चाहिए । कहते है—"मरा लडका पढ-लिख ले, लायक हो जाय बस । मेरे भाई का लडका मूख और बेकार होकर घूमता रहे, तभी सुख की बात होगी । लोग देश की चिंता न करके सिफ अपनी ही चिन्ता करते हैं । यह नहा साचते कि सिफ एक व्यक्ति के लोभ को ज्वाला सार देश को जलाकर राख कर सकती है । अगर सब लोग लाभमुक्त हाकर एक साथ अपने अधिकारो की माँग कर सकें तो फिर किसी को इस तरह से मरना नही पडेगा । '

नीता क्या अचानक भूल गयी कि सुशोभन अस्वस्थ थे, अप्रकृतिस्थ थे, अबोध थे । वे इतनी देर से जो कुछ कह रहे थे उसे शायद वे इसी क्षण भूल भी जाएँ । ऐसी स्थिति मे नीता का काम क्या अपन पिता को सिफ सभाले रखना होगा । शायद वे अपनी बात भूल ही गय थे इसीलिए उनके स्वर म ऐसा आवेग और वेदना झलक आयी थी ।

सुशोभन क्या वाकई अच्छे हो गये थे ? क्या सचमुच उनका खोयी हुइ समझ लौट आयी थी ? इसी स शिकायत के स्वर मे बाले, ' नीता तुम्हे उन लोगो के दोप-दशन का कोई अधिकार नही है । उन्हे इतनी बाते सोचने की जरूरत क्या है ? उन्होने कब कोई शिक्षा ग्रहण की है ? उनकी चेतना पर कोहरा छाया हुआ है । और तुम्हारे वे सब पैसे वाले लोग, जा पाडित्य का बोझ लादकर उच्च शिक्षा की बडाई करते रहते है । क्या वे सब समझ-बूझकर भी सिर्फ अपने लाभ के लिए दश को नुकसान नही पहुँचा रहे हैं ? दश के अकल्याण को बुलावा नही दे रहे हैं ? वे इसे नही समझत कि आग लगने पर उनका मकान भी सुरक्षित नही रहेगा । '

धूप तेज हो गयी थी ।

पिता को ज्यादा उत्तेजित करन का साहस नीता को नही हुआ । उसने यह भी साचा कि घर पहुचकर वह पिता से हुए आज के इस बातचीत के विवरण को लिख डालेगी और उसे उनसे छिपाकर डाक्टर को ले जाकर दिखलाएगी । शायद आज की इस बातचीत, सोच-विचार म स डाक्टर के हाथ कोई आशा-जनक सूझ हाथ लग जाए ।

इसीलिए नीता बोली, "पिताजी आप ठीक ही कह रहे है। पैसे वालों को ही दड देने की जरूरत है। उन्हे यह समझा देना होगा कि यह दुनिया सिर्फ तुम्हारी अकेले की नही है।"

"यही तो—इतनी देर बाद तूने सही बात कही।"

सुशोभन खुश होकर बोले, "इतनी देर बाद जाकर तुमने अपनी अक्ल से काम लिया। मैं तो सोच रहा था कि सुचिन्ता के ढेर सारे लडका के साथ उठते बैठते रहने के कारण तेरी बुद्धि कुद हो गयी है। जब तू उनमे से किसी एक को जरा यहाँ पर बुला। जरा पूछे कि अब वे लोग कहाँ जाएँगे ?"

नीता व्यस्तता दर्शाते हुए बोली, "अच्छा पिताजी बुलाऊँगी। किसी दूसरे दिन बुलाऊँगी। आज बहुत देर हो गयी है। देख ही रहे हैं धूप कितनी तेज हो गयी है।"

"होने दो! तुम उस आदमी को बुलाओ।"

"नही पिताजी—और किसी दिन।"

"क्या, किसी दूसरे दिन क्यो ?" सुशोभन जिद करते हुए बोले, "आज ही! अरे सुनो भाई, जरा इधर आना।"

झुड मे खडे लोग काफी देर से पिता-पुत्री को इस तरह से खडे बाते करते हुए देख रहे थे और इन लोगो की मुद्राओ से उन्हे यह समझने मे भी कतई दिक्कत नही हुई थी कि इनके बातो का विषय बस्ती और बस्ती वाले ही हैं।

सुशोभन के हाथ हिलाकर पुकारते ही एक बूढा नजदीक आ गया।

पिताजी क्या कहने जाकर क्या कह बैठे यह सोचकर नीता झटपट कह पडा, 'अच्छा यह सब क्या कारपारेशन द्वारा तोडा जा रहा है ?'

उस आदमी ने बडी लापरवाही से कहा, "यमराज जाने और यह कारपोरेशन वाले जानें।"

सुशोभन ने गम्भीर स्वर मे कहा, "तुम लोग नही जानते ?"

"नही, जानने की जरूरत ही क्या है। यहाँ रहना अब नही हो सकेगा, दुर-दुर करके भगा रहे है, बस इतना ही हम लोग जानते है।"

"वाह, अब तुम लोग कहाँ जाकर रहोगे क्या इसे नहीं सोचा ?"

"कोई जरूरत नही है बाबू! मूल बात समझ ली है कि जब तक परमायु रहगी, हम कोई मार नही सकेगा और जिस दिन वह खत्म हो जाएगी, कोई रोक भी नही सकेगा। बीच मे जो हो रहा है, होता रहे।"

अचानक सुशोभन गुस्से से गरज कर उठे, 'नही ऐसा नही होगा। यह सब नहीं चलेगा। तुम लोगो को कहना पडेगा, कि पहले हमारे रहने की व्यवस्था करो, तभी इसे तोड सकते हो। अन्यथा"—

"सुशोभन का बात खत्म होने के पहले ही वह आदमी परतमीजी का तरह

हँसते हुए बोला, "बाबू को तो रोज साहब की तरह हवाखोरी करते हुए और जब-तब हवागाड़ी पर सवार होकर हवा खाते हुए देखता हूँ, उन्हें आज अचानक गरीबों की चिंता क्या हो गया, बताइए तो ? लगता है आने वाले इलेक्शन में उम्मीदवारी का इरादा है।'

नीता का चेहरा लाल हो गया, और सुशोभन भी एक तरह से अचकचा गये। नीता का हाथ पकड़कर असहाय स्वर में बोले, "यह क्या कह रहा है नीता ?"

"कुछ नहीं पिताजी, तुम घर चलो।"

"हाँ हाँ, चलो।"

सुशोभन डरते डरते बोले, "वह नाराज हो गया है।"

फटपट, नीता को लगभग खींचते हुए अपने भारी-भरकम देह को लेकर वे दौड़ने लगे। पीछे से ढेर सारे लोगों के अश्लील ठहाकों की आवाज सुनाई पड़ी।

यह हँसी सुनकर विश्वास करना कठिन था कि इस समय वे लोग गृहहीन हो रहे थे, मर्माहत होकर आँखों में आँसू लिए वे इतने दिनों के बनाये अपने उन घरों को देख रहे जो कुदाल और रंभे की मार से टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। सचमुच उन्हें ऐसा करते देखकर विश्वास नहीं होता।

साहब को वे लोग चिढ़ा सके थे, यही उनकी बहुत बड़ी जीत थी।

थोड़ी दूर जाने के बाद सुशोभन ने अपनी चाल धीमी कर दी। बजान आवाज में बोले, "नीता, वे लोग हम फॉलो तो नहीं कर रहे हैं ?"

"नहीं पिताजी।'

"अच्छी तरह देख लिया।"

"हाँ पिताजी।"

"ओह, खूब बचे। थोड़ा और होता तो पकड़े जाते।"

सुशोभन चेतनालोक में लौट रहे थे न ?

लौट रहे थे सहज ज्ञान की दुनिया में।

कम से कम नीता इतनी देर से यही सोचकर खुश हो रही थी।

एक गहरी साँस मन को मसोसते हुए निकली और बहती हुई हवा की देह पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी। नीता ने अपने पिता की हथेली कस कर पकड़ ली।

दो चार कदम चलकर सुशोभन फिर खड़े होकर बोले, "अच्छा नीता, वह आदमी इस तरह से हँसने क्यों लगा था ?"

"क्यों हँसने लगा था ?" नीता ने बेहिचक कहा, "पिताजी वह आदमी पागल था।"

"पागल ! ओह ! ऐसा कहो।"

सुशोभन भी अचानक अट्टहासकर उठे, "तभी कहूँ कि मैं अच्छी बातें कहने

गया, और वह व्यग्य करन लगा, हँसने लगा। पागल। आई सी। इस दुनिया म जाने कितन पागल भरे पडे है।"

"हाँ, पिताजी! अच्छा, अब जरा जल्दी चलो।"

"लेकिन नीता मुझे लगा और भी ढेर सार लोग हँस रह थे।"

"हँसेंगे ही!" नीता बलपूर्वक बोली, "हँसेंगे नही? पागल का पागलपन देखकर ही वे सब हँस रहे थे।"

"सचमुच! लेकिन नीता, देखो कितने आश्चय की बात है, यहा कोई नही है, फिर भी जैसे मैं उनकी हँसी की आवाज सुन रहा हूँ।"

"यह मन का भरम है पिताजी। अब चलो न, बहुत देर हो रही है। सुचिन्ता बुआ जाने कब से तुम्हारे जलपान का व्यवस्था करके इतजार कर रही होगी।"

"इतजार कर रही हैं।"

सुशोभन व्याकुल होकर बोले, "सुचिन्ता इन्तजार कर रही है, और तुमने मुझे अभी तक यह बात नही बतायी?"

'बतायी तो अभी।"

"तो इसे और पहले भी बता सकती थी।"

सुशोभन अत्य त असतुष्ट होकर बोले, "इतनी देर बाद बता रही हो। मेरा क्या है। मैं सुचिन्ता से कह दूगा कि सारा दोष तुम्हारा है। कहूँगा, नीता ने मुझे ले जाकर एक पागल से भिडा दिया था—"

नीता जैसे भयभीत होकर बोली, "ऐसा मत कहना पिताजी। मत कहना। बुआ फिर मुझे नही बख्शेगी।

"बख्शेंगी नही?"

सुशोभन फिर रुक गये, "तुम्हे नही बख्शेगी? इसका मतलब? मारेगी? देखो नीता, तुम्हे मारेगी तो मैं भी उसे नही छोड़ूगा। परेशान कर दूँगा। लेकिन नीता—" उनके चेहरे पर पुन असहायता उभर आयी। "सुचिन्ता तो वैसी नही है। तुमको कितना चाहती है।"

"बडी आफत है। पिताजी तुम तो सचमुच सोचने लगे। मैं तो मजाक कर रही थी।"

"मजाक किया था? तुमने मुझसे मजाक किया था? तो इसे पहले बताना था। मैं इधर सुचिन्ता पर नाराज हो रहा था। वही तो सोच रहा था सुचिन्ता ऐसा क्यो करने लगी?"

"यह तो सच है।" नीता बडे ही उत्साहपूर्वक बोली, "लेकिन पिताजी तुम घर जाकर नाश्ते म सारे फल को खा लेना। इस बात से बुआ खूब प्रसन्न होगी।"

"प्रसन्न होगी। सच कह रही हो?"

"कह तो रही हूँ पिताजी।"

नीता का स्वर टूटने लगा। और कितना देर तक वह उत्साह प्रदर्शन का अभिनय करती रहेगी? और कितने दिनों तक कर सकेगी।

बीच-बीच में बिजली की चमक की तरह आशा की एक झलक दिखायी पड़ती, फिर सारा आकाश मेघाच्छन्न हो जाता।

नीता क्या अब हार जाएगी?

नहीं, नहीं, सागर के लौटने से पहले नहीं। बालू में फँसे जहाज को फिर से प्रवाह में लाया जा सकता है या नहीं, इसे आखिरी दम तक देखना है।

सागर! सागर! सागर!

आज रात को ही वह सागर को चिट्ठी लिखेगी।

घर के निकट आते ही सुशोभन बोले, "नीता तू उस समय क्या कह रही थी? सुचिन्ता किस बात से खूब प्रसन्न होगी? अब याद नहीं आ रहा है।"

लेकिन नीता को ही क्या याद था? नीता कहने के लिए कोई बात गढ़ने लगी तब तक वे दोनों मकान के दरवाजे तक पहुँच गये थे। सुचिन्ता दरवाजे के सामने ही परेशान उत्कंठित होकर खड़ी थी। उन्हें तुरन्त खुश करने की आशा कम ही दिखी।

उनके नजदीक पहुँचते ही सुचिन्ता के चिंतित परेशान स्वर ने उन पर हमला बोल दिया, "इतनी देर तक कहाँ घूम रही थी नीता? तभी से तुम्हारी ताई और चाचा बैठे इन्तजार कर रहे हैं।"

ताई और चाचा।

नीता के पैर छूते ही मायालता ने भी शिकायत भरे लहजे में वही बात दोहरायी, "बहुत देर से बैठी हुई हूँ। सुबह इतनी देर तक टहलना क्या तुम लोगों का नित्य नियम है?"

"नियम ही समझिये और क्या? नीता शंकित दृष्टि से एक बार सीढ़ी की ओर देखकर मुस्कराने की कोशिश करते हुए बोली, "घूमते-टहलते जिस दिन जितनी देर हो जाए।"

सुशोभन धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ रहे थे। उनके ऊपर आने के पहले ही ताई से प्रारंभिक वार्ता हो जाना अच्छा था।

"ओह! घूमने की सुविधा के लिए ही शायद यहाँ आकर रह रही हो?" मायालता होंठ दबाकर पूछ बैठी।

नीता सहसा संकोच त्याग कर सामान्य लहजे में बोली, "ठीक कहा आपने। सचमुच यही बात है। पिछले कुछ समय से पिताजी की तबियत ठीक नहीं चल रही थी।"

"अच्छा, यहाँ तुम चज के लिए ले आयी हो ?" मायालता ने क्रूर परिहास भरे स्वर म कहा, "तो हवा बदलने के लिए जगह का चुनाव तुमने ठीक ही किया है। दिल्ली का आदमी हवा बदलने आया भी तो कहाँ, धुर गोविन्दपुर मे। खैर, एक बार खबर कर देती तो क्या कुछ हज हो जाता बेटी ? हम लोग तुम्हारे मामले म बाधक तो नही होते।"

"ऐसा क्यो कह रही हैं ताई ? ' नीता का चेहरा आरक्त हो गया। बोली, "बगाल की शीतल जलवायु मे कुछ दिन अलग-थलग रहने से शायद लाभ हो, यही सोचकर—" कहते-कहते नीता रुक गयी। समझ नही पायी कि ताई असल बात कितना जान चुकी हैं, कितना नहीं। बहुत देर से आयी हैं, सुचिन्ता से काफी बाते हुई होगी।

क्या सुचिन्ता ने सुशोभन की मानसिक स्थिति के बारे मे बता दिया है ? नीता को लगा सुचिन्ता न अभी इस बारे म कुछ नही कहा होगा। कह देती तो क्या मायालता अभी तक ऐसा ही उग्रमूर्ति धारण किए रहती ? थोडी दुखी, थोडा मुलायम रुख न लिये होती ?

आश्चय। अर्से से नीता मायालता के व्यवहार को देख रही है, उसकी बातो से जैसे हमेशा शहद टपकता रहता थी। लेकिन आज की ऐसी विपरीत मूर्ति का कारण क्या था ?

छोटे चाचा भी आये ह क्या ? कहा है वे ? नीता ने इधर-उधर देखा नीलाजन के कमरे से बातो की आहट महसूस हुई। लगा वहा उन्होने महफिल जमा ली है।

मायालता कुछ और भी कहते-कहते रुक गयी।

सुशोभन रुक-रुककर सीढियाँ चढकर ऊपर आ गये थे। आकर विचलित होने की मुद्रा म खडे हो गये।

उनके ठीक पीछे ही सुचिन्ता थी।

स्टैच्यू की तरह अब शून्य चेहरा था।

यह समझने मे दिक्कत नही हुई कि सुचिन्ता न अपने को सभाल कर आत्म-केन्द्रित कर लिया था।

मायालता को क्या आखें नही थी ?

सुशोभन के इस विह्वल भाव को देखकर भी क्या वे कुछ अनुमान नही लगा पा रही हैं ? या जिस बात की कतई आशका नही थी, जो बात सोचने समझने के दायरे के बाहर थी क्या इसीलिए मायालता वैसा आचरण कर रही थी ?

"कहो मझले देवर जी, क्या तुम मुझे भी नही पहचान रहे हो ?"

सुशोभन वैसी ही विह्वल दृष्टि स देखते हुए बुझे-बुझे से बोले, "पहचान, पहचान तो रहा हूँ।"

अचानक मायालता का मुखड़ा बदल गया। विगलित हँसी में मनुहार करते हुए बोली, "मझले देवरजी तुम मुझे बेवकूफ बनाकर नहीं लौटा सकते। मैं क्या चीज हूँ, जानते हो न? मैं तुम्हें यहाँ से ले जाकर ही मानूँगी। सुचिन्ता बहन, तुम मन में कोई ख्याल न लाना, सच कहती हूँ, भाभी पर छोड़कर अलग मकान में रहोगे तो लोग क्या कहेंगे, जरा तुमको इस ओर भी सोचकर देखना था। और नीता—'

"ताई जी!"

नीता ने असहिष्णु प्रतिवाद किया।

लेकिन मायालता ने उस स्वर की तीक्ष्णता पर जरा भी कोई ध्यान दिए बिना चहकते हुए बोली, "ओ छोटे देवर जी, जरा आकर देख जाओ, तुम्हारे मझले भैया अब मुझे भी नहीं पहचान पा रहे हैं। मझले देवर जी क्या तुमने इसी कला में महारत हासिल की है? या किसी ने कोई जड़ी-बूटी सुँघाकर तन्त्र-मन्त्र करके तुम्हें जड़ पदार्थ बना रखा है?

मायालता ने सुचिन्ता की ओर तीव्र कटाक्ष किया।

लेकिन सुचिन्ता तो बिलकुल पत्थर की मूर्ति बनी हुई थी।

और लगता था नीता भी उन्हीं का अनुसरण कर रही थी।

मायालता की चहकती आवाज से सुमोहन 'क्या बात है?' कहते हुए कमरे से निकल आया।

लेकिन फिर मामले का किसी दूसरे को समाधान की जरूरत नहीं पड़ी। सुशोभन ने ही स्पष्ट कर दिया। सुमोहन को देखते ही वे बच्चों की तरह पुलकित होकर बोल पड़े, "नीता, नीता देखो यह मेरा छोटा भाई है।"

नीता ने आगे बढ़कर अपने चाचा के पैर छूकर शांत, तटस्थ स्वर में बोली, "यह क्या पिताजी आप छोटा भाई, क्या कह रहे हैं। नाम लेकर बुलाइए।

"नाम लेकर! हाँ हाँ, नाम से ही तो पुकारूँगा। लेकिन नीता नाम क्या है? यह नाम कहाँ चला गया? नाम तो नहीं ढूढ़ पा रहा हूँ। नीता जरा ढूँढ क्या नहीं देती?"

सुशोभन कुर्सी पर हताश होकर बैठ गये।

इस बार मायालता के परेशान होने की बारी थी। वे वहाँ उपस्थित लोगों के चेहरे की ओर देखने लगी।

सुमोहन ने नीता से इशारों से पूछा 'ऐसा कब से है?"

लेकिन नीता ने उस इशारे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं व्यक्त की। पिताजी की कुर्सी कस कर पकड़े हुए वैसी ही खड़ी रही।

सुचिन्ता चुपचाप अपने कमरे में चली गयी। नीलांजन भी एक बार कमरे से

वाहर आकर सारी स्थितिया का जायजा लेकर फिर से अपने कमरे म घुस गया।

"मँझले भैया, मैं मोहन हूँ।'

नीता की ओर जमी नजरो से देखते हुए सुमोहन ने नजदीक आकर धीरे से इस वाक्य को दोहराया। सामान्यत उसे नाराज होते नही देखा गया लेकिन इस समय वह नीता पर बेहद खफा हो गया था। जैसे नीता ने ही कोई षड्यन्त्र करके अपने ताऊ और चाचा का अपदस्थ किया था।

यह तो साफ दीख रहा था कि सुशोभन के दिमाग म गडबडी हो गयी थी, दिमाग क दो-चार स्क्रू ढीले हो गये थे, लेकिन इस बात को क्या सोचकर आखिर इतने दिना से दबा रखा था ?

"क्या तू अकेल ही अपने पिता के प्रति जिम्मेदार है ?"

"क्या सुशोभन के भाइयो से कोई मतलब नही ?"

यह सभव है भाइयो की ओर से हाल चाल पूछते रहने का काई सम्बन्ध न रहा हो। ठीक ठाक आदमिया के लिए कौन बैठकर चिता करता रहता है ? पिताजी की तबियत ठीक न होने से इस बार कलकत्ता नही जा पायी इस तरह की चिट्ठी डाल देने से ही क्या तुम्हारा कर्तव्य खत्म हो गया ?

न डर है।

न दायित्व-ज्ञान है।

एक कमउम्र की अकेली लडकी के मन म इस बात को लेकर जरा भी चिता परेशानी नही। इतना बडी खबर और उसका काई सूचना तक नही दी।

इतना देर तक सुमोहन की नीलाजन से बातचीत हुई लेकिन उसने भी तो इस बारे म कुछ भी नही बताया।

"ये लाग कितने दिना से यहाँ है ?" पूछने पर टालने के लहजे मे उसने कहा था, "यही तो थोडे दिन आये हुए होंगे। दिन और तारीख की याद भला किसे रहती है ?"

सुचिन्ता भी सिर्फ हाल-चाल पूछकर बोली थी, "वे लोग टहलने गये है।"

जहाँ तक बात समझ म आयी कि ये लाग सुचिन्ता क यहाँ किरायेदार की हैसियत से नही रह रहे है।

किरायेदार जैसा घर मे व्यवस्था भी नही की गया थी। इन लोगा की घर गृहस्थी म ही तो नीता और सुशोभन का उठना-बैठना दीख रहा था। यह तो किरायेदार जैसा भगिमा नही थी।

इतने विस्तार से इतनी सारी बातें सुमोहन सोचने नही बैठा था, इसलिए उसने इस तरह का बातें का झटककर दिमाग से दूर फेंक दिया। उसने धीरे से नजदीक आकर कहा, "मँझले भैया, मैं मोहन हूँ।"

मोहन ! मोहन सुमोहन का घर का नाम था।

सुशोभन फिर से खिल उठे, "ओ नीता, सुचिन्ता ! सुना तुम लोगो ने—मोहन ! मोहन ! तुम लोग एक नाम ढूढकर नही निकाल सके, मोहन ने ढूढ निकाला। मोहन ! मोहन ! कितने आश्चर्य की बात है, अचानक जाने कैसे चीजे खो जाती हैं।"

सुमोहन मायालता जैसा नहीं था। न ही वह बेवकूफ था। वह परिस्थिति के अनुसार अपने को ढालकर बोला, "मंझले भैया, तुम दिल्ली से कब आये ?"

"दिल्ली से ?"

सुशोभन ने खिन्न होकर कहा, "नीता, दिल्ली से हम लोग कब आये थे ?"

"पिछले महीने की दो तारीख को पिताजी।"

"हाँ हाँ, सुना मोहन, पिछले महीने की दूसरी तारीख को।"

"अभी तो कलकत्ते मे हो न ?"

सुशोभन ने बेफिक्री से कहा, "बिल्कुल। अब क्या सुचिन्ता को मरने के लिए छोड दूँ ? दिल्ली मे तो सभी मर जाते हैं। लेकिन तुम ? तुम क्या दिल्ली मे रहते थे ?"

"नही भैया, मैं तो हमेशा से ही यहा पर हूँ।'

"तुम बहुत बेकार की बाते करते हो मोहन। यहाँ तुम कब थे ? अभी तो आये, अभी तो तुम्हारा नाम ही खो गया था, फिर तुमने उसे ढूढ निकाला।"

"पिताजी कमरे मे चलो, तुम्हारे नाश्ते का समय हो गया है।"

"नाश्ते का समय हो गया ?"

सुशोभन अचानक भडक उठे "और मोहन का ? मोहन के नाश्ते का समय नही हुआ ? नीता तुम कैसी हो ? मोहन का सब कुछ नष्ट हो गया है, वह नही खायेगा ? आखिर वह कहा खायेगा ?"

"क्या बेकार की बात कह रहे हो पिताजी", नीता चिढ गयी, "चाचाजी का मकान क्यो नष्ट होगा भला ? वे मकान तो दूसरो के थे। उन गरीब लोगो के।"

"गरीबो के। वही तो। ठीक कहा तुमने। देखा मोहन, नीता मेरी सारी भूलो को सुधार देती है।'

मायालता तुरत कसमसाकर बोल पडी, "मझले देवर जी, नीता तुम्हारी गलतियो को सुधारने के लिए हमेशा तो बैठी नही रहेगी। शादी के बाद नीता को ससुराल नही जाना पडेगा ? तब क्या होगा ?"

"तुम फिर क्यो बात कर रही हो ?'

सुशोभन ने रोबदार आवाज मे डाटा, "तुम्हारे कहने से ही मैं नीता को उसके ससुराल मे भेज दूँगा क्या ? सिर्फ तुम्हारे हुक्म से ?'

मायालता को मजा आने लगा।

जैसा मजा सौ मे ६६ लोगो को पागलो को देखकर आता है। "सुशोभन पागल हो गय हैं।" इस कटु सत्य को जानकर भी इस समय मायालता विमूढ नही हुयी। इसलिए वे तीखी नजरो स अपने देवर के चेहरे की ओर देखते हुए वोली, "मैं तो हुक्म दे ही सकती हूँ। मैं उसकी ताई होती हूँ न। वह मेरे श्वसुर-खानदान की वेटी है न ? शादी न करके बेकार घूमते-फिरते रहने से हम लोगो की भी तो वदनामी होगी कि नही ?"

यह बात मायालता किसे सुना रही है इसे समझने म नीता को देर नही लगी। फिर भी वह अविचलित स्वर म वाली, "अच्छा जरा बैठिए ताई। पिता जी को जरा कुछ नाश्ता करा दू, इसके वाद जितनी खुशी हो सवाल पूछिएगा। रोज इसी समय उह कुछ नाश्ता करने की जरूरत महसूस होती है।"

मायालता सबको समेट कर छलछलायी आँखो और रुँधे गले से बोली, "खुशी ? खुशी के सवाल पूछने का मुँह भगवान् ने रखा है क्या ? तब से चकित होकर मैं देख-देखकर सोच रही हूँ, यह क्या हुआ। कैसे थे और कैसे हो गये। अच्छा मँझले देवर जो अच्छी तरह से देखकर बताओ तो मुझे क्या बिल्कुल पहचान नही पा रह हो ?"

अचानक सुशोभन अपने तरह का अट्टहास कर उठे। "नही पहचान पाऊँगा, मतलब ? कौन कहता है मैं नही पहचान पाऊँगा ? तुम तो वही उन लोगो के यहा की बडी बहू हो न ?"

मायालता का सारा दिन अत्यन्त उद्विग्नता म बीता, सुविमल कब आएँ और सारी वात बताए। जब सुविमल ने पूछा, *"अब बताओ, तुम लोगो का* अभियान कैसा रहा ? उम्मीद है सबसे सफल रहा होगा।" सुनकर मायालता चुप्पी साध गयी। शायद इस सवाल म छिपे एक व्यग्य का आभास उहे हुआ।

"क्या, क्या फिर जाना नही हुआ ?"

"हुआ क्यो नही।" भौहो को सिकोडकर मायालता ने अपना मुँह फेर लिया, "किसी बात का डर था क्या ?"

"क्या, तुमको तो पहचान लिया न ?"

"हा, मेरे पूर्वजन्म का फल था। देखो, एक वात मैं पहले से बता देती हूँ, छोटे देवर जी तुम्ह भले ही मँझले देवर जी की दिमागी गडबडी के बारे मे बताएँ लेकिन मैं इस बात पर यकीन नही करती।"

दिमागी गडबडी।

सुविमल चौंक पड। यह वात तो उनके ध्यान म हा नही आयी थी। जबकि भतीजे को न पहचान पाने के पीछे न कोई तक था और न सुशोभन का

वैसा स्वभाव ही था। इस बात पर तो उन्होंने सोचा ही नहीं था। सुशोभन के दूसरी जगह रहने की बात को लेकर उन्होंने बस यही सोचा था कि अब भाई-भाई में वैसा लगाव नहीं रहा होगा। 'दिमागी गड़बड़ी' इस शब्द से लगा जैसे किसी ने उन पर हथौड़े की चोट कर दी है। लेकिन इस चोट को महसूस करने की दृष्टि मायालता की नहीं थी। इसके अलावा सुशोभन के प्रति सुविमल को बड़े भाई के अनुरूप स्नेह और वात्सल्य का भाव भी कभी उनके देखने में नहीं आया था। हमेशा ही सुशोभन की चर्चा होने पर सुविमल उन्हें 'मँझले बाबू' कहकर ही व्यंग्य करते थे, मायालता के सामने यह भी एक कारण था।

इसीलिए मायालता अपनी ही रौ में बातें करती रही।

"कितनी लज्जा की बात थी। सब देख-सुनकर भी भागने का रास्ता नहीं मिला। अच्छा तुम्हें शुरू से ही बताती हूँ जाकर पाया कि बाप-बेटी दोनों टहलने गये हैं, तब सुचिन्ता और उनके बेटे से बातचीत हुई। जितनी बार भी पूछने की कोशिश की तुम्हारे यहाँ उनके रहने का कारण क्या है? हर बार वे बात का रुख बदल देते। इधर-उधर की बातें करते। बचपन की बातें बताने लगी। उधर छोटे देवर जी सुचिन्ता के पुत्र के साथ बातचीत में मशगूल हो गये। बहुत देर बाद बाप-बेटी टहलकर लौटे।

भेंट होते ही फिर वही कायदा। जैसे देखकर भी नहीं देखने, पहचानकर भी नहीं पहचानने की भंगिमा। छोटे देवर जी को धीरे-धीरे पहचानने की कोशिश की।

मैंने इन सब बातों की परवाह नहीं की। आगे बढ़कर पूछते ही बोले, "हाँ हाँ, पहचानूँगा क्या नहीं, तुम तो उन लोगों के घर की बड़ी बहू हो।" इतना बता सके और किसके घर की बहू हूँ यह नहीं बता सके? बताएँगे क्यों, यह एक नयी चाल है।"

"अब जरा चुप भी रहो।" कहकर सुविमल सुमोहन के कमरे में जा पहुँचे, "क्या बात है मोहन?"

"बात क्या है।" मोहन ने हताश होकर कहा, "एकदम तो पागलपन की हालत है।"

"अचानक ऐसा कैसे हुआ?"

"कहना कठिन है। रोग कब अचानक शरीर में जड़ जमा लेता है। अचानक तो नहीं होता। नीता ने बताया कि पिछले तीन वर्षों में इसके लक्षण दिखने लगे थे। दवा कराने कलकत्ता आये हैं—"

सुविमल चीख उठे, "आखिर नीता देवी ने हम लोगों को इसकी सूचना देने की जरूरत भी नहीं समझी?"

सुमोहन अब क्या कहता यह भगवान् ही जानते होंगे लेकिन उसके कुछ कहने

के पहले ही पति की अनुगामिनी सती मायालता सुविमल के पीछे-पीछे आकर वहा हाजिर हो गयी और अपनी बुद्धि के अनुसार उन्होंने जवाब देने मे कोताही भी नही की, "मैं यही तो कह रहा हूँ। यह सब सच नही है, यह जान बूझकर पागल बनना है। सचमुच पागल होने से क्या नीता परेशान नही होती ? तब हम लोगो को एकदम दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेक सकती थी—अपने मन से भी भला ऐसा कर सकती था ? यह तो साफ ही है कि इसमे उसके पिता का भी हाथ है।"

"यह तुम क्या कह रही हो भाभी ?" सुमोहन झुझला पडा, "हम लोग अपनी आँखो से देख आये। बड भैया, देखकर तकलीफ ही हुई। यहाँ तो आदमी असहाय होता है। ऊँची नौकरी करने मे क्या और बैंक मे भारी रकम जमा करने से क्या, एक मिनट मे सब बेकार हो जाता है।"

मायालता ने रद्दा जमाया, "सच कहते हो देवर जी ? तभी तुम दुनियादारी से बिल्कुल अलग निश्चित बैठे हुए हो, कभी कुछ करने की जरूरत नही समझी।"

सुमोहन बिना विचलित हुए बोला, "बात तुमने सही कही है।"

सुविमल खीझते हुए बोला, "अब तम यहाँ क्यो चली आयी ? असल बात क्या है, जरा सुनने दो न ?"

"ओह, लगता है, तुम्हे मुझसे सच्ची बात की जानकारी नही होती ?" मायालता गुस्से मे बोली, "लेकिन मैं कहे देती हूँ कि बाद मे मेरी बात पर ही विश्वास करना पडेगा। अगर पागलपन है तो बनाया हुआ पागलपन है। नीता को थोडा झिडक क्या दिया कि वह उल्टा मुझी को डाटने लगा। बात का तरीका देखो, "नीता को तुम डाँट क्यो रही हो ? तुम्हे उसे डाटने का क्या अधिकार है ? नीता ने तुम्हारे यहाँ से चली आकर बडा अच्छा किया है। तुम्हारी जैसी झगडालू औरत के पास वह क्या रहेगी ? जरा सुचिन्ता को देखो। वह सही मायने मे एक लेडी है, जिसे कहते हैं भद्र महिला। नीता सुचिता जैसी बनेगी। ऐसी ही ढेरो बाते।"

सुविमल थोडा मुस्काकर बोले, 'उसने यह सब कहा ?"

'कहा कि हो, पूछ लो अपने छोटे भाई से। हुँ, तुम तो समझते हो कि मैं हर बात बढा चढाकर कहती हूँ। इन्ही से पूछो कि ये सब अतिरंजित वर्णन हैं या सच-सच बाते है ! मैं कह देती हूँ उस सुचिन्ता ने ही कुछ जादू-टोना किया होगा। और इससे भी इनकार नही किया जा सकता कि बहुत दिनो से दोनो की चोरी छिपे मुलाकाते होती रही हैं। बचपन का प्रेम भला—"

"अब तुम चुप भी रहो।"

सुविमल ने डाँट दिया।

लेकिन डाँटकर कब कौन गृहिणी का मुह बन्द कर सका है ? सुविमल भी

नही राक सके । जवाब मे मायालता चीखने लगी, "क्यो, आखिर क्यो चुप रहूँ ? सच बात कहने मे मैं किसी से भी नही डरती, यह मैं साफ-साफ कहे देती हूँ । मँझले बाबू को मैं इतने दिनो तक सीधा-सादा, सरल इन्सान समझती थी । यह क्या जानती थी कि बाहर कुछ और है और अन्दर से कुछ और । हे भगवान् । मैंने तो प्रेमपूर्वक यही कहा, "मझले देवर जी, तुम बहुत दिन यहाँ रह चुके, अब घर चलो । ' यह सुनकर तो व भडक उठे ।

' उनके जहाँ-जहा भी अपने लोग थे, मैंने उन सबको मार डाला है । इस घर मे अब उनका कोई नही रहता । मैं भी जल्दी छोडने वाली नही थी । मैंने कहा, मेरे साथ चलकर एक बार देख तो लो तुम्हारा वहाँ कोई है या नही । मैं आज यू ही नही लौटूगी, तुम्हे साथ लेकर ही जाऊँगी । इसके बाद की बात तुम्हे बताते हुए शर्म आती है । चूकि छोटे देवर जी के सामन यह हुआ था नही तो मैं उसे जबान पर ला ही नही पाती । जैसे ही ये सारी बाते मैंने कही, वह दौडकर दोनो हाथो से सुचिन्ता को जकडते हुए आख मूदकर आर्तनाद करने लगे, "सुचि ता, उस घर की बडी बहू को भगा दो, अभी भगा दो । वह मुझे तुम्हारे पास से छीनन आयी है । और किसी दिन उसे इस मकान म मत घुसने देना । छि छि यह देखकर तो मैं शर्म से गड ही गयी । मारे शर्म के रास्ता नही मिल रहा था । लेकिन तुम लोगो की सुचि ता को ध यवाद देती हूँ । न वह हिली न डुली, न उसे शर्म ही आयी बल्कि उल्टे मुझे उसने साफ-साफ कह दिया, "भाभी इनकी हालत तो देख ही रही हो । ज्यादा उत्तेजित करके अस्वस्थ करन से कोई लाभ नही होगा । आज तुम चली जाओ ।"

"मैं भी उनको सुना आयी हूँ सिर्फ आज ही क्यो, जि दगी भर के लिए जा रही हूँ । तुम्हारे यहाँ कभी पैर धोने भी नही आती, अगर हम लोगो का अपना कोई यहाँ न रहता होता । खैर ये तो यहा जड बन के बैठे हुए हैं, अब और किसके पास आऊँगी ।" कहकर दनदनाती हुई वहाँ से निकल आयी । लेकिन नीता कैमी कठार लडकी है जरा दखो वह एक बार भी पीछे-पीछे नही आयी, न मनुहार किया, "ताई एक पागल की बातो पर नाराज मत होना ।" पागल कहकर तो परिचय ही नहीं दिया—

इतनी देर बाद अचानक मायालता की बातो पर किसी के प्रतिवाद का स्वर सुनाई दिया । जाने कब अशोका भी वहा उपस्थित हो गयी थी । प्रतिवाद उसा ने किया था ।

हालाँकि ऐसा करना अशोका के स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था ।

लेकिन शायद अशोका को कमरे की इस आबोहवा म घुटन होने लगी थी । इसलिए भी कि मायालता सब कुछ अपनी ही रौ म कहे जा रही थी, एक भाई

बिस्तरे पर लम्बायमान थे और एक भाई स्तब्ध होकर गूंगे-बहरे की तरह बैठे हुए थे।

लेकिन अशोका ने अधिक कुछ नही कहा, बल्कि मधुरता से ही बोली, "दीदी, पागल खुद ही अपना परिचय दे देता है, उसके बारे मे किसी दूसरे को बताने की जरूरत नही पडती। बडे भैया आइये, आपके लिए भोजन परोस दिया है।'

कचहरी से लौटने के बाद सुविमल को गरिष्ठ जलपान ग्रहण करने की आदत बराबर रही है और उन्हे नाश्ता कराने की जिम्मेदारी अशोका की थी। जेठ को 'बडे ठाकुर' कहकर सम्बोधन न करने से जेठ के प्रति सकोच का अभाव महसूस करके मायालता नाराज होती थी, लेकिन अशोका बेपरवाह होकर उन्हे बडे भैया ही कहती थी।

अशोका के स्वर मे प्रतिवाद था। दूसरो की बातो मे उसे कोई रुचि नही थी।

सबसे अधिक आश्चर्य सुमोहन को हुआ था।

उस वक्त घर लौटकर उसने सुशोभन की हालत और बाकी घटनाओ के बारे मे अपनी पत्नी को बतलाने की कोशिश की थी, लेकिन वह सफल नही हुआ। अशोका ने उसके उत्साह पर पानी फेरते हुए कहा था, "यह सब मुझे बताने से क्या लाभ ? "

सुमोहन खिसियानी हँसी-हँसता हुआ बोला, "अपनी पत्नी के साथ बातें करते वक्त आदमी क्या हर समय नफा नुकसान के बारे मे सोचता है ?"

"क्या यह बात चर्चा करने लायक है ?' कहकर अशोका ने अपना ध्यान बुनाई पर केन्द्रित कर दिया।

इस समय तो उसने अपने आप ही बात शुरू की थी।

इसे मायालता ने भी महसूस किया।

उन्होने सोचा, यह और कुछ नही सिर्फ जेठ की प्रशंसा प्राप्त करने का तरीका है। जेठ के उकसावे से ही तो इसे इतना घमण्ड हुआ है। लेकिन मुँह पर कुछ कह नही पाती, पीछे कहती है, 'चले जाइये। हुकुम। आदमी जैसे मशीन हो गया है, कि हमेशा लगाम कसकर घोडे पर दौडता ही रहेगा ? दो घडी बैठकर आदमी दुःख-सुख की बात भी नही करेगा ?"

"सुख की बात सिर्फ कहने की ही है। बडे भैया अब जल्दी आइये। नाश्ता ठण्डा हो रहा है।" यह कहकर कमरे से बाहर चली गयी।

उसके जाने के बाद मायालता गुस्से से आग हो उठी, 'देख लिया ? देख लिया तुम दो भाइयो की चार आँखो ने ? मुझसे छोटी होकर भी छोटी बहू मुझ से किस तरह से पेश आती है ?"

सुविमल उठ खडे हुए। जाते-जाते बोले, "छोटा-बडा क्या आदमी अपनी उम्र से ही होता है बडी बहू ?"

मायालता मान किये नही बैठी रही। उनमे इतनी क्षमता भी नही थी। छोटी बहू उनके पति का कितना ख्याल रख रही है, इसे देख बिना वे नही रह सकी। लेकिन पति के पीछे पीछे जाते हुए वे सुनाकर बोल भी पडी, "आखिर मन, बुद्धि, ज्ञान चैतन्य का तोलने का कोई बटखरा तो अभी तक नही निकला कि जिससे बडे-छोटे का पता लगाया जा सके। आदिकाल से ही उम्र से ही छोटे-बडे की परख होती रही है।"

कहना न होगा, इस बात का किसी ने कोई जवाब नही दिया। जरूरत ही नही समझी गयी। लगातार बकबक और दोषारोपण करते रहने से मायालता अपना मान-सम्मान खत्म कर चुकी थी। उनकी अपनी जायी सतान भी कहती थी, "मा हम लोगो मे तुम्हारी तरह कभी न खत्म होने वाली जीवनी शक्ति नही है, बताओ ? तुम्हारी सारी बातो का जवाब देना हम लोगो की बुद्धि से बाहर है।'

अल्पभाषिणी अशोका की जितनी भी बाते होती वह प्राय अपने जेठ से ही होती थी।

मायालता इस बात से भी चिढती थी। लेकिन इससे घबराकर पीछे हट जाने वाली अशोका नही थी। बच्चो की पुस्तके, जूते, कपडे, फीस आदि जरूरत की सारी चीजो के लिये वह अपने जेठ से ही कहती थी। इसमे उसे कोई सकोच नही महसूस होता था।

मायालता को ये बाते जब मालूम होती तो वे दीवाल को सुना-सुनाकर कहती, "न जाने लोग कैसे इतने निलज्ज हो जाते हैं। मैं तो यही जानती थी--कि हाथ फलाने से सिर लज्जा से झुक जाता है। कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। लेकिन यहा तो सारी बाते ही उल्टी है। बडा आश्चर्यजनक मामला है।'

शायद उस वक्त अशोका दूसरी ओर मुँह किये हुए पान लगाती रहती, लेकिन वह मुडकर भी नही देखती थी। बल्कि अगर बहुत देर से मायालता को अपनी शक्ति खर्च करते हुए देखती तो अचानक मुखातिब होकर कह बैठती, "दीदी, जरा चार सुपारी काट दीजियेगा ? बाते करते-करते काम हो जायगा।"

मायालता वहाँ से बडबडाती हुई चली जाती।

या दूसरे ही दिन चकित होकर देखती जब वे अशोका को यह कहते पाती, 'बडे भैया, जरा चार-एक रुपया दे जाइयेगा, आज उनके स्कूल मे फैन की या ऐसा ही कुछ देने के लिए कहा है।"

अशोका ऐसे ही सहज रूप से माँग लेती थी।

इसमे वह जरा भी कुण्ठित नही होती थी।

"ऊँह ! कोई मूर्ख ही किसी लड़के की रूह पर किसी डिग्री की मोहर दग-कर उसे सुपात्र समझने का भ्रम पाल सकता है।"

"ऐसा होने पर भी चिन्ता का कोई कारण नहीं है। यह मोहर तुम सबके ऊपर ही अधिक लगी हुई है। मैंने तो इस बार एम० ए० में फेल होना ही तय कर लिया है।'

"तुम्हारी बात कौन करता है।"—कृष्णा मुँह बिचकाते हुए बोला, "तुम अपने को गिने लायक मानते क्या समझते हो ? तुम्हारे बड़े भाइयों के बारे में ही कह रही हूँ"

"स्वीकारता हूँ मेरे बड़े भैया लोग अत्यधिक सुपात्र हैं, लेकिन उनके लिए, 'लड़के फँसाने वालो' को आते हुए देखने से तुम्हारे सर में क्या दर्द हो रहा है, यही नहीं समझ पा रहा हूँ।'

"इसे कैसे समझोगे ? जो आँखें होते हुए भी अंधे हो। नीता दीदी के बारे में शायद कभी सोचा भी नहीं होगा ?"

अचानक इन्द्रनील खिलखिलाकर हँस पड़ा, "अरे बालिका, तुम अभी बिल्कुल नादान हो। इन हाथ की पहुँच में फूलों की ओर नाता की नजर नहीं है। उसने बहुत पहले ही एक बहुत ऊँची डाली को झुकाकर अपनी मुट्ठियाँ भर ली हैं।"

"मतलब ?"

"मतलब बहुत सरल है। हर सप्ताह विलायती मोहर लगी हुई एक चिट्ठी उसके नाम से आती है।'

"क्या कहते हो। सचमुच ?"

"रुपये में एक सौ पाँच पैसे सही।"

"इसके मतलब उनके भावी पतिदेव किसी लम्बी दुम को साधने वहाँ गये हैं।"

कृष्णा अपनी वेणी हिलाते हुए बोली।

"ऐसा ही लगता है।" इन्द्रनील ने कहा।

"तुमने पूछा नहीं ?"

"नहीं, दूसरों के प्राइवेट मामलों में झाँकने की बुरी इच्छा मुझे नहीं होती।"

"लेकिन मुझे तो है। मैं आज ही इस बारे में सब कुछ मालूम करके रहूँगी।"

इन्द्रनील परेशान होता हुआ बोला, "खबरदार ! यह सब बिल्कुल मत पूछना। उसका मन होगा तो खुद ही बतायेगी।"

कृष्णा भौंहें सिकोड़कर बोली, तुम्हारा इस तरह से ना-ना कर उठना, तुम क्या सोचते हो मुझे बिल्कुल अच्छा लगा ?"

"मेरी सारी बाते तुम्ह अच्छी लगने के पैमाने पर खरी उतरे ही, यह कोई जरूरी नही है ।"

"है ।" कृष्णा विजयगर्व से मुस्कराते हुए बोली ।

"यह तुम्हारी गलत धारणा है ।' इन्द्रनील ने कहा, "अगर समुद्र पार के सागरमय की चिट्ठियो पर नजर न पडी होती तो भला मैं तुम्हारी ओर ताकता भी ?

"क्यो नहीं ? मतलब नीता ही तुम्हारी मनोनीता हुई होती ।

"बि-ल-कु-ल । क्या लडकी है वह ।"

"उम्र म तो तुमसे बडी ही होगी ।"

"उससे क्या ?"

"उससे क्या ? अपने से बडी उम्र की लडकी से शादी करने की तुम्हे इच्छा होती है ?"

' मेरी इच्छा का सवाल तो अब छोड ही दो ।"

"ओह, बडी तकलीफ हो रही है न ? लेकिन दूल्हे से अधिक उम्र की दुल्हन क्या तुम्ह अच्छी लगती है ?"

"न लगने की इसम क्या बात है, इसे नही समझ पा रहा हूँ । लडकियाँ अपनी उम्र से बडे दूल्हे को काफी पसद करती हैं ।"

"बहुत स्वाभाविक है । हिरन की नाक मे नकेल डालने मे क्या सुख धरा है ? मजा तो तब जब नकेल शेर की नाक म डाली जाए ।"

"हूँऽऽ, देखता हूँ, तुम लाग इस मोहल्ले की लडकिया नकेल डालने की ही बात अच्छी तरह समझती हो ।"

' इसके मतलब ? कृष्णा आँखें नचाकर बोली, "अब फिर कहाँ नाक और रस्सी का सयोग होते हुए देखा ?"

"क्या तुम्हारी प्यारी सहेली विनता और मेरा अभागा पडोसी अमल सेन तो आँखो के सामने ही हैं ।"

"ऐसा कहो ।" कृष्णा निश्चितता की मुद्रा बनाते हुए बोली, "उन दोनो का सम्ब ध तो बहुत दिनो से चल ही रहा है ।"

"उनके घर वाले एतराज नही करते ?"

"एतराज क्यो करेंगे ? बुरा क्या है, नकचिपटी लडकी की बिना पैसे म शादी हो जाएगी । लडकी के प्रेमी के पास अपना मकान है, गाडी है ।"

"वह तो है । लेकिन नाक पिचकी होने की बात तुम सिर्फ जलन के मारे कह रही हो ।"

"इची-फीता लेकर नाप सकते हो । लेकिन इस बात को छोडो । सागर पार वाली खबर देकर तो तुमने मुझे मुश्किल म डाल दिया है । मैं तो इस सवाल

थो दूसरे ढङ्ग से हल कर रही थी। लेकिन अब यह कहना ही पड़ेगा कि नीता जी मतलब, बड़ी खिलवाड़ी लड़की हैं।"

"छि कृष्णा। बेकार की बातें मत करो।"

"अरे बाप रे!" कृष्णा मानभरे स्वर में बोली, "उनके लिए बड़ा दर्द देखती हूँ। लेकिन क्या मैं सच बात कहने में डर जाऊँगी? नीता ही के प्रेम में पड़कर तुम्हारे मँझले भैया घायल नहीं हो गये हैं, क्या तुम यही कहना चाहते हो।"

"मँझले भैया उस टाइप के लोगों में नहीं हैं।"

"इस्स, पुरुषों की भी भला कोई टाइप होती है? लाइनो मशीन की टाइप की तरह गलाकर उन्हें कभी भी बिल्कुल नये ही टाइप में ढाला जा सकता है।"

"इतने मर्दों को कब परख लिया?"

"पैदा होने के बाद से ही।

"हूँ। वही देख रहा हूँ। लेकिन अगर कोई चाँद देखते हुए चन्द्राहत होता हो तो भला चाँद का क्या दोष?"

"देखो बार-बार तुम्हारा नाता ही की ओर बात को घसीट ले जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"मुझे भी लग रहा है कि हम लोगों का इस तरह से सड़क के किनारे खड़े होकर प्रेमालाप करना गुजरने वालों की निगाहों में बहुत अच्छा नहीं लग रहा है।"

"प्रेमालाप? मतलब?"

"क्या यह बात नहीं है?" इन्द्रनील बड़े भोलेपन से बोला, "मेरी तो यही धारणा हो रही थी—"

"धारणा को बदलो।"

"अच्छा।"

कृष्णा अचानक मजा लेते हुए बोली, "ओफ! मुझे भी क्या कम धारणा बदलनी पड़ी है?"

"किसके बारे में?"

"यही तुम्हारे बारे में। ओफ! पहले तुम किस तरह के थे। सड़क से जाते हुए देखती थी तो लगता था जैसे तुम रेगिस्तान में भाग रहे हो। अगल-बगल कहीं भी नजर नहीं रहती थी। बस सड़क पार करना ही लक्ष्य रहता था।"

"यह सच है। हम लोगों का तौर-तरीका ऐसा ही था। हम लोग यही जानते थे कि चलते हुए इधर-उधर ताकना असभ्यता है, असभ्यता की निशानी है।"

"यह धारणा बदली कैसे ?"

"सच बात सुनकर तुम नाराज हो जाओगी।"

"मतलब बात नाराज होने लायक है।"

"मतलब तुम जैसी गुस्सैला के लिए नाराज होने लायक। अन्यथा यह सच है कि नीता ने आकर हम लोगो के मकान की बद खिडकियाँ खोल दी हैं।"

कृष्णा मुँह फेरकर बोली, "भविष्य के लिए एक प्लान बना रही थी, लगता है उसे तोडना पडेगा।"

"ऐसा क्या ?"

"जीवन भर नीता के गुणगान मैं नही सुन पाऊँगी।"

"आह ! मैं ऐसे ही नही कहता कि लडकियाँ बडी ईर्ष्यालु होती हैं।"

"लडकियाँ मतलब हम जैसी अधम लडकियाँ। नीता दीदी जैसे महिमामयी नारियाँ, जरूर नही।"

"मेरा भी एक प्लान था, लगता है उसे भी अब तोडना ही पडेगा।"

"क्यो ?"

"इसलिए कि जीवन भर मैं भी व्यग्य-वचन सह नही पाऊँगा।"

कृष्णा खिलखिलाकर हँसते हुए बोली, "अच्छा कब से हम लोगो ने ऐसा प्लान किया है, बताना तो।"

"क्या मालूम ?"

"कितने दिन हुए ही है हम लोगो की पहचान हुए।"

"फिलहाल तो लग रहा है जन्म-जन्मातर से ही। लेकिन यह कितना स्थायी होगा, बता नही सकता।"

"नही जानते ?"

"नही। कैसे जान सकता हूँ। लगता है नदी की तरह—"

"सब का नही। लडकिया क्या नही। अपनी माँ को ही ले लो। देख रही हूँ—"

इन्द्रनील अचानक गम्भीर होकर बात करते हुए बोला, "क्या देख रही हो ?"

"यही कि जीवन मे पहला प्रेम अमर होता है।"

"कितने दिन मेरे यहा आते-जाते हुए है ? इसी बीच तुमने इतना कुछ देख-समझ लिया ?"

"आँख रहे तो एक क्षण मे भी सब देखा जा सकता है। इसके अलावा लडकियाँ लडकियो को समझने मे गलती नही करती। लेकिन क्या तुम नाराज हो गये ?"

इन्द्रनील थोडा उदासीन होकर बोला, "नही नाराज होने की भला क्या

बात है। सच को नकारने से क्या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है? लेकिन यह उत्साहजनक प्रसंग नही है।"

"अच्छा रहने दो। कुछ ख्याल मत करना।"

"अच्छा चलूँ।'

राहगीरो की असुविधा को कम करके दोनो अपनी-अपनी राह पर चले गये।

कृष्णा जाते हुए सोचती रही कि इस प्रसग को न उठाना ही बेहतर होता, कुछ भी हो वे उसकी माँ होती हैं।

और इन्द्रनील भी मन ही मन सोचता रहा कि इस तरह से गभीर हो जाना मेरे लिए लज्जाजनक ही हुआ। कुछ भी हो हम लोग आधुनिक हैं। फिर भी न जाने क्या मन को उन्मुक्त करना सभव नही होता।

माँ! लेकिन नीता के भी तो पिताजी हैं।

नीता कितनी सहज है।

नीता कितनी उन्मुक्त है। कितने स्वच्छन्द मन की है।

अपने पिता के सम्बन्ध मे उसकी कितनी ममता है, कितना उदार स्नेह है।

इन्द्रनील अपनी लाख कोशिशो के बावजूद अपने मन को क्यो नही सहज बना पा रहा है। वह जीवन भर के लिए वचित उन दोनो को अपनी उदार स्नेह दृष्टि से क्यो नही बाँध पाता है। नही यह उसके बूते का नही है।

प्रेम की भावना तो नही होती बल्कि विराग ही उत्पन्न होता है।

उधर तो आँखे फेर लेने का मन होता है, अपने को उस चिन्ता से हटा लेने का मन होता है।

बाह्य आचरण मे आधुनिक होना जितना सरल है, मन से आधुनिक होना उतना ही कठिन है।

अच्छा अगर इन्द्रनील के पिता जीवित होते तब भी इन्द्रनील इस तरह की बात क्या घटित होते हुए देखता? इन्द्रनील ने अच्छी तरह से सोच विचार कर देखा, ऐसा सभव हो सकता था, खूब सभव हो सकता था। उस दुबलता को पिता की दुबलता मान लिया जा सकता था।

दुनिया मे सभी की दुबलता को क्षमा किया जा सकता है, अगर सभव नही है तो शायद माँ की।

नीता भी अपने माँ के सम्बन्ध मे इसे स्वीकार नही कर पाती।

ऐसा इन्द्रनील का दृढ विश्वास था।

लेकिन क्या?

इस बात का इन्द्रनील के पास कोई जवाब नही था।

शायद लोग माँ को सर्वाधिक श्रद्धास्पद मानते हैं इसलिए।

शायद माँ को दुनिया की साधारणताओ से ऊपर देखना चाहते हैं इसलिए।

लेकिन दुनिया म तो बगाल के अलावा भी और बहुत से देश है।

हिंदू समाज के अलावा और भी तो समाज हैं, जहा विभिन्न प्रकार की प्रथाएँ और पद्धतिया होंगी। क्या वहा मा के प्रति श्रद्धा नही होती ?

मन ही मन यह सवाल करके इसका भी वह कोई जवाब नही दे पाया।

नीता भी अपने मन से यही प्रश्न करती है, लेकिन उत्तर नही सूझता।

सोचती हूँ क्या ताई के प्रस्ताव को स्वीकार करना उचित नही हुआ ?

मायालता ने कहा था, "ठीक है, अगर पुलिस मे देने लायक पागल यह नही है और लोगो के साथ के बिना हो-हल्ला के रहने स अगर असुविधा होती है ता हम लोगो के घर के नजदीक ही कोई एक छोटा-सा फ्लट किराए पर लेकर तुम दोनो बाप-बेटी वहा पर रहो, हम लोग देखभाल करते रहेंगे। लेकिन यह तो ठीक नही है।'

कोई युक्तिसगत जवाब न सूझ पाने से नीता बोली थी, "आजकल फ्लैट भी तो बडो मुश्किल से मिलते है।"

मायालता ने मुँह टेढा करके कहा था, "जहा तुम्हारी सुचिन्ता बुआ के घर के अलावा तो कलकत्ते मे कही और मकान ही नही हैं।"

विवश होकर नीता को कहना पडा था, "ठीक है, डाक्टर से पूछ कर देखूगी। अगर वे कहगे तो—"

उस समय तो यह बात यू ही कही गई थी। लेकिन इस समय नीता काफी गहराई से सोच रही थी। सुचिन्ता की कष्टकर अवस्था को देखकर इसे और शिद्दत से महसूस कर रही थी।

हाँ, अपने दोना हाथो से सुशोभन न सुचिन्ता को जकड लिया था। जिस समय मायालता ने वीरदप से कहा था, "मैं अकेली लौटन वाली नही हूँ, तुम्हे अपने साथ लेकर ही जाऊँगी।"

सुशोभन मारे भय के आर्तनाद करत हुए मायालता, सुमाहन, नीता और निरजन सभी के सामने ही सुचिन्ता का आश्रय प्राप्त करने की चेष्टा करने लगे थे।

सुचिन्ता अविचलित खडी थी।

वे जैसे जड हो गयी थी।

अचानक पत्थर बन जाने पर आदमी जैसा हो जाता है वैसे ही और पत्थर की वह मूर्ति जैसी अविचलित रहती है, ठीक वैसे ही वह भी हो गयी थी।

लेकिन उनके अन्तर मे व्यथा का जो समुद्र हिलोरे ले रहा था क्या सुचिन्ता की आँखो म वह नजर नही आ रहा था ?

ऐसा न होता तो पुतलियों की नीली-शिराएँ वैसी चटक लाल क्या हो गयी होती ? ऐसा क्या लगता था कि जैसे वे शिराएँ अभी-अभी फट जाएगी ?

सुचिता के अन्तर्मन से एक दु सह यन्त्रणा की चीख बाहर निकलने के लिए अकुला रही थी सिर्फ यही नही उनके सर्वाङ्ग और हर रामकूप से यह चीख बाहर निकलने को तत्पर थी। इस चीख को सुचिन्ता न अपनी दोना आँखा म कैद करके पकड रखा था।

नीता ने व आँखे देखी थी।

वह इसीलिए इतना सोच-विचार कर रही थी।

सोच रही थी कि और सुविधा माँगने से सुचिन्ता की क्या हालत होगी? नीता को और सुविधा माँगने का अधिकार भी क्या था?

सुचिन्ता तो समाज के बधना से अनुशासित थी। उसी समाज के, जिस समाज म मायालता रहती थी।

सुचिन्ता अपनी आँखा के सामने एक किताब खोलकर बैठी हुई थी। नीता ने नजदीक आकर कहा, "बुआ जी, किताब क्या बहुत रोचक है।"

सुचिता चौंककर बोली, "कहाँ, नही तो? क्या?"

"कुछ बातें करनी थी।"

"कहो।"

"कह रही थी, आप पर तो हम लोगो ने काफी अत्याचार किया, अब मैं साचती हूँ कि पिता जी को लेकर कही अन्यत्र चले जाना ही शायद अच्छा होगा।"

सुचिता आँखे ऊपर उठाकर बोली, "यह अच्छा लगने वाली बात किस प" के लिए कह रही हो?"

"शायद सभी के लिए ठीक होगा।"

सुचिता ने आहिस्त से झल्लाते हुए कहा, "हा, तुम्हारे पिता को अपने नजदीक ले जाकर तुम्हारी ताई की गृहस्थी का जरूर कुछ भला हो सकता है।"

नीता को सुचिता से ठीक इस तरह के उत्तर की आशा नही थी। दुविधा म पडी हुई बोली, "इसे मे बखूबी समझती हूँ। लेकिन आपके कष्ट को भी मैं अपनी आखा से देख रही हूँ। ताई जी आदि को जब पता चल गया है तो वे लोग अकसर ही यहाँ आकर इस तरह का तमाशा खडा करेंगे।"

सुचिता ने स्थिर स्वर म कहा, "तमाशा खडा करने दा। इससे तो उनकी वास्तविकता का पता चल जाएगा।"

नीता कातर होकर बोली, 'बुआ, ऐसा आप नाराज होकर कह रही हैं।"

"नाराजगी" सुचिता मुस्करायी! मुस्कराकर ही बोली, नही मैं बिल्कुल नाराज-वाराज नही हुई हूँ।'

"यह आपका बडप्पन है। इसके अलावा सोचा था लेकिन इसे रहने दीजिए। मै समझ पा रही हूँ कि इतनी लोक लज्जा का भार वहन करना काई आसान

काम नही है। पिताजी को लेकर मैं फिर से दिल्ली ही लौट जाऊँगी। अब आठ महीने बाद ही तो सागर विदेश से लौट ही आएगा, तब मुझे भरोसा भी हो जाएगा और सहारा भी।'

सागरमय के बारे म सुशोभन ने सारी बातें सुचिन्ता को बता दी थी। एक बार सुचिता द्वारा नीता के विवाह की चर्चा करने पर वे उत्तेजनापूण आनद म कह पडे थे, "तुम क्या सोचती हो सुचिन्ता, मैने नीता के लिए वर का इतजाम नही किया है। बिल्कुल राजपुत्र की तरह है देखने मे। मैं सच कहता हूँ कि नही नीता, तूने भी तो देखा है। राजपुत्र की तरह नही लगता क्या ?"

"क्या कहते हो पिताजो। बिल्कुल काले-कलूटे हैं।"

नीता हँसते हुए बोली थी।

कहने के साथ ही साथ सुशोभन बिगड गये थे।

"काला होने से क्या ? क्या काले लोग इसान नही होत ? सुचिन्ता के इन गोरे बेटा से वह बहुत अच्छा है।'

"ओह पिताजी, अब इस बीच सुचिन्ता बुआ के लडका की बात कहा से उठा दी तुमने ?" नीता ने विरक्ति प्रकट की। सुशोभन हतप्रभ होकर बोले थे। "ऐसा नही कहना चाहिए था क्या ?"

"नही।"

"अच्छा रहने दा। लेकिन नीता जरा उस लडके का नाम तो बताना ?'

"जरा सोचो पिताजी।"

नीता ने मजा लेने के लिए कहा।

सुशोभन ने सिर हिलाया, "याद नही पड रहा है।"

इसके बाद सुचिन्ता ने नीता से पूछकर सारी बातें मालूम कर ली थी। यह सब सुनकर सुचिता का चेहरा मारे प्रसन्नता के खिल उठा था, जिसे देखकर नीता भी चकित हो गयी थी।

वह चेहरा देखकर नीता चकित हो गयी थी।

इस बात से सुचिन्ता के इतना खुश होने का कारण वह समझ नही पायी।

सुशोभन की पुत्री के निश्चित भविष्य का समाचार सुनकर क्या सुचिन्ता के दिल से भी बहुत बडा बोझ नही उतर गया था ?

लेकिन क्या यही वास्तविकता थी ?

सुचिन्ता खुद इस बात को नही समझ पायी कि नीता के लिए वर का चुनाव हो जाने का समाचार पाकर उनके दिल पर रखा बोझ कैसे उतर गया था ? सुचिन्ता के लडके एक मायाविनी के प्रभाव स मुक्त हो जाएँगे, क्या यही सोच कर, सुचिता के दिल पर रखा बोझ उतर गया ? वे भी क्या 'मित्र' और 'मुखर्जी' के द्वन्द्व म उलझी हुई थी ?

या जीवन भर के सचित अमृत से भरे जीवन-पात्र का कही ससार के गुढ के उपयोग के लिए तो कही खच न करना पडेगा, कही यही सोचकर तो परेशान नही हो रही थी। सोच रही थी, सोचकर परेशान हो रही थी कि क्या अलौकिक को लौकिक बधना के बीच बांध लेने जैसी स्थूलता और कुछ हो सकती है? सुशोभन सुचिन्ता के समधी बनें, भला इससे अधिक कुत्सित और क्या हो सकता है।

इसीलिए नीता क बारे म इस समाचार ने उह प्रफुल्लित कर दिया था।

ऐसा जान क्या घटित हुआ था जिसे न सुचिन्ता जानती थी और न नीता ही, सिफ इसी दिन से सुचिता पहले का तुलना म कही अधिक शात और स्थिर हा गयो थी, अधिक सहज भी हुइ थी। सागरमय के बारे मे वे अधिक कुतूहली भी हुइ थी।

सागरमय के बारे मे सुचिन्ता जानती थी इसीलिए नीता कह सकी थी, 'सागर के लौटने से भरासा पाऊँगी, सहायता पाऊँगी।"

लेकिन आज सुचिन्ता ने इस भरोसे वाली बात को तरजीह नही दी।

नीता का स्तम्भित करते हुए बोली, "आठ महीने बाद जो होगा, उसे साच कर तो इस समय का काम छोडा नही जा सकता। इस समय सुशोभन भला किसके भरोसे दिल्ली जाएँगे।"

नीता आश्चर्यचकित होकर बोली, 'लेकिन पिताजी तो पहले भी दिल्ली मे ही थे। उस समय वे किसके भरोसे पर थे? उस समय तो हालत और अधिक खराब थी।'

सुचिन्ता दृढ स्वर मे बाली थी, "वैसी हालत को पुन लौटाने से लाभ क्या? फिर यहाँ चिकित्सा भी चल रही है। अभी तो नये इजेक्शन की शुरुआत ही नही हुई है। मैं इस समय सुशोभन को ले जाने की राय नहीं दे सकती।"

क्या सुचिता अपने अधिकारो को विस्तृत कर रही थी?

क्या सुचि ता लज्जा के आघात-प्रत्याघातो से कही अधिक दृढ हो गयी थी?

या लगातार एक पागल के सम्पक म रहने के कारण वे भी पागल हो गयी थी?

नीता को सुचि ता का यह रूप देखकर डर लगता था। इसीलिए अचानक अवरुद्ध कठ से कह पडी, "अब अगर मुझे यहा अच्छा न लगे?"

"ता क्या दुनिया का हर काम किसी के अच्छा लगने न लगने पर ही निभर करता है?' सुचि ता न भावशून्य लहजे म कहा।

नीता थोडा मान रहकर बोली, "लेकिन मैं तो आपका मुँह देखकर ही—'

नीता अपनी बात पूरी भी नही कर पायी थी कि सुचिन्ता तीखे गल से बोल उठी, "मुह देखकर? मरा मुँह देखने आयी हो? लेकिन मुझे इसकी जरूरत

नही है नीता। मैंने अपना रास्ता चुन लिया है। सुशोभन को ठीक करके ही रहूँगी, यह मेरी प्रतिज्ञा है।''

"मैं भी तो यही प्रतिज्ञा करके यहाँ आयी थी बुआ—" नीता बुझे हुए स्वर में बोली।"

"बीच-बीच में लगता भी है कि पिताजी स्वस्थ हो रहे है, लेकिन फिर तो सब गडबडा जा रहा है। और इसके लिए आपको जैसा मूल्य चुकाना पड रहा है—"

सुचिन्ता शान्त गले से बोली, "मूल्य कुछ तो चुकाना ही होगा। दुनिया मे कौन-सी वस्तु यूँ ही मिलती है? लेकिन हर समय हम लोग किस चीज का कितना मूल्य है इसका ठीक अदाजा नही लगा पाते। एक सकटपूर्ण परीक्षा मे फँसने पर ही वास्तविक मूल्य की पहचान हो पाती है। ऐसी ही एक परीक्षा की घडी तब आयी थी। तुमसे झूठ नही कहूँगी नीता, एक बार तो आँखो के सामने अँधेरा ही छा गया था, जिन हाथो ने व्याकुल होकर मुझे पकडकर आश्रय ढूँढना चाहा था उसे एक बार तो धक्का मारकर हटा देने के लिए उद्यत हो गयी थी, लेकिन यह भावना क्षणाश के लिए ही आयी थी। फिर तो झूठी लज्जा का पर्दा गिर गया और हकीकत को पहचानने मे कोई दिक्कत नही हुई।''

नीता रुकते-अँटकते हुए बोली, "अगर उस समय आपने धक्का मारकर हटा दिया होता तो उस धक्के मे इतने दिनो की सारी मेहनत धूल मे मिल गयी होती। पिताजी के पुन स्वस्थ हो पाने की सभावना हमेशा के लिए खत्म हो जाती। इतने बडे मानसिक आघात से—"

"हाँ, ठीक यही बात मेरे दिमाग मे भी आया थी। उस घडी मे अपनी जान बचाने के लिए नाव से किसी दूसरे आदमी को पानी मे फेंक देने जैसी ही निष्ठुर स्वार्थपरता मुझे लगी थी। असल मे हम लोग जिस चीज का जो भी नाम दे, उसके मूल मे यही स्वार्थपरता रहती है। इसके अलावा और कुछ नही। मैं क्यो समाज विरोधी काम नही कर पाती हूँ, क्या समाज से बहुत लगाव है इसलिए? ऐसा नही है नीता, अपने से बहुत लगाव है इसलिए नही कर पाती। इसे करने से मेरी निन्दा होगी, उसे करने से मेरी निन्दा होगी, यही सोचकर तो हम लोग खामोश रहते हैं।''

कुछ देर खामोशी के बाद नीता एक गहरी साँस लेकर बोली, "फिर भी क्या लगता है, जानती हैं बुआ, कि दिल्ली लौट जाने मे ही भला होगा। अब अगर श्यामापुकुर से वे लोग हमेशा ही यहाँ आते रहे तो पिताजी की क्या हालत होगी, यह नही समझ पा रही हूँ। सुबह उनके उस तरह भयभीत हो जाने के बाद से अब वैसा ही रहे है।''

"नींद लगना तो अच्छी बात है। डाक्टर तो नींद की दवाई देते हैं।''

"यह अलग बात है। यह दिमागी थकावट है।"

"मैं सुविमल दा आदि को समझा दूँगी।"

नीता गहरी साँस लेकर बोली, "अच्छे भले थे आप लोग, बीच म मैं धूमकेतु की तरह आकर उपस्थित हो गयी और सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया।"

"खुद को निमित्त मानकर कष्ट पाने की जरूरत नही है नीता। जो होना है होकर रहता है। भाग्य म जो लिखा होता है, वही होता है।"

"नीद से उठने पर पिताजी क्या खाएँगे ?'

इन दिनो सुशोभन की सेवा-शुश्रूषा का अधिकाश भाग सुचिन्ता के हाथ म चला गया था। यह कैसे हुआ नही मालूम। धीरे-धीरे थोडा थोडा करके ही यह हुआ था। इसीलिए नीता को अपने पिता के भोजन की बात सुचिन्ता से पूछने की जरूरत हुई थी।

"फल-वल तो इन दिनो खा नही रहे हैं, इसलिए आज एक देशी भोजन उनके लिए बना रखा है।"

"देशी भोजन।"

"हाँ सरू चाकला और चसी की खीर।"

"अरे, आप यह सब बनाना जानती है ?" नीता खुश होकर बोली, "पहले पिताजी जब स्वस्थ थे तब इन सब व्यजनो की चर्चा करते थे। कहते थे कि उनकी बुआ यह सब बहुत अच्छा बनाती थी। एक बार पूजा की छुट्टियो म श्यामापुकुर वाले मकान मे हम लोग आये थे। पिताजी ने कहा था, "भाभी एक बार बुआ की तरह यह सब व्यजन बनाओ तो जरा।" ताई हँसकर टाल गयी थी। बोली थी, 'वह सब खाना खेत खलिहान म घूमने वाले गँवई गाव के लडके को अच्छा लगता रहा होगा, अब केक-पुडिंग खाने वाले साहब को भला वह सब अच्छा लगेगा ?'

"पिताजी के लडकपन से तो आप परिचित ही है। इस पर भी वे बोले, "तुम बनाओ तो। देखो चखता है कि नही। जिस सामान की जरूरत हो बता दो, मँगवा देता हूँ।' ताई बोली, "देश छोडने के बाद वह सब बनना एक दम बद हो गया है। अब भूल गयी हूँ।' मेरा मन हुआ कि मैं इसे सीखकर पिताजी को खिला दू। लेकिन बताइए मैं सीखती किससे ? आज आपने खुद ही—बुआ मैं आपसे बनाना सीख लूगी।"

"पहले देखो तुम्हारे पिता को अच्छा लगता भी है या नही।" सुचिन्ता थोडा मुस्कराकर बोली, "असल मे बहुत सारी चीजो की हम लोग कल्पना करके उसे मन ही मन सँजोए रहते हैं। एक बार पसद आने पर उसे स्मृति के पात्र मे रखकर परितृप्ति के रस मे उसे डुबो रखते है मन ही मन सोचते हैं कि अब ऐसा नही होगा। वह जब तक उस पात्र मे बद रहता है तब तक बिल्कुल वैसा

कितनी बाते कर रही थी ?"

"नही, उन लोगा की बडी बहू तो तुम्हे डाँट रही थी।"

"क्या कहते हो सुशोभन। उन लोगा की बडी बहू का तो बातें करने का ढङ्ग भी वैसा ही है। तुम्हे याद नही है ? सभी से चिल्ला-चिल्लाकर बातें करती है। मोहन ने मुझे डाटा थोडे ही था ?"

"मोहन। माहन ! मेरा वह भाई ?" सुशाभन चीख उठे, "वह अच्छा लडका है।"

"वही तो कह रही हूँ। वे सभी अच्छे लोग हैं।"

"नही, बडी बहू अच्छी नही है। वह मुझे पकडकर ले जाएगी।"

अब सुचिन्ता गभीर हा गयी। गभार मगर शातचित्त से बोली, "सुशोभन तुम मेरी बाता पर भरोसा क्या नही कर रहे हो ? मैं कह रही हूँ, कोई तुम्हे मेरे पास से पकड कर नही ले जा सकता।"

"नही ले जा सकता ? कोई नही ले जा सकेगा ?

"नही, कोई नही ले सकेगा—मेरी बातो पर भरोसा करो।" उन्होने आहिस्ते से सुशोभन की पीठ पर अपना हाथ रखकर और अधिक गभीर होकर कहा, "सिर्फ अगर तुम खुद—"

लेकिन वह मीठी बात उस उन्माद ग्रस्त पागल के कानो मे नही गयी।

वे अचानक प्रसन्न होकर बोल उठे, "नीता सुन लिया न ?'

"सुना पिताजी।'

"आह, बेकार ही मैं इतना डर गया था। मुझे क्या पता था कि यह सब मजाक था, सिफ मजाक था। जानता हूँ कि सुचिन्ता के आगे किसी की चाल नही गल सकती। सुचिन्ता, मुझे भूख लगी है। बहुत देर से भूख लगी है, लेकिन तुम लोगो को पुकार नही पा रहा था। चादर मे अपने को छिपाकर बैठा हुआ था।"

आतक की छाया हटते ही सुशोभन बहुत अधिक उत्फुल्ल हो उठे और भाजन का आयोजन देखते ही वे और अधिक खुश हो गये। चीख कर मेज पीट-कर एकदम शोर मचाने लगे, "नीता जल्दी आओ, आकर देखो। और सुचिन्ता के लडके कहा है ? वे लोग कहाँ गये ? उन लोगो ने कभी यह सब देखा है ?'

यह हमारे दिनाजपुर की चीज है। इसे सिफ मैं और सुचिन्ता ही जानते है। अच्छा सुचिन्ता, इसे और कौन-कौन जानता था ?"

'क्यो, तुम्हारी बुआ, ताई और दादी, सभी तो।"

"ठीक, ठीक। यू आर राइट।" अत्यधिक उत्साह मे भरकर सुशोभन खडे हो गये, "सुचिन्ता सब जानती है। इसीलिए तो मैं सुचिन्ता को इतना प्यार करता हूँ।"

"और मुझे प्यार नही करते पिताजी, नीता मजा लेने के उद्देश्य से बोली।

सुशोभन बोले, "यह क्या। तू भी कैसी बाते करती है नीता ? असल मे तू समझ नही पा रही है, तू तो—मतलब—"

"अच्छा पिताजी, मैं समझ गयी हूँ। अब तुम खाओ। अभी तो कह रहे थे कि बडी भूख लगी है।"

"भूख तो लगी है। देखा कितना खाता हूँ।" बैठकर एक सरू चाकली अपने मुह मे ठूसकर गोल-गोल मुह से अस्पष्ट आवाज मे बोले, "एकजैक्टली। अविकल। हूबहू एकदम वैसा ही। सुचिन्ता देखो, मैं अब बिल्कुल भूल नही रहा हूँ—सब बाते याद रख पा रहा हूँ। वह दादी, जो मुझे—जो मुझे वह किस नाम से—"

"भना 'भानू' कहकर दादी तुम्हे पुकारती थी।"

"ओह, तुमने क्यो बता दिया सुचिन्ता ? मैं तो कहता ही। तुम चुप रहो, देखो मैं सब ठीक-ठीक कहता हूँ कि नही। दादी, दादी जो मुझे—जो मुझे 'भानू' कहकर बुलाती थी, वे छत पर खडी होकर पुकारती थी, "भानू ! भानू ! मोहन का साथ लेकर एक बार चला आ, पीठा-पूली तैयार किया है।' सुनते ही उछलते-कूदते उनके पास पहुँच जाता, मोहन को बुलाने की भी फुरसत नही रहती थी। लेकिन नीता मोहन कौन है ?"

"वह छोटे काका हैं ? तुम्हारे छोटे भाई हैं न ?"

"हा हा। सुचिन्ता के जैसे ढेरो लडके है, वैसे ही मेरे दिनाजपुर के मकान मे ढेरो लडके रहते थे। लेकिन मैं अभी कह क्या रहा था ?"

सुचिन्ता थोडा जोर देते हुए बोली, 'सोचो जरा, किसकी बाते हो रही थी ? अभी तो कह रहे थे कि सब याद आ रहा है।"

"याद तो आ रहा है लेकिन नीता जाने कहा पर—"

नीता हँस पडी। बोली, "वही जहा पर तुम अपने छोटे भाई को छोडकर पेटू की तरह दौडकर पीठा-पूली खाने के लिए जा रहे थे।"

सुशोभन ठहाका मारकर हँस पडे, हँसी ऐसी कि रुकने का नाम ही नही ले रही थी। बहुत देर बाद हँसी के मारे लाल हो गये चेहरे से बोले, "हा मैं जरा पेटू रहा हूँ। पेट भरकर भात नही खाता था, बस बुआ से कहना लड्डू दो, चिवडा-पट्टी दो, मतलब हर समय दो-दो की रट लगाए रहना। और बुआ कहती, "बाप रे ! अच्छा यह लडका हुआ है।"

"अच्छा ! अच्छा क्या है पिताजी ?"

नीता हसकर लोट-पोट हो गयी।

"ओफ, अच्छा उनका तकिया कलाम था। अच्छा। गाँव-जवार की औरते

ऐसा ही कहती थी। घर मे मैं इतना अधिक खाता था न, फिर दादी, जो मुझे भानू कहती थी, उनके पास जाकर मैं कितनी शैतानी करता था।"

नीता बोली, 'वाह, पिताजी तुम तो बहुत बढिया तरीके से कहानी सुना रहे हो।"

"क्यो नही सुनाऊगा। देखो अब मैं कुछ भी नही भूल रहा हूँ।"

"अब और किसी दिन भूलना मत, मैं कह देती हू।"

"अच्छा, अच्छा। लेकिन सुचिन्ता तुम बात क्या नही कर रही हो ?"

'बात क्या करूँगी, सुन रही हूँ।"

"लेकिन उस समय तो तुम बाते ही करती रहती थी। जब मैं वही दादी के पास जाता था। दादी कहती, "अब तू थोडा खामोश रह चिरे, अपनी बातो को थोडा लगाम दे।" ऐसा कहती थी न सुचिन्ता ? कहती थी न, "लडकी तो नही, जैसे ग्रामोफोन हो। हरदम चाभी भरी रहती है।"

"बिल्कुल कहती थी। आश्चर्य है, तुमसे तो बिल्कुल गलती नही हो रही है।"

"देखो सुचिन्ता, जाने कब तुमने मेरी पीठ पर हाथ रखा था।" सुशोभन परेशान होकर बोले।

सुचिन्ता लज्जा के कारण अपना चेहरा दूसरी ओर करके बोली, "अभी तो पीठा खाने की बाते हो रही थी।"

"वह तो हो ही रही थी। लेकिन जब तुमने मेरी पीठ पर हाथ रखा तब ऐसा लगा जैसे जाने कहाँ का कोई बद दरवाजा खुल गया, कोई एक उलझी हुई गाठ सुलझ गयी। बताओ तो जरा ऐसा क्यो हुआ ?"

सुचिन्ता शात-सहज बोला, "ऐसा ही होता है। ऐसा मेरी इच्छाशक्ति के जोर से हुआ।'

"तब इतने दिना तक तुमने उस शक्ति का इस्तेमाल क्यो नही किया सुचिन्ता ? क्यो अब तक तुमने मेरी पीठ पर अपना हाथ नही रखा था ? तुम तो जानती थी कि दादी की पुकार पर मैं सिर्फ लड्डू और पीठा खाने के लिए ही नही दौडकर जाता था। जाता था सिर्फ तुम्हारे लिए। तुम्हे बिना देखे मैं रह नही पाता था। बेचैन हो जाता था। यह सभी कुछ तो तुम जानती हो।"

सुचिन्ता बोला, "गलती हो गयी थी सुशोभन। भूल से यह गलती हो गयी थी। अब याद रखूगी। अब वही करूँगी जो उचित समझूगी।"

उन्होने सुशोभन की पीठ पर आहिस्ते से अपना हाथ रख दिया।

यौवन का उन्माद जिस स्पर्श मे न हो वह क्या व्यर्थ होता है ?

क्या मा के हाथो का स्पर्श अन्तर्मन के गहनतम स्तरो तक नही पहुँचता ? प्रिया म भी तो वही माँ की ममता निहित रहती है।

तीन-चार दिनों के बाद सुविमल आये। साथ मे अशोका भी थी।

वे लोग चकित रह गये। उस दिन सुशोभन बहुत ही सहज रहे। उनकी इस सहजता को देखकर सिर्फ वे ही लोग चकित नही हुए, वरन् सुचिन्ता और नीता भी चकित रह गयी।

सुविमल के सामने आकर बैठते ही सुशोभन थोडी देर तक देखकर बोले, "वे लोग जिन्हे बडे भैया कहते हैं, वही हैं न ?"

सुविमल हँसकर बोले, "सिर्फ वे क्यो, तू भी तो कहता है।"

"हाँ-हा, मैं भी तो कहता हूँ। ठीक है न नीता ?"

"हाँ पिताजी।"

"बडे भैया तुम दुबले हो गये हो।"

सुशोभन ने कहा।

सुविमल बोले, "दुबला तो हूँगा ही। बूढा नही हो रहा हूँ ?"

"बूढे क्यो होगे ?" सुशोभन असतुष्ट हुए, "बूढा होने की क्या जरूरत है। सुचिन्ता भी यही कहती रहती है। एक दिन मैंने उसे खूब डाँटा, तब से वह डर गयी है। अब नही कहती।"

आज सुचिन्ता को दूर-दूर रहने की जरूरत नही महसूस हुई, न वे अप्रतिभ ही हुइ। सहज भाव से बोली, "अब तुम बडे भैया को भी कसके डाट लगाओ। वे ठीक हो जाएँगे।"

"नही-नही बडे भैया को नही डाँटते। ऐसा उचित नही होगा।" सुशोभन ने सिर हिलाया। इसके बाद अचानक बोले, "वह इतना खामोश क्या बैठी है ?"

यह बात अशोका को देखकर कही गयी थी।

नीता हँसते हुए बोली, "वह कौन ?"

सुशोभन सभी को चकित करते हुए बोले, "तूने क्या नीता मुझे पागल समझ रखा है ? वह कौन है, क्या मैं नही जानता ? वह तो छोटी बहू है। बहुत अच्छी लडकी है, बहुत अच्छी लडकी। समझी सुचिन्ता, उनके घर के बडी बहू जैसी नहीं।"

यह सुनकर अशोका, सुचिन्ता, नीता सभी का चेहरा आरक्त हो गया। सिर्फ सुविमल निर्विकार रहे। बल्कि उनके चेहरे पर मुस्कराने का आभास ही मिला।

सुचिन्ता भी मुस्कराकर बोली, "बातचीत मे एकदम बेपरवाह हैं।"

सुविमल बोले, "वह तो होगा ही। हाँ, परिवार म एक-आध वेपरवाह पागल-वागल रहने से लगता है परिवार के सभी व्यक्तियो का असली चेहरा सामने आ जाता है। ठीक है न मु सुचिन्ता। अच्छा, तुम्हे बुलाने का एक और नाम था न ?"

सुचिन्ता मुस्करायी, "सिर्फ 'चिंता' कहकर सभी बुलाते थे 'सु' को छोड देते थे, शायद लडकी के स्वभाव-गुण के कारण ही। आपकी बुआजी तो 'दुश्चिंता' कहकर बुलाती थी।"

"ठीक-ठीक।" सुविमल हँसने लगे "वैसा ही कुछ मुझे याद आ रहा था।'

"बुआजी कहती थी, लडकी तो नही एक डाकू है। उसे देखते ही मुझे दुश्चिता होने लगती है।'

नीता हँसते हुए बोली, "सचमुच बुआजी, आप ऐसी ही थी ?"

"सारे गवाह तुम्हारे सामने ही है, पूछकर देख लो।"

"लेकिन अब आपको देखकर यकीन नही आता।"

"तो उस 'मैं' के साथ आज के इस 'मैं' की क्या तुलना हो सकती है। वह सुचिन्ता तो जाने कब मर गयी। जन्म जन्मातरवाद तुम लोग नही मानते, लेकिन मैं मानती हूँ। जाने कितनी जन्म-मृत्युओ को पार करते हुए यहाँ तक आकर पहुँची हूँ। आगे और भी जाने कितने जन्म और मरण मुझे झेलने हैं। सिर्फ लोग अपनी सुविधा के लिए कहते है, "यह तो वही सुचिन्ता है।"

सुशोभन असुविधा और खीझ भरे स्वर म कह उठे, "मरने की बात क्या सुचिन्ता, मरने की बात क्या ? यही तुम्हारी सबसे बडी कमी है। देखो, ये लोग तो इस तरह की बातें नही कर रहे है।"

"वे लोग अच्छे हैं।' सुचिन्ता हँस पडी।

"और क्या तुम बुरी हो ? जरा देखू तो कौन ऐसा कहता है ?"

"तुम्ही तो कह रहे हो।"

"आश्चर्य है। बुरा मैं क्यो कहूँगा ? यह छोटी बहू तो यहाँ है, वह झूठ नही बोलेगी, वह कह दे कि मैंने तुम्हे बुरा कहा है।"

अचानक अशोका बोल पडी, "मैं झूठ नही कह सकती ऐसा आपसे किसने कह दिया मँझले भैया ?"

"और कौन कहेगा ?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "मैं तुम्हें नही जानता क्या ?"

"लेकिन लेकिन यह मँझले भैया कौन है छोटी बहू ?"

"वाह, आप ही तो हैं मँझले भैया।"

"मैं मझला भैया हूँ। मैं मँझला भैया हूँ। अब तुम बिल्कुल गलत कह रही हो छोटी बहू। मँझला भैया तो उनके घर मे, वही बडी बहू के घर मे रहता है।"

सुविमल थोडे कौतूहल से बोल उठे, "उस मकान का मँझला भैया क्या करता है ?"

"क्या करता है ? क्या करता है ?" अचानक सुशोभन जैसे हताश होकर मुर्झा गये। बोले, "नीता जरा बताना तो क्या करता है ?"

नीता ने गभीरता से कहा, "मैं क्या कहूँगी। बता देन से तुम गुस्सा हो जाते हो। तुम खुद ही सोचो न।"

"तब मैं यहा से जाता हूँ। जरा अकेले म जाकर सोचूगा।"

"उहूँ। जाने नही पाओगे। हम लोग क्या कही जाकर सोचते है ? यही पर सोचो।"

सुविमल बडी धीमी आवाज म बाले, "रहने दो, अनावश्यक रूप से दिमाग पर जोर देने से—"

नीता भी वैसे ही स्वर म बोली, "नही ताऊजी। डाक्टर ने कोशिश करवाने के लिए कहा है। कहा था जैसे पानी पर सिवार की पत पड जाती है ठीक उसी तरह ऐसी बीमारी मे ब्रेन के ऊपर विस्मरण की एक पत पड जाती है, उसको जोर देकर हटान की जरूरत है। फिर ज्यादा दिनो तक आलस्य मे पडे रहन से मन म एक पलायन वृत्ति जन्म ले लेती है, तब व्यक्ति मेहनत से दूर भागेगा, इसलिए मेहनत के लिए इस तरह से जोर दने का जरूरत है। हालांकि ऐसा उन्होंने हाल ही मे कहा है।"

"पहले से कुछ इम्प्रूव हुआ है ?"

"बहुत। आकाश-पाताल का अन्तर आया है। यहाँ तक कि उस दिन से भी, जिस दिन ताई जी आयी थी—"

सुशोभन खीझकर बोले, "तुम लोग इतने गुपचुप क्या बाते कर रहे हो, कहो तो ? मुझे डर नही लगता ?"

"डर ? डर क्या लगेगा ?"

"वाह, डरूँगा नही। तुम लोग गुपचुप बाते करोग—"

सुचिता बोली, "तो तुम उन लोगा की बात नही मान रहे हो। उनके मँझले भैया क्या करते हैं यह नहीं बता रहे हो—"

"क्यो नही कहूँगा ? कह तो रहा हूँ—उस शरारती लडके को साथ लेकर मँझले भैया गाडी पर चढकर घूमने जाते थे, और और—"

अशोका अपनी बाता पर बल देते हुए बोली, "और उनको चाकलेट खरीद देते थे, उनके लिए खिलौने खरीदते थे, उन्हे लेकर सकस देखने जाते थे।"

"बिल्कुल ठीक। यू आर राइट। छोटी बहू, तुम बताती जाओ, मँझले भैया के बारे मे सुनना मुझे बडा अच्छा लग रहा है।"

"लेकिन आप ही तो उस समय मझले भैया होते थे।"

"मैं मँझले भैया होता था ?"

"बिल्कुल होते थे । गाडी से उतरकर कहते थे, छोटी बहू तुम्हारे लडके तो बिल्कुल डाकू हैं, एकदम डाकू ।"

अचानक सुशोभन मेज पर मुक्के का प्रहार करके उच्छ्वसित कठ से चीख पडे, "मैं जाऊँगा ।'

"जाओगे ? कहाँ जाओगे पिताजी ?"

"और कहाँ ? उनके मकान मे ? उन लडको से मैं कितना प्यार करता हू । नीता मेरे धुले हुए कपडे कहाँ हैं ? जरा जल्दी देना । छोटी-बहू आओ चलें—" अचानक सुशोभन अशोका के काफी निकट सरककर फुसफुसाते हुए बोले, 'चलो भाग चलें । नही तो ये लोग जाने नही देंगे ।'

"अच्छा चल जाना—' सुचिन्ता बोली, "पहले इन्हे चाय पीने दो, थोडी देर बैठकर बातचीत करने दो ।"

"नही नही "अचानक सुशोभन चीख पडे, "सुचिन्ता तुम्हारा इरादा अच्छा नही है । तुम मुझे उनके साथ जाने नही देना चाहती हो । लेकिन मैं परवाह नही करता, मैं जरूर जाऊँगा । नीता टैक्सी बुलवाओ, जल्दी गाडी मँगवाने को कहो, देर करने से परेशानी बढेगी ।" कहते हुए उन्होने फिर मेज पर मुक्के का जोरदार प्रहार किया ।

सुविमल तुरत बोले, "लेकिन शोभन उस मकान मे तो बडी बहू रहती है । वह तुम्हे पकड ले जाएगी ।"

"नही-नही ।" सुशोभन और जोर से चीख उठे, "यह तो मजाक था । तुम मजाक भी नही समझते ?"

अचानक चप्पलो मे अपने पैर डालकर सुशोभन सीढी से उतरने लगे ।

"पिताजी इस समय तुम्हारे दवा का वक्त हो गया है, "नीता नजदीक जाकर कधे पर हाथ रखते हुए बोली "आज रहने दो । कल हम सभी लोग चलेंगे ।"

"नही नही, मैं तुम लोगो की कोई भी बात नही सुनना चाहता-" सुशोभन ने अपनी लडकी का हाथ परे कर दिया, "कहा, किसी दिन तुम मुझे वहाँ ले गयी ? तुम नही जानती कि उन बच्चो को मैं कितना चाहता हूँ ।"

सुशोभन धम-धम करके उतरने लगे ।

"मुसीबत हो गयी ।" सुविमल बोले, "पहले तो देखकर ऐसा लगा था—'

नीता बोली, "कब किस बात से क्या हो जाए कहना मुश्किल है लेकिन पिताजी तो उतर कर नीचे चले गए, बुआजी अब क्या होगा ?'

सुचिन्ता उठ खडी हुई ।

कुछ एक सीढियाँ उतरकर वे दृढ स्वर मे बोली, "तुम यही रहोगे, कही नही जाओगे ।"

सुशोभन रुक गये।

बोले, "मैं यही रहूँगा ? और कही नहा जाऊँगा ?'

"हा, मैं भी यही चाहती हूँ।'

"अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो फिर करने को क्या है। नीता गाडी को वापस लौटा दो।" कहकर सुशोभन धम-धम करके ऊपर चले आये, फिर बैठते हुए बोले, "इतनी जल्दी तुमसे गाडी लाने के लिए किसने कहा था नीता ? देख रही हो कि सुचिता को बिल्कुल मर्जी नहीं है।"

मायालता लगभग रास्ते म ही खडी थी। सुविमल के लौटते ही बोली, "कहो छोटी देवरानी, तुम्हारी आस मिटी ?"

"बिल्कुल मिटी दीदी।"

अशोका बोली।

"वहा तो काफी समय लगा दिया, लगता है सुचिन्ता बाला ने खूब आव-भगत की होगी।"

"हा, कुछ किया तो था।"

"इसके बाद—"मुझे पकडने आए हैं" कहकर तुम्हारे मँझले भैया ने कोई नाटक नही खडा किया ?'

अपने दोनो जेठो को अशोका भैया कहती थी इसीलिए मौका पाते ही माया-लता इस शब्द के प्रति व्यग्य करने से नही चूकती थी।

"बडे भैया तो साथ ही थे। वहाँ क्या बातें हुइ आप उन्ही से पूछ लीजिए। मुझे तो अभी इन डाकुओ को जरा देखना है' कहकर अशोका मायालता के बगल से निकल गयी।

"देख लिया ?"

मायालता क्रोध और क्षोभ की अपनी मिली-जुली विशेष भगिमा म बोली।

"बिल्कुल देखा।"

सुविमल ने जँभाई ली।

"हर समय ऐसी ही उदासीनता बरतती है।"

"बात मनवाने का मन्त्र तुमने सीखा ही कहा बडी बहू ?"

"मन्त्र-तन्त्र, टोना-टोटका सीखने की मुझे जरूरत नही है। यह मन्त्र तुम लोगो की सुचिता ही सीखे, जिनकी टोटका करके पर-पुरुष को अपने आचल से बाँध रखने की प्रवृत्ति अभी बनी हुइ है।"

सुविमल सूखी हँसी हँसते हुए बोले, "तो पर-पुरुष की प्रवृत्ति भले ही न हो लेकिन घर म भी तो एक—"

"हाँ वैसा ही तो मर्द है। आँचल म बाँध रखने लायक।"

"कौन आदमी कैसा है, इसका हिसाब क्या इतना जल्दी लगता है बडी बहू ?

सभव है इसका सारे जीवन पता न चले। वैसे आँचल का सहारा मिलने पर क्या होता, यह कहना बडा मुश्किल है।"

"अब शुरू हुई वही पेचवाली बातें। हे भगवान् अब मैं क्या कहूँ। इससे तो एक अपढ़ मूर्ख देहाती के साथ ब्याह हुआ होता तो कम से कम मन की दो बातें करके तो सुख पाती।" मायालता खीझकर बोली, "वहाँ जाकर तो तीन घटे बिता आये। भाई को किस हाल म देखा, यही सुनूँ।"

'बहुत बढिया। देखकर, सच कहूँ, बडी ईर्ष्या हुई।"

"ईर्ष्या हुई ?"

"हुई तो।"

"पागल होने का मन हो रहा है ?"

मायालता की मुस्कराहट म कसैलापन था।

"बुरा क्या है ? ' सुविमल भी व्यग्यपूर्वक मुस्कराये।

"तो ऐसे पागल होने से काम नही चलेगा, प्रेम के कारण पागल बनो तभी तो सुख होगा।"

"तुमने ठीक ही कहा। मै बेकार ही तुम्हे मूर्ख समझता था।"

"क्या नही समझोगे ? अब बकार की बात छोडकर काम की बातें करो।"

"कहो।"

"मामला कुछ समझ म आया ? रुपया-पैसा सब सुचिन्ता के कब्जे म जाकर पडा है न—"

"अरे इस बात को तो पूछने का ध्यान ही नही आया। बडी भारी गलती हो गयी। '

"ठीक है, जितना हो सके मुझ पर व्यग्य कर लो। बाद म समझोगे। सुचिता का उतनी खातिर के पीछे जो बात है वह तुम लोग भले ही न समझो, मैं समझती हूँ। मँझले देवर जी की एक ही लडकी है, अगर उसको किसी तरह पटाकर घर की बहू बनाया जा सके तो मँझले देवर जी की सारी सम्पत्ति पर कब्जा जमाया जा सकता है। और तुम लोग मुह बाकर इसे देखते रहना कि तुम लोगा के घर की लडकी कायस्थ सास की चरण-सेवा कर रही है।"

"यही तुमने गलत कहा बडी बहू। आज के युग म सेवा कोई नही करती। न सास की, न सास के लडके की। यह सत्य अटल है।'

'खैर, चरण-सेवा नही करती तो ठीक है" मायालता नाराज हो गयी, "कायस्थ दामाद पाकर तुम लोगा का मुँह तो उज्ज्वल हो ही जायेगा।"

"मुह उज्ज्वल होने लायक घटना तो कभी-कभी ही घटती है।"

"अगर न हो तो इसके मतलब—। हाय मझली बहू के कितने गहने थे— मँझले देवर जी के पास रुपया की भी कमी नही है—देखती हूँ सभी कुछ खत्म

हो जायेगा, लेकिन इस तरह से कोई अपनी जात दे देगा, यही सोच रही हूँ। तो सुचिन्ता ने किसके साथ नीता का जोड बैठाया ? बडे, मँझले या छोटे मे से किसके साथ ? सुना है, लडकी तीनो ही के साथ रास रचा रही है।"

"ऐसी बात है ? इतनी खबर तुम्हे कहाँ से मिली ?"

"हूँ, बुद्धि रहने से माँगकर खाने की जरूरत नही पडती। घर की महरिन को मिठाई खाने के लिए एक रुपया देकर उससे खोद-खोदकर सारी बाते मालूम कर ली।"

"बहुत खूब। तुम वकील क्यो नही हुई, यही सोचता हूँ। लेकिन तुम्हे पूछने का इतना समय कहा मिला ?"

"यही जानना चाहते हो तो—" मायालता मुस्करायी, "भाग्यवान का बोझ भगवान ढोता है। मैं गुस्से मे वहा से निकल रही थी कि तभी महरिन को भी काम खत्म करके घर से बाहर निकलते हुए देखा। उसको इशारे से गाडी के नजदीक बुला लिया।"

सुविमल मन्द मन्द मुस्कराते हुए बोले, "अगर इतना ही मालूम कर लिया तो वह बडे, मँझले, छोटे मे से किसके साथ कैसी है इसका पता क्या नही लगा लिया ?"

"समय कहाँ था ? उधर तो तुम्हारे छोटे भाई जल्दी मचा रहे थे। जीवन म स्वाधीनता का सुख मुझे मिला ही कहाँ ?"

"यह भाग्य ही समझो कि नही मिला। लेकिन इसे रहने दो—एक समाचार देकर तुम्हारे मन की उथल-पुथल का समाधान कर दूँ। सुचिन्ता का टोटका काम नही आया। नीता की शादी तय हो गयी है और बहुत पहले से ही तय हो चुकी है।"

"नीता की शादी ठीक हो गयी है और बहुत पहले ही तय हो चुकी है ?" मायालता ने अजब मशीनी तरीके से इसे दोहराया।

"हाँ।"

"कितने दिन हुए ?"

"यह नही जानता। सुना, तय हो गयी है बस इतना ही। सिर्फ शोभन की बीमारी के कारण—"

"आखिर तुम क्या हो—पागल के घर की हवा खाकर क्या तुम भी पागल हो गये ? नीता की शादी तय हो गयी है और हम लोगो को मालूम ही नही।"

"हम लोगो को सूचना देने की जरूरत उन लोगो ने नही महसूस की होगी।"

"हूँ। लेकिन तय कहाँ हुआ ?"

"यह नही जानता।"

मायालता ने पूछा, "सब तय हो गया ?"

सुविमल ने कहा, "हाँ।"

लेकिन भाग्यविधाता यह सुनकर परोक्ष रूप से मुस्कराये थे, "अच्छा, यह बात है। सब तय हो गया है।"

हाय, भाग्यविधाता ने क्या कभी इस पर गौर किया है कि उनकी ऐसी मुस्कान प्राणियों पर कैसा कहर ढाती है। यह मुस्कान वज्र के रूप में, रुद्र के रूप में और आग के रूप में पहुँचती है। अकचकाया हुआ व्यक्ति मारे डर के स्तुति करता हुआ प्रकट में कहता है, "प्रभु तुम जो भी करते हो कल्याण के लिए करते हो।" लेकिन उसका मन अन्दर-ही अन्दर विद्रोह करता रहता है, कल्याणकारी रूप का मुखौटा उतारकर चीख पड़ना चाहता है, "गलत है, यह सब एकदम गलत है।"

वह आसमान को चीरकर पूछना चाहता है, "क्या, आखिर ऐसा क्यों ?"

दोनों हाथों से अपना दिल थामे हुए आज नीता भी उसी प्रश्न से आसमान को चीर डालना चाहती है—'क्यों, आखिर ऐसा क्या ?" मुझ पर भाग्य-विधाता की ऐसी निष्ठुरता क्या ? वह क्यों इतना हिंस्र, क्यों इतना कुटिल है ? मैंने उसका क्या बिगाड़ा है ?'

यही सवाल अनगिनत लोग करते आये हैं।

अनन्तकाल से एक यही सवाल पूछा जाता रहा है।

लेकिन इस सवाल का जवाब कोई नहीं पाता।

आसमान की तरफ हाथ बढ़ाकर भिक्षाप्रार्थी की तरह लोग सहारा माँगते हैं, अपने थोड़े से सवालों का जवाब माँगते हैं। उस आसमान से जो सिर्फ सीमा-हीन शून्य से बना है।

भाग्यविधाता के निष्ठुर दण्ड के रूप में उसे एक टेलीग्राम मिला।

दूर सागर पार से सागरमय का समाचार लेकर नीता के नाम यह टेली-ग्राम आया था। किसी छुट्टी के दिन सैर करते वक्त एक मोटर दुर्घटना में सागरमय गम्भीर रूप से घायल हो गया था। वह बचेगा कि नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। वह अभी तक बेहोश था, होश में आयेगा कि नहीं, इसे भी कहना मुश्किल था। नीता को यह समाचार एक कर्तव्य समझकर भेजा गया था। इस टेलीग्राम को भेजा था सागर के खास दोस्त शिशिर राय ने। वह सिर्फ नीता का पता ही जानता था। इसी पते पर वह सागर को ढेरों चिट्ठियाँ लिखते हुए भी देखता रहता था। सागरमय के घर का पता उसे मालूम नहीं था।

लेकिन सागरमय के घर में था ही कौन !

सागरमय त्रिपुरा का रहने वाला था। कलकत्ते में बोर्डिंग में रहकर वह पला बढ़ा था। यह भी इसलिए सम्भव हुआ था क्योंकि पिता कुछ रुपया छोड़

गये थे। दश के मकान म सौतले चाचा और सौतेली दादी रहती थी जिनका व्यवहार सागरमय के साथ कभी भी अच्छा नही रहा।

इसके बावजूद सागरमय अपने बूते पर बाहर निकल आया।

उसन डॉक्टरी की परीक्षा उत्तीण की, मनस्तत्त्व पर शोध किया और न केवल एक अच्छी नौकरी ही बल्कि एक मनलायक प्रेमिका भी उसने हासिल कर ली। नीता से उसकी भेट कलकत्ते म हुई थी। नीता की प्रेरणा और आकर्षण के वशीभूत होकर वह अपना भाग्य आजमाने दिल्ली चला गया था। वहाँ जाकर उसका भाग्योदय भी हुआ था।

इसके बाद जब सारी बातें तय हा गयी, यहाँ तक कि शादी की तारीख भी, तभी अचानक सुशोभन की दिमागी गडबडी शुरू हो गयी। सब कुछ गडबड हो गया। नीता की आँखा के सामने अँधेरा छा गया। निरन्तर देखभाल करते हुए जब सागरमय ने सुशोभन के रोग की जड को समझ लिया तब उसने नीता को सलाह दी कि सुशोभन को कुछ दिना के लिए ऐसी जगह ले जाकर रखना होगा जहाँ उनके मन को परितृप्ति मिल सके।

इस रोग के बारे म सागर ने काफी अध्ययन किया था। लेकिन इसके पहले एक और ऐसी घटना होनी थी जिसने नीता के जीवन म कुछ और कठिनाई पैदा कर दी। हालांकि यह तय पहले से ही था लेकिन तब सुशोभन बिल्कुल स्वस्थ थे। सागरमय को उच्चतर शोधकार्य के लिए विदेश जाने के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। पहले यही तय हुआ था कि विदश जान से पूर्व दोना विवाह कर लेंगे और सागरमय नीता का भी अपने साथ विदेश ले जाएगा। लेकिन सारा मामला उलट-पलट गया। सब गडबड हा जाने से उसे अकेले ही विदेश जाना पडा। वहाँ जाकर उसने खबर दी कि उसे लौटने म निर्धारित समय से कुछ समय अधिक लग जाएगा क्योकि ठीक सुशोभन जैसे मानसिक विकारग्रस्त रोगियो के बारे मे वह कुछ नवीनतम चिकित्सा सम्बन्धी जानकारिया प्राप्त करना चाहता है। सागरमय वहाँ से प्रेसक्रिप्शन और सलाह लगातार भेजता रहा, लेकिन सुशोभन के लिए जिस स्नेहनीड, परितृप्ति भरे आश्रय की उसने सलाह दी थी उसका पालन करना नीता के लिए शुरू शुरू मे बेहद कठिन हो गया था।

एक असभव, आसामाजिक और अस्वाभाविक काम करने के लिए बहुत बड साहस की जरूरत होती है। इसीलिए वह अपने पिता को दार्जिलिंग ले गयी, कि शायद वहाँ जाकर उन्हे आराम महसूस हो। लेकिन वहा पर सुशोभन के भयभीत होने की भावना कुछ अधिक ही बढ गयी। हर क्षण 'तू गिर जाएगी' कहकर उन्होने नीता को रोकना शुरू कर दिया। नजरो से पहाड को आझल करने के लिए वे हमेशा अपनी आँखे मूदे रहने लगे।

उधर सागरमय लगातार दबाव डाल रहा था। हर बार यही लिखता,

"जब वह भद्रमहिला विधवा हैं अर्थात् वह अपने घर की सर्वेसर्वा हैं तब तुम्हें इतना संकोच करने की जरूरत क्या है ? वहां जाकर देखो न।" लिखता था, "मुझे तो नहीं लगता कि ऐसा प्रबल आवेग सिर्फ एकतरफा प्रेम का होगा।"

सागरमय अपनी चिट्ठियों में और भी ढेर सारी बातें लिखता।

आखिरकार नीता ने भी तय कर लिया और फिर एक दिन सुबह के वक्त उनकी गाडी अनुपम कुटीर के दरवाजे पर जाकर खडी हो गयी थी।

लेकिन नीता के जीवन का रथ भी क्या इसी अनुपम कुटीर के अंतराल में रुक जाएगा ? नीता ने तो अब यह सोचना शुरू ही किया था कि उसके जीवन का अंधेरा अब छँटने लगा है, सुशोभन की अवस्था में क्रमिक सुधार नजर आने लगा था।

यह समाचार पाकर सागर उत्साहित हो गया था। उसने लिखा था, "उम्मीद है मैं जब तक लौटूंगा तब तक तुम्हारे पिताजी कन्यादान करने की व्यवस्था प्रारम्भ कर देंगे। तुम डाक्टर पालित की सलाह के अनुसार ही काम करना। मेंटल हास्पिटल में भर्ती न करने की सलाह देकर उन्होंने वास्तव में अत्यन्त विलक्षणता का परिचय दिया है। जो रोगी दूसरों के लिए खतरनाक नहीं हैं, उसे हास्पिटल में भर्ती करने की राय से यहां के भी कई डॉक्टर सहमत नहीं है।"

यह पत्र पढकर नीता सोचने लगी थी "दूसरों के लिए खतरनाक। मतलब ? मार-धाड करने वाला पागल ? लेकिन कोमल प्रकृति का व्यक्ति भी क्या दूसरों के लिए खतरनाक नहीं हो सकता है ?"

नीता ने उस दिन सोचा था, बहुत बार सोचा था, 'सुचिता बुआ का भारी नुक्सान होगा। यह नुकसान मैं कर रही हूं। उसने फिर सोचा, अब तो कुछ ही दिनों की बात है। इसके बाद तो सब ठीक ही हो जाएगा।"

लेकिन ठीक हुआ कहां। इस बार फिर जाने कहाँ से सब कुछ गडबड हो गया।

यही समाचार नीलांजन के हाथों में था।

टेलीग्राम।

नीता थोडा सा कांप गयी।

फिर भी उसे लेने के लिए हाथ बढाते समय उसने सोचा, डरने की क्या बात है। शायद सागर को मानसिक चिकित्सा के बारे में किसी नयी पद्धति की या किसी नयी दवा की जानकारी मिली हो और उसने झटपट टेलिग्राम कर दिया हो। सोचा, संभव है सागर का ही वहां से अचानक तुरन्त लौटने का कार्यक्रम बन गया हो। शायद समय से पूर्व ही उसका काम समाप्त हो गया हो, ऐसी बातें

सोचने म उसे कुछ ही क्षण लगे होंगे तभी तक जब तक कि उसने लिफाफा फाड कर कागज को अपनी नजरा के सामने कर न लिया होगा।

इसके बाद नीता के माथे पर पसीना चुहचुहा गया। अचानक उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह अग्रेजी अक्षर-ज्ञान ही भूल गयी हो। इसलिए टेलीग्राम की भाषा उसकी समझ से परे हो गयी थी। अनपढ की तरह एक अबाध असहाय भाव से उसकी दोनो आखें धुधली हुई जा रही थी।

नीता के नाम से विदेशी मोहर लगी हुई चिट्ठियाँ अक्सर आती थी लेकिन नीलाजन की नजरो मे यह कभी नही पडी थी। नीता न पहले से ही लेटर बक्स की चाभी अपने पास रख ली थी। और अपनी चिट्ठियाँ? उसे भी खुद अपने सिवाय कभी उसन किसी को पोस्ट नही करने दिया। इसीलिए अचानक विदेश से आये हुए टेलिग्राम को देखकर नीलाजन की भौह सिकुड गयी थी। उसने सोचा, 'आखिर यह क्या बला है।'

इसके बाद उसने सोचा शायद किसी विदेशी दवा कम्पनी का टेलीग्राम होगा। शायद सुशाभन के लिए डाक्टर ने ऐसी किसी दवा का प्रेसक्रिप्शन दिया होगा, जो यहा न मिलती होगी। इसीलिए नीता ने दवा के बारे मे तुरत पूछ-ताछ की होगी।

नीता के हाथ मे टेलीग्राम थमाकर वह खामोशी से चला आना चाहता था, लेकिन वह ऐसा नही कर सका। बगालिया का मन टेलीग्राम पाकर आज भी धक्क से हो जाता है। इसी से निलाजन लौटना चाहकर भी नीता के चेहरे की ओर देखता हुआ खडा रह गया। उस चेहरे की ओर जिस पर अपरोक्ष रूप से नीलाजन की टकटकी हमेशा ही लगी रहती थी। नीता को कभी शह देने वाली नजरो से देखता तो कभी उसमे हताशा भरी होती और कभी-कभी तो नजरे एकदम भूखी हो जाती थी।

बीच-बीच मे वे नजरें जैसे विद्रोही हो जाना चाहती थी, असहिष्णु होकर कोई दुस्साहस से भरा काम भी करना चाहती। लेकिन अनुपम कुटीर के अनुशासन का भी कोई महत्त्व था, इसलिए नीलाजन की वैसी मानसिकता और दृष्टि से नीता अपरिचित ही रही।

आज भी वह अपरिचित ही रही। नीता न उसकी ओर देखकर भी नही देखा कि एक दृष्टि व्यग्र होकर उसके चेहरे के हर भाव-परिवतन को लक्ष्य कर-करके चकित हो रही है।

हा, नीलाजन चकित ही हो रहा था खासकर उस समय जब टेलीग्राम पढते वक्त नीता के माथे पर पसीना चुहचुहा आया था और उसकी उँगलियाँ कांपने लगी थी।

नीलाजन चकित था। उसने व्यग्र होकर कुछ पूछना भी चाहा, लेकिन वह खामोश रहा।

लेकिन तब तक नीता ने अपनी मान-मर्यादा की परवाह किए बिना ही कहा, "जरा देखिये तो यहा क्या लिखा है, ठीक से समझ नही पा रही हूँ।"

लेकिन समझ न पाने जैसी कोई बात नही थी।

वह टलीग्राम की भाषा बिल्कुल साफ और सरल थी। अक्षर तक साफ-साफ टाइप किए हुए थे।

फिर भी नीता समझ नही पा रही थी।

क्या वह समझ नही पा रही थी।

इसका साफ मतलब था कि उसे यकीन नही हो रहा था। आखिर वह कैसे यकीन करती ? हालाकि नीता काफी तकलीफ उठा रही थी लेकिन अभी उसकी उम्र ही कितनी थी। उसे यह भी नही मालूम था कि प्यास के आठो से लगा हुआ पानी का बतन अचानक छीनकर धूल मे गिरा देना भाग्यविधाता का सर्वाधिक प्रिय खेल है।

नीलाजन टेलीग्राम की ओर एक नजर डालकर सूखे गले से बोला, "सागर कौन है ?'

"है एक साहब।' नीता व्यग्र होकर कह पडा, 'उसके बारे मे क्या लिखा है, जरा वही बताइये।'

नीलाजन तीखी नजरो से नीता की ओर देखते हुए बोला, "आपने जो पढ़ा है, वही लिखा है। मोटर एक्सीडेंट में बुरी तरह घायल होकर—"

"यहाँ पर क्या लिखा है— नीता के गले स एक करुण आर्तनाद फूट पडा, "क्या उसे कभी-होश नही आयेगा ?'

नीलाजन गभीर होकर बोला, "कभी नही लौटेगा, ऐसा तो नही लिखा है। बस सदेह व्यक्त किया गया है। लेकिन सागर कौन है ? और शिशिर राय कौन है ? क्या आपकी सहेली और उसके पति हैं ?

"कैसी पागलो जैसी बाते कर रहे हैं।' नीता उससे साथ से झटपट टेली-ग्राम खीचकर बोली, "सागर मेरा मित्र है। मेरी उसके साथ सगाई हो चुकी है।" कहा जाता है साप के सामने विष-पत्थर रखने से साप एकदम बुत की तरह स्थिर हो जाता है। लेकिन बाते भी क्या विष-पत्थर से कम असरदार होती हैं ? क्या आदमी को भी वह बुत नही बना देती ?

जरूर बना सकता है। बात वैसी हो तो यह बिल्कुल सभव है। फिलहाल नीता की इस बात ने तो नीलाजन को बिल्कुल जड बना दिया था।

नीलाजन बडी मुश्किल से सिर्फ इतना ही कह सका, 'एन्गेज्ड ?

"हाँ-हाँ। लेकिन साफ-साफ क्यो नही बता रहे हैं ?"

वैसी शात और शिष्ट लडकी भी आज ऐसी व्याकुल हो गयी थी। भाग्य की हिंस्रता के कारण वह खुद भी हिंस्र हो उठी थी।

"अब और साफ-साफ कहने के लिए क्या है ?' नीलाजन बडे ही ठढे स्वर म बोला, "जो कुछ लिखा हुआ है उससे अधिक कहने के लिए क्या है। मोटर एक्सीडेट मे वे घायल हुए है, उनके दोस्त शिशिर राय का आपके अलावा और किसी का पता नही मालूम था, इसीलिए उ होने आपके पते पर यह जानकारी दी है। घायल की स्थिति बडी नाजुक है—"

"उसने क्या मुझे आने के लिए लिखा है ?"

यह बात नीता न अत्यत ही व्याकुलता से कही और उसने फिर से टेलीग्राम पर अपनी नजरे गडा दी। सुशोभन की लडकी के खून मे क्या सुशोभन जैसी हडबडाहट समा गयी थी ? सुशोभन के पागलपन का भी कुछ असर आ गया था क्या ? कम से कम नीलाजन को तो यही लगा। उसन चकित होकर कहा, "आने के लिए लिखा है। आने के लिए। कहा जाने के लिए ?"

"क्या जहाँ पर वह है ?'

"जहाँ पर ! मतलब विलायत मे ?"

' इसमे इतना चौकने की क्या बात है ? लोग क्या वहाँ नही जाते ? जरा चलिए मेरे साथ इस टेलीग्राम को लेकर पासपोट आफिस चले, फिर एयर इडिया आफिस म—"

"दिमाग तो नही खराब हो गया है ? जरा ठढे दिमाग से सोचिए कि जो आप करना चाहती हैं, कहाँ तक तर्क-सगत है।"

नीता वही पर बैठ गयी। बोली, ' तर्क-सगत नही है ? मेरा प्रस्ताव तक सगत नही है ? उधर वह मर जाए और मैं उसे देख भी न पाऊँ, क्या यही युक्ति-सगत है ?"

"अब इस बारे मे मैं क्या कह सकता हूँ।"

"आप मुझे इन जगहो मे ले चलेंगे कि नही यही बताइय ?"

अचानक नीलाजन की आँखें किसी साप की आँखो की तरह चमक उठी, वैसी ही स्थिर दृष्टि और गले से उसने कहा, "लेकिन मुझे ऐसा करने की जरूरत क्या है ? इससे मुझे क्या लाभ होगा ?"

' लाभ ? आप इस समय अपने लाभ-हानि के बारे म सोच रहे हैं ?"

"बिल्कुल। लाभ-हानि के बारे मे सोचने के लिए इससे पहले तो ऐसा भय-कर मौका नही आया था। सारे समय मन ही मन अपने लाभ की ही गणना करता रहा हूँ, अब इस समय अचानक मुझे 'लाभ' जैसी कोई चीज न दिखायी दे और सिर्फ नुकसान ही नुकसान—"

"आप कहना क्या चाहते हैं, इसे समझने की क्षमता अभी मुझमे नही है। आप न जायें, मैं अकेली ही जा रही हूँ।" कहकर कापते हुए तेज कदमो से नीता बाहर चली गयी। नीलाजन उसके साथ ही लगा रहा, चलते-चलते बोला, "अपने पिता की तरह बेकार का पागलपन मत कीजिए, बल्कि एक ट्रककॉल करके—"

"आपके परामर्श के लिए धयवाद।"

कहकर सुचिन्ता के पास आकर नीता खडी हो गयी।

लेकिन अकेले नीलाजन ने ही नही, सभी ने यही कहा। सुचिन्ता, निरुपम, इद्रनील—इन सभी ने।

"जाओगी? यह क्या कह रही हो? पागल हो गयी हो क्या?"

अगर पागल की लडकी पागल हो तो इसमे आश्चय की क्या बात है। ऐसा भी संभव है कि अचानक भाग्य की निष्ठुरता और लोगो के लाभ-नुकसान की गणना करते रहने की प्रतिक्रियास्वरूप ही नीता भी पागल हो गयी हो।

"मैं हर हालत मे जाऊँगी।'

नीता बोली।

"जाओगी ही?" सुशोभन भी चकित होकर बोले, "कहा जाओगी?"

"सागर के पास।'

"सागर! सागर के पास?' सुशोभन न हताश होकर कहा, "यह सागर कौन है?"

"बाबूजी, तुम तो जानते हो कि सागर कौन है। तुम उसे कितना प्यार करते थे। उससे कितनी बाते करत थे। बाते और बहस करते-करते दिन चढ़ आता था, तब तुम कहते थे, "सागर यही भोजन करके जाना। अब तुम इतनी चीजे याद रख पा रहे हो और सागर को ही भूल रहे हो? सोचो, जरा ध्यान से सोचो।

सुचिन्ता नजदीक आकर बोली, "मैं बताती हूँ सुशोभन। सागर वही है जिसके साथ—"

सुशोभन ने हाथ के इशारे से उन्हे खामोश कर दिया बोले, "रुको सुचिन्ता अब मुझे याद पड रहा है। वही जो लडका नीता के साथ-साथ बाजार जाता था। वहाँ उसने सूटकेस खरीदा, और भी चीजें खरीदी, वही लडका सागर है।"

"हाँ पिताजी। वह बहुत अस्वस्थ है—"

सुशोभन ने विह्वल होकर कहा, "लेकिन वह तो जाने कहाँ चला गया था न नीता? वह तो अब लौटकर नही आयेगा।"

"आयेगा पिताजी। मैं उसे अपने साथ लेकर आऊँगी, इसीलिए तो जाने के लिए कह रही हूँ।"

सुशोभन उसी तरह बोले,"लेकिन नीता मैं तो उतनी दूर नहीं जा पाऊँगा।"

"तुम । तुम नही जाओगे । तुम जाओगे भी कैसे ? तुम यही रहोगे । यही, सुचिन्ता बुआ के पास ।"

'सुचिन्ता के पास । ठीक-ठीक, सुचिन्ता तो है ही । लेकिन नीता, सुचिन्ता अकेले कैसे सम्हालेगी ? '

सुचिन्ता बोली, "सम्हाल लूगी सुशोभन । अकेले ही सभाल लूगी । लेकिन नीता—"

' अब और नही बुआ । मैंने बिल्कुल पक्का इरादा कर लिया है ।"

थोडा खामोश रहकर सुचिन्ता बोली, "हालांकि तुम्हारे जाने का ऐसा इरादा मुझे एक विचित्र किस्म का पागलपन ही लग रहा है । झूठ नही कहूँगी, कुछ अतिरिक्त ही जिद लग रही है, लेकिन इससे भी इन्कार नही करती कि तुम लोग इस युग को लडकियाँ हर क्षण असभव को सभव बना दे रही हो । और तुम लोगा की इस तेज गति के कारण ही पुराने रथ भी कीचड-दलदल मे फँसे अपने पहियो को बाहर निकालन की कोशिश करने लगे हैं ।"

"बुआ, सिफ इसी युग म ही क्यो, अतीत मे भी सावित्री ने तो यमलोक तक धावा किया था, यह तो आप ही लोगो न कहा है ।"

"सावित्री ।"

सुचिन्ता बोली, "लेकिन नीता, समाज ने सावित्री को सत्यवान के लिए दौडने का अधिकार दिया था ।"

नीता दृढ स्वर मे बोली, "हर बात म क्या समाज का मुँह जोहने से काम चलता है बुआ, कुछ अधिकार सीधे भगवान के पास स खुद भी हासिल करने पडते हैं ।"

"अपने अधिकार भगवान के पास से हासिल करने पडते हैं । ' सुचिन्ता ने इतने दिनो बाद यह बात सुनी ।

लेकिन भले ही इसे उन्होने पहले नही सुना था, लेकिन इसे समझने से सुचिता को रोका किसने था ? इस बात को खुद सुचिन्ता ने पहले क्या नही महसूस किया था ?

यह बात समझ मे क्यो नही आयी थी कि एक असहाय व्यक्ति को एक दूसरे सरल व्यक्ति से बाध देने जैसे हास्यास्पद नाटक के लिए इतना मूल्य चुकाना, मन बुद्धि, आत्मा, चैतन्य सभी को ठोक-पीटकर नियन्त्रित करने की जी-जान से कोशिश करना कही अधिक हस्यास्पद था ।

सुचिन्ता का सारा जीवन एक अपराध बोध की ग्लानि से बोझिल होकर बीतता रहा । उस बोझिल आत्मा की ओर देख-देखकर सुचिन्ता का मन हाहाकार कर उठा ।

वे अचानक ही नीता के प्रति ईर्ष्यालु हो उठी ।

उसा ईर्ष्या के वशीभूत होकर सोचने लगी, पिता के पास काफी पैसे रहने पर कोई भी इन्द्र, चन्द्र, वरुण, वायु आदि सभी लोगों म जा सकता है।

बैंक म अगर हजारों रुपये मौजूद न होते, तब कहाँ से इतना साहस आता ? किस जोर से असम्भव सभव होता ?"

इसके बाद अचानक उन्ह खुद पर ताज्जुब हुआ कि वे नीता से ईर्ष्या कर रही थी।

उसी नीता से जो सुशोभन की बेटी थी।

सुचिन्ता न अपनी आँखो से दुनिया का बहुत कम देखा था, इसलिए वे चकित हो रही थी। इस दुनिया की उन्ह जानकारी होती तो वे पातीं कि ईर्ष्या आश्चर्यजनक रूप से अपन घर के अत पुर से ही जन्म लेती है। अगर वह सुशो भन की लडकी न होकर सुचिन्ता की बेटी होती तो भी क्या वे इस समय ईर्ष्या से बच सकती थी ?"

नीता उडकर अपने प्रेमी की रोगशैया के बगल मे जाकर खडी हो जाये, और सुचिन्ता का उससे ईर्ष्या न हो, क्या यह सभव था ?

हाँ नीता असम्भव को सभव बनाने वाली ही लडकी थी।

लेकिन इसके लिए काफी खच भी करना पडता है। तीन दिना तक तो वह सिफ बाहर भाग-दौड करती रही कभी नीलाजन के साथ तो कभी-निरुपम के साथ और लगातार पैसा पानी की तरह बहाती रही।

ईर्ष्या की बात न होने पर भी यह बात सही थी। रुपये न रहने पर सिफ प्रचड जिद से क्या कोई काम बन सकता था ? रुपये रहने चाहिए। रुपये किसी से मागे हुए नही, न भीख के रुपये, धन अपने अधिकार का हो।

आर्थिक मुक्ति न होने से हार्दिक मुक्ति की बात व्यर्थ है।

नीता यात्रा की तैयारी मे पागलो की तरह जुटी हुई थी और नीलाजन चतुराई से पता मालूम करके रोगी की हालत के बारे म पता लगाने के लिए ट्रककाल पर ट्रककाल करने लगा। यह मालूम करने के लिए कि वह जो यहाँ से उडकर वहाँ घायल को देखने के लिए जाना चाहती है, क्या वह वहाँ जाकर उसे जीवित देख पाएगी ?

लेकिन नीलाजन की छटपटाहट का क्या कारण था ?

वह क्या मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि उसे यह समाचार मिले कि, 'यहाँ देखने को कोई जरूरत नही। सारी जरूरत मिट गयी है।"

या वह नीता के कष्ट से दुखी होकर ढेर सारे रुपये खच करके और काफी इतजार करने के बाद वहा के हाल-चाल की जानकारी ले रहा था। लेकिन उसा नीता को तो कुछ भी नही बताया।

भाइयो मे आपस मे न मन का मेल था और न कोई विरोध ही। असल मे अन्तर्मन जैसी किसी चीज से उन्हे कोई मतलब ही नही था। एक मकान म एक साथ रहने के बावजूद सुचिन्ता के बेटा मे आपस म पडोसिया से अपेक्षाकृत कम निकटता थी।

सारा जीवन अपने मन पर अकुश लगाते-लगाते ही सुचिन्ता की सारी शक्ति खर्च हो गयी, अपने परिवार को वे नही बाँध पायी। जिस एकात्मबोध से भाई-भाई आपस मे झगडते हैं, तक करते हैं, नियन्त्रण कायम कराते है, वह बोध ही इन तीनो भाइयो मे पनप नही पाया।

इन्द्रनील अपने महिला मित्र के साथ मस्ती म इधर-उधर घूमता फिरता है, रास्ते मे जाते हुए निरुपम की नजर पडती तो वह सिर झुकाकर दूसरी तरफ के फुटपाथ पर चढ जाता, नीलाजन की नजर पडती तो वह भृकुटिया मे बल डाल कर रूखी नज़रा से देखता हुआ आगे बढ जाता। कभी किसी ने घर म आकर अपने छोटे भाई से यह नही पूछा कि, "तुम्हारे साथ वाली लडकी कौन थी?" न कभी किसी ने यह कहकर तिरस्कृत ही किया कि "उस तरह स क्या घूमते रहते हो?"

जरूरत पडने पर वे तीनो आपस मे नाप-जोखकर विशुद्ध बँगला मे बातें करते। फिर भी आज अपने बडे भाई को बुलाकर नीलाजन ने बात की। 'दादा कहने की आदत न होने के कारण उसने बिना किसी सम्बोधन के ही कहा, "बेकार म पागलो की तरह क्या भाग दौड कर रहे हो? नीता को विलायत म भेजने से कोई लाभ होगा?"

निरुपम ऐसी किसी बात के लिए तैयार नही था, फिर भी उसने बडे ही ठढे लहजे मे कहा, "किसके लाभ की बातें कह रहे हो?'

"सभी की ओर से विचार करके ही कह रहा है। मान लो तुम्हारे—"

"मेरी बात रहने दो।"

'ठीक है। लेकिन नीता का भी क्या लाभ होगा? उसके वहा जाकर पहुँचन तक तो उसके प्रेमी की मौत हो जाएगी।"

"जाहिलो की तरह बाते मत करो।"

"ठीक है सभ्यो की भाषा मे कह रहा हूँ—तुम्हे लगता है कि वहाँ जाकर वह अपने मित्र को जीवित देख पाएगी?"

"उस विश्वास के भरोसे ही तो जाने की तैयारी हो रही है।"

'मेरी राय मे तो कोई लाभ नही होगा।"

"नकारात्मक ढग से सोचने की जरूरत ही क्या है? फिर वह जगह इस देश की तरह नहीं है, वहाँ चिकित्सा-पद्धति बहुत अच्छी है, इसके अलावा सुबह

ट्रककाल करके उसकी हालत के बारे म जानकारी मिल पायी है कि उसम कुछ सुधार हुआ है।"

"हालत मे उन्नति हुई है इसकी जानकारी नीलाजन को भी थी। उसे पिछले दिन शाम को ही यह सूचना मिल गयी थी। और इसीलिए उसमे इतनी अधिक छटपटाहट थी।

आश्चर्य! कहानी के नायक की तरह ही वह मृत्यु के दरवाजे तक जाकर लौट आया। अभागे को मौत भी नही आयी। सागरमय की उपस्थिति की सूचना नीलाजन को अचानक ही मिली थी इसलिए उसे अधिक परेशानी थी। उसने जैसे नीद से उठने के बाद खिडकी खोलकर देखा कि ऐन सामने प्रकाश रोककर एक विराट पहाड खडा हुआ है।

इन्द्रनील की तरह अपने को उतना सस्ता बनाकर प्रेम करने का माद्दा निलाजन मे नही था, लेकिन उस पहली मुलाकात से ही वह मन ही मन नीता के प्रति तीव्र आकर्षण का दश अनुभव करता रहा था। इस बात को लेकर वह अच्छी खासी यन्त्रणा का भी शिकार हुआ था।

लेकिन सहज रूप से इसे व्यक्त करने म उसकी मर्यादा को चोट पहुँचती थी। इसीलिए वह क्रमश सारी दुनिया पर, यहा तक कि नीता पर भी नाराज हो रहा था। इन्द्रनील के प्रति उसे ईर्ष्या हो रही थी। यही ईर्ष्या उसे सुचिन्ता के प्रति भी हुई थी। उसके मन मे हर क्षण यही बात रहती थी कि वैसे वह नीता से सहज ढग से पेश आए।

लेकिन अचानक सब उलट-पुलट हो गया।

नीलाजन की समस्त इच्छाओ पर, भविष्य की सुनहरी कल्पनाओ पर तुषारापात हो गया।

नीता वाग्दत्ता थी!

पहले झटके का किसी तरह सभालन के बाद से ही उसके मन मे एक हिंस्र आशा पनपने लगी थी कि चलो आखिरकार वह मरकर लाइन क्लीयर किये दे रहा है। इसीलिए वह बार-बार ट्रककाल करके पता लगाना चाहता था कि "वास्तविक समाचार क्या है ? मतलब अभी वह मरा कि नही। कल सुबह तक यह आशा थी कि नीलाजन का भाग्य सारी परिस्थितियो को नीलाजन के अनुकूल बना रहा है। लेकिन शाम होते न होते गगा उल्टी बहने लगी।

हालत मे सुधार होने का समाचार मिला।

इसकी जानकारी नीता को भी थी या उसे हो सकती थी एक आत्मकेन्द्रित व्यक्ति की वासनाध दृष्टि न इस पर गौर हो नही किया था। उनके मन मे था कि निरुपम को उकसाकर अगर किसी तरह से नीता का विदेशगमन रुकवाया जा सकता तो ठीक होता।

"इस सुधार से कोई फायदा नही होगा ।" नीलाजन ने कहा ।

'किससे फायदा होगा और किससे नहीं, यह फैसला करना हम लोगो का काम नही है ।" निरुपम ने जवाब दिया ।

"नीता के ढेरो रुपये बरबाद हो रहे हैं, इस पर गौर किया है ?"

"रुपया नीता का है, इसलिए इस विषय पर हम लोगो के सोचने, न सोचने का सवाल ही नही उठता ।'

"तुम्हारे सहयोग के बिना उसका इस तरह से जाना मुमकिन नही था ।"

"यह सोचना गलत है । जैसे भी होता वह रास्ता निकाल ही लेती ।"

"जरा सोचो, उसके जाने के बाद उसका प्रेमी—"

"मित्र कहो ।"

"मित्र ही सही । उसके जाने के बाद अगर उसके मित्र की मृत्यु हो जाए तो उसकी हालत क्या होगी, क्या इसकी तुम कल्पना कर सकते हो ? तुम तो खूब हितैषी बनकर—"

"तुम्ह कुछ और कहना है ?"

"नही ।" कहकर लौटते-लौटते फिर से मुडकर नीलाजन ने कटु व्यग्य के स्वर मे कहा, "ऐसा हितैषीपन दिखाकर शायद भविष्य के लिए अपना ग्राउण्ड बना रहे हो ।"

निरुपम गुस्से से लाल होकर बोला, "तुम्हे फिर से एक बार सभ्यतापूर्वक बात करने की याद दिलाये दे रहा हूँ ।"

"याद दिला सकते हो । लेकिन याद रखो, तुम्हारे मन की बात समझने म मुझे कोई गलतफहमी नही हुई है ।'

"सुनकर सुखी हुआ ।"

कहकर निरुपम खुद ही अपना कमरा छोडकर बाहर निकल गया ।

नीलाजन उन्ही तेज नजरो से कुछ देर तक उसी ओर देखता रहा । कमरे से बाहर निकलने जा ही रहा था कि उसे पर्दे की दूसरी ओर से एक धक्का लगा ।

"बडे भैया, आप जरा डाक्टर पालित के साथ—" बात पूरी होने के पहले ही नीता बोल उठी, "आप यहाँ ? बडे भैया कहाँ हैं ?

"मालूम नही ।"

"आप अकेले ही यहा खडे हुए थे ?"

"अगर था तो क्या इसम आपको आपत्ति है ? अगर कहूँ कि आपकी प्रतीक्षा म ही यहाँ खडा था तो ?"

"यह कहना गलत होगा । क्योकि मैं ठीक इसी समय यहाँ आऊँगी, इसे आप पहले से नही जानते थे ।"

"नही जानता था लेकिन यह बात मेरी जानकारी मे है।" नीलाजन ने कुटिलतापूर्वक देखते हुए कहा, "इसमे सन्देह नही कि आप काफी चालाक हैं।"

"यह जानकर खुशी हुई," कहते हुए नीता ने दरवाजे की ओर कदम बढ़ाया ही था कि निरजन ने अचानक उसके पीछे से उसके कन्धे पर अपने हाथ का दबाव डालते हुए दबे गले से गुर्राते हुए कहा, 'रुकिये।"

"इसका मतलब ? आप चाहते क्या हैं ?"

"मतलब समझने की क्षमता तुम जैसी बुद्धिमान लडकियो के पास जरूर होगी। एक सीधे-सादे आदमी की दुबलता का फायदा उठाकर उससे अपना काम निकाले ले रही हो और यह जरा सी बात नही समझ पा रही हो कि आखिर मैं चाहता क्या हूँ।

पिछले दो दिनो से नीता के चेहरे पर हँसी नाम की कोई चीज नही थी। इन दो दिनो म ही उसका चेहरा सूख कर, मुरझाकर काला हो गया था। लेकिन अचानक इस समय उसके चेहरे पर एक विद्रूप भरी मुस्कान फूट पडी। उसके चेहरे पर न क्रोध के लक्षण/थे, न विरक्ति ही, न वह चीखा या चिल्लाया, वरन् शान्त और सयत स्वर म बोली, "आप क्या मुझसे प्रेम निवेदन करना चाहते है ?"

नीलाजन के चेहरे पर जोरदार थप्पड खाने जैसी कालिमा पुत गयी। वह बोला "अगर ऐसा ही करूँ तो ?"

"आप तो सभी कुछ नफा-नुक्सान का हिसाब लगाकर करते हैं, अगर उसी दृष्टि से मैं भी कहूँ, मुझे इसमे क्या लाभ होगा तब ?"

नीलाजन वैसे ही दबे स्वर मे गुर्राते हुए बोला, "तुम्हारे भगवान से प्रार्थना करूँगा कि रास्ते के काँटे का दूर कर दे। तब तो लाभ मेरी मुट्ठी मे होगा न ?"

"हम लोगो के भगवान शायद आपकी बातो पर ध्यान नहीं देंगे। अब हटिये, मुझे जाने दीजिए।"

"नही, पहले मेरी बात सुन लीजिए। सिफ एक सवाल है। अगर तुम्हारे होने वाले पति की मौत हो जाए तो, आशा करता हूँ, इसके बाद मुझे ही चास मिलेगा।'

"आप इतने बड शैतान होगे, पहले नही जानती थी। हटिये—"

"नही नीता देवी--ऐसे नहीं हटूगा। बिना जवाब पाये मैं हटनेवाला नहीं। मुझे जवाब चाहिए।"

नीता के चेहरे पर फिर वही मुस्कान फूट पडी।

"चाहने से ही क्या चीजे मिल जाती है ?

"मिलती हैं। मैं ऐसा मानता हूँ।"

"अच्छी बात है। विश्वास की दृढता अच्छी बात है। लेकिन सोच रही हूँ, आपकी ऐसी असहाय अवस्था कब से हुई ?"

अचानक नीलाजन की दृष्टि एकदम बदल गयी। तेज दृष्टि कातर निवेदन म ढल गयी।

"ऐसा कब से हुआ, क्या तुम सचमुच नही जानता नीता ? जिस दिन पहले पहल तुम यहा आकर खडी हुई, उसी दिन से मैं—लेकिन खराब लडकियो की तरह तुमने मुझसे खिलवाड क्यो किया ?—तुमने पहले ही क्यो नही बता दिया कि तुम्हारी सगाई हो चुकी है।"

'खराब लडकी'—इस शब्द स नीता के कान लाल हो गये फिर भी वह सयत होकर बोली, "इसकी घोपणा चीख-चीखकर करनी चाहिए थी, यह नही समझ पायी था।"

"ऐसा नही कि समझ नही पायी थी, बल्कि जान-बूझकर ही समझना नही चाहती थी। इस अघोपित खबर का अचानक घोपणा से शायद किसी के दिल पर चोट भी लग सकता है, तुमने ऐसा नही सोचा था, यही कहना चाहती हो न ?"

नीता गम्भीर होकर बोली, "बिल्कुल। इस दुनिया के सारे दिल मेरे लिए ही जगह खाली किये हुए बैठे हैं। इस हद तक मुझे पता ही नही था।"

"बाता के जाल म फँसाकर असलियत को दूसरे रग म रँगा जा सकता है। मै यही कहूँगा कि तुमन जान-बूझकर हा इस बात का छिपा रखा था।"

"शायद यह किसी दुरभिसधि के कारण ही हुआ होगा ?'

"इसे सच्ची अभिसधि भी नही कह सकता।' नीलाजन का चेहरा विद्रूप और कडवाहट से विकृत हा गया। "असल मे विरही मन को बहलाने वाले मौज-मजे के उद्देश्य से प्रेम का खेल खलन की सुविधा के लिए ही यह गोपनता बरती गयी थी। नि सदेह तुम्हे इसम सफलता भी मिली। इसलिए भी कि तुमने एक की बजाय सभी के साथ मजा लूटा। निरुपम मित्र को तो तुम अपनी इच्छा-नुसार कठपुतली की तरह नचा रही हो, लगता है इन्द्रनील बाबू ने हताश होकर दूसरी जगह आश्रय ढूढ लिया है, और—"

"और आपने लगता है तय कर लिया है कि प्रेम को जबर्दस्ती प्राप्त करके रहेगे। अच्छा ही है। बलाना बल बाहुबल। लेकिन मुझे अब अधिक रुकने की फुर्सत नही है। उम्मीद है आपका सब कुछ कह लिया होगा।"

"लेकिन मुझे जवाब नही मिला।'

"जवाब! हा-हाँ, ठीक यही तो कहा था न कि अगर शैतान आपकी सहायता के लिए हालत को आपके अनुकूल बना देगा तो आपका हक सबसे पहले होगा, इसी इकरारनामे पर दस्तखत कर दूँ। क्यो यही न ?"

"व्यंग्य कर लो। लेकिन जरा सोचो, अपने अधीन किसी शैतान को तुम्हारे सागर के पास मोटर एक्सीडेण्ट में घायल करने के लिए मैंने नहीं भेजा था।"

"आपको जो कुछ कहना था, कह चुके ?"

"कह चुका। लेकिन नीता देवी तुमने खेल खूब दिखाया।"

नीता ने अपनी उत्तेजना को दबा कर शांत सहज स्वर में बोली, "असल बात क्या है, जानते हैं ? इसमें न आपका दोष है न मेरा, दोष हमारे देश की मानसिकता का है। कोई भी लड़की किसी भी लड़के से अगर हँसकर दो-चार बातें कर ले तो उसे प्रेम का संकेत समझ लिया जाएगा और उसे खेल समझते हुए भी अभागे लड़के उसमें डूबें-उतराएँगे। यह अनिवार्य है। हमेशा यही होता है। इसीलिए आपने यह धारणा बना ली है कि आपके बड़े भाई और छोटे भाई दोनों एक ही देवी की उपासना कर रहे हैं। आपकी बात तो प्रत्यक्ष ही है। लेकिन ऐसा क्यों होता है ? क्या लड़कियों से किसी तरह भी मित्रता का सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता ? क्या सहज होकर मेल-जोल करके उनसे सहज बर्ताव नहीं किया जा सकता ?"

"नहीं ऐसा नहीं होता।" नीलांजन शेर की तरह ही दहाड़ उठा, "उस तरह की आदर्शवादी कविता जैसी बातें रहने दो। ये बातें रक्त-मांस वाले व्यक्तियों के लिए नहीं हैं। क्या प्रकृति ने अपना स्वभाव बदल लिया है ?"

"जवाब में बहुत सारी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन आपके साथ बैठकर बहस करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। लेकिन आपके लिए मैं वाकई दुखी हूँ। बड़े भैया की तरह सहज ढंग से अगर आपने मुझे अपनी छोटी बहन मान लिया होता तो शायद—"

"सहज ढंग से ?" नीलांजन जोर से हँस पड़ा, "छोटी बहन मान लिया होता। यह सारी अच्छी-अच्छी बातें नीता तुम अपने बड़े भैया के लिए संभाल कर रखो। वह डरपोक है, कापुरुष है, इसलिए सोचता है कि अगर बड़े भैया रूपी यह छलना भी अगर टूट जाएगी तो सभी कुछ नष्ट हो जाएगा। कम से कम उस स्थिति से इस तरह का साथ ही क्या बुरा है। इस तरह के आदमियों को पहचानने में मैं गलती नहीं करता।"

"पुरुष-स्त्रियों के बीच बस यही एक सम्पर्क संभव है, यही आपकी धारणा है न ?"

"सिर्फ मेरी ही धारणा नहीं, दुनिया के सभी बुद्धिमानों की यही राय है। वही जो घास से मछली ढँकने जैसा कुछ मुहावरा है न, इसी को तुम्हें याद दिला रहा हूँ। बड़े भैया रहने से ही अगर बहन का प्यार जाग जाता तो फिर परेशानी किस बात की थी ?

सुना है श्रीमती सुचिन्ता देवी भी कभी सुशोभन मुखर्जी को बडे भैया कहती थी।"

नीलांजन की हर बात से कडवाहट फूटी पड रही थी।

नीता अब और खडी नही रह सकी। "फिर से एक बार कह रही हूँ कि आपके लिए दु ख हो रहा है—" कहकर वह कमरे से बाहर चली गयी।

नीता के विदेश जाने की खबर श्यामापुकुर लेन मे भी जा पहुँची। खबर और आग दोनो ही हवा की गति से फैलती हैं।

मायालता झटपट सुमोहन के पास जाकर बोली, "हाँ देवरजी, नीता के जाने-आने मे क्या दस-बारह हजार रुपये खर्च नही हो जाएँगे ?"

"वह तो होगा ही। अधिक भी हो सकता है।"

"एक बात पूछती हूँ, यह माना कि उसका बाप पागल है, लेकिन क्या लडकी का भी दिमाग खराब हो गया है ?"

"असभव नही है।' सुमोहन ने अपनी टाँगे हिलाते हुए तटस्थता से कहा।

"और तुम लोगो का ? ताऊ-चाचा-भाई लोग ? तुम लोगो का भी दिमाग गडबड हो गया है क्या जो लडकी का उद्धार करने की कोशिश नही कर रहे हो।"

"तुम लोगो के पास अपने जाने की सूचना देने आयी तो थी, तब तुमने कोशिश क्यो नही की ?"

मायालता अपनी मुख्य बात को भूलकर बोली, "मैं क्या तुम्हारी सलाह का इन्तजार कर रही थी ? सोचते हो क्या मैंने कोशिश नही की।"

"बस-बस। जहाँ तुम बेकार हो गयी हो वहाँ हमारी क्या बिसात ? हम लोग तो कीडे-मकोडे है।"

"तुम लोग क्यो होगे, वह तो मैं हूँ। नही तो क्या सबसे बडी होने पर भी मैं इतनी तुच्छ होती ? ऐसा न होता तो नीता मेरे मुह पर ही कैसे कहती, 'मेरी शादी करनी होती तो क्या पिताजी के ढेरो रुपये खर्च न होते ? और तुम्हारे बडे भैया ने इस बात का समर्थन भी किया था।

"तुम्हारे विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करने की तो बडे भैया की पुरानी आदत है।"

"इसके मतलब लडकी जो भी चाहेगी बेहयाई करेगी, लापरवाही बरतेगी और कोई इसका विरोध नही करेगा ? कहाँ शादी होगी यह तय नही। दूल्हे का पता-ठिकानाकुछ भी ठीक नही, जाने कब थोडा-सा प्रेम-प्यार हुआ था, बस इसी बात पर उसकी बीमारी देखने के लिए वह विलायत दौडी जाएगी ? ऐसी बात क्या कभी किसी ने सुनी है ? पिता के पास रुपये की कमी नही है, क्या इसी बात से वह लाज-शरम छोड देगी ?

"नही, नही, उन दोनो का सम्बन्ध धूप और पानी के सम्बन्ध जैसा है।

एक के होने से दूसरे का अस्तित्व नही रहता। रुपया होने से लाज-शर्म नही रहती तो लाज-शर्म रहने से रुपया नही।"

"अब तुम जो भी कहो देवरजी, ऐसी निलज्जता तो मैंने सात जनम मे भी नही देखी। मगेतर की बीमारी देखने के लिए कभी किसी के विलायत जाने की बात सुनी है?"

"शादी की ऐसी-तैसी—" सुमोहन खाट के पटिये पर हाथ मारते हुए बोला, "शादी ही क्या प्रेम का पैमाना होती है?"

मायालता मुह बिगाडकर बोली, "हमेशा से यही सुनती आयी हूँ।"

"हमेशा से जो कुछ सुनती आ रही हो भाभी वह सब गलत है। अपनी छोटी बहू का ही ले लो। उसके साथ तो मेरा—"

अचानक बात का छोर बीच मे ही तोडकर सुमोहन हुँऽ हुँऽ करके कोई राग अलापने लगा।

मायालता 'क्या हुआ?' कहकर विस्मित नही हुई। उन्हे क्या हुआ, यह समझते देर नही लगी। ऐसा हमेशा ही घटता था। इस समय भी और कुछ नहीं जरूर छोटी बहू के आँचल की झलक दीख गयी होगी।

हा, अशोका आ रही थी।

नाश्ते की प्लेट मेज पर रखकर कमरे के एक कोने मे रखी हुई सुराही से अशोका पानी ढालकर ले आयी। सुमोहन का यह स्पेशल जल था जो मुहल्ले के किसी खास ट्यूबवेल से लाया जाता था।

"यह सब क्या है?"

सुमोहन ने मुह टेढ़ा करके पूछा।

अशोका ने जवाब नही दिया। जवाब मायालता ने ही दिया। मुह बिगाडने की मुद्रा उन्हे भी बुरी लगी। बोली, "नजर नही आ रहा है क्या?"

"आ क्या नही रहा है?" सुमोहन ने व्यगात्मक मुद्रा मे कहा, "अहा, क्या शोभा है। अभूतपूर्व है। बिल्कुल नयी चीज है। हलुआ और तले हुए पापड। वाह, वाह!"

मायालता बिफर उठी, "तो गृहस्थ के यहाँ कहाँ से हर रोज नयी चीज बनेगी? बाजार की हालत तुम्हे मालूम नही है?"

"बाजार!" सुमोहन दार्शनिक की तरह बोला, "इस दुनिया के रहने वालो का बाजार देख-देखकर ही हलकान हुआ जा रहा हूँ। अब तुम्हारे नोन-तेल-लकडी का बाजार देखने की फुर्सत किसे है?"

"फुर्सत क्या होगा? फुर्सत व्यग्य करने की होगी। राजशाही आमदनी करने के लिए तो किसी ने तुम्हे रोका नही है देवरजी। अपने मँझले भैया की तरह ही कोई ताप बन जाते।"

"वह हो सकता था लेकिन हुआ नही।" सुमोहन न कहा, "कुछ न होन पर भी गृहस्थी चलायी जा सकती है कि नही, यही मेरे शोध का विषय है। इसी को लेकर मैं रिसच कर रहा हूँ।"

"हुँह! ऐसे बमभोले की तरह बडे भैया मिले हैं, तभी—' मायालता ने मुँह बिगाडा, "ऐसा न होता ता सारी रिसच निकल गयी हाती।'

"अरे वह तो मिलते ही। वह ता स्वत सिद्ध है। दुनिया मे अगर जाडा है तो भेड का ऊन भी है। यह विधि का विधान है।"

मायालता नाराज हा गयी, "एक बात हा रही थी, उसम स एक दूसरी बात निकाल लाये। मैं छोटी बहू स पूछता हूँ, वह तो खूब विदुषी और बुद्धिमान है, वहा कह कि इतना पैसा फूककर इस तरह से एक जवान लडकी का विदेश जाना कहाँ तक उचित है?'।

अशोका कमरा बुहार रही थी। दूसरी आर मुँह फिये हुए ही बोली, "मुझसे जवाब माग रहा है?"

"हा माग रही हूँ। मागूगी नही? तुम्हारे जेठ तो उठते-बैठते तुम्हारी बुद्धि की प्रशसा करत रहत है—तुम्ही कहो न, क्या यह ठीक हा रहा है? लाग प्रशसा करेंगे?"

"लोगो की बात करना बडी कठिन है दीदी। लेकिन मुझे तो लग रहा है कि वह उचित ही कर रही है।"

"उचित? तुमन भी खूब कहा। उधर भगवान न करे, कही वह लडका मर गया तो न जाने नीता की क्या हालत होगी? उस पर विदेश म। दूसरो की जमीन म।

"विदेश मे तो बहुतो के पतियो की भी मृत्यु हा जाती है, दीदी।"

"पति और प्रेमी दोना क्या एक समान हुए?" मायालता खीझकर बोली।

"हाँ, दोना की तुलना तो नही हा सकता।" अशोका मुस्कराते हुए कमरे से बाहर चली गयी।

मायालता न मुह बिगाड लिया।

"समझ गयी?" सुमोहन पापड खाते हुए बाला, "पति और प्रेमी का सम्बध भी धूप और पानी जैसा होता है। समझी न।"

'तुम्हारे नखरे की ऐसी की तैसी। मैं सिफ रुपया के बार म सोच रही हूँ। बाप रे! दस बारह हजार रुपय।'

मायालता के लडका ने भी कहा, "बाप रे, नीता ता आसमान म उडकर विलायत जाने के लिए तैयार हो गया। सोचा भी नही जा सकता। यह सब बाते ता मुझे बकार लगता है, मुझे ता इन सबके पीछे कोई षड्यन्त्र लगता है।

आखिर कब तक वह पिता के पागलपन का सहते हुए यूँ ही बैठी रहेगा। इस लिए एक बहाना बनाकर वह यहाँ से खिसक रही है।"

मायालता ने भी समर्थन करते हुए कहा, "इसमें ताज्जुब की क्या बात है! दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं होता। इसका जो दोस्त वहाँ पर है, वह कैसा है, कौन जानता है।"

तपोधन बोला,"पिताजी मुझे भी थोड़े रुपये दो न, मैं भी एक बार घूम आऊँ और मामले की तह में भी हो आऊँ। पासपोर्ट के लिए दिक्कत नहीं होगी। कहूँगा छोटी बहन के अभिभावक के नाते जा रहा हूँ।"

"क्या नहीं, कुछ थोड़े से रुपया की ही तो बात है न ?" मायालता बोली।

तपोधन अपने छोटे चाचा की तरह मुँह बनाकर बोला, "जानती हो माँ, आजकल विलायत, अमरिका, जापान, जर्मनी आदि जगहों में जाना दाल भात जैसा हो गया है। मेरे सारे दोस्त एक-एक बार कहीं न कहीं जरूर घूम आये हैं। हम लोगों जैसे हतभागों का इस युग में संख्या कम हो है। सभी अचरज में भर कर कहते हैं, "तुम्हारे पिताजी का तो इतना अच्छी प्रैक्टिस है, तुम तो—"

मायालता बीच ही में बोल पड़ी, "लेकिन वे कहते हैं, आजकल के सभी लड़के विदेशों में अपनी कोशिशों से ही जाते हैं। स्कालरशिप की व्यवस्था—"

'वे सब बातें रहने दो।' तपोधन ने और अधिक मुँह बिगाड़ लिया, "पिता के पास रुपये न रहने से सब बेकार है।"

मायालता इधर-उधर देखकर दबे गले से बोली—"अब क्या कहूँ। तुम लोगों की तकदीर ही ऐसी है। अगर गृहस्थी में यह सब झंझट झमेले न रहे होते तो क्या मैं तुम लोगों को विलायत-अमेरिका नहीं भेज देती ? मझले देवर जी भी भूत के अवतार हो गये हैं। नहीं तो मैंने मन ही मन सोच रखा था कि तुम लोगों के स्कूल पास कर लेने के बाद तुममें से किसी एक के लिए मँझले देवर जी को पकड़ूँगी। उनसे कहती, भतीजा भी अपने बेटे जैसा होता है, तुम्हें तो कोई लड़का नहीं है, उन्हें लायक बनाने से तुम्हें ही फायदा होगा। दुर्भाग्यवश तुम लोग इधर दो-दो, तीन-तीन बार फेल होते रहे, उधर मँझले देवर जी भी—"

"अच्छा माँ, नीता तो चली जा रही है, फिर मँझले चाचा जी के रुपये-पैसों का क्या होगा ?"

"शायद सुचिता को ही उन्होंने अपना वारिस बनाया है।"

तपोधन ने चिढ़ते हुए कहा, "अब क्या कहूँ, चाचीजी गुरुजन हैं। लेकिन उन्होंने खूब तमाशा दिखाया।"

"तूने तो सब सुना ही होगा, बड़े भाई को पहचानने में दिक्कत नहीं हुई, छोटी बहू को पहचान लिया, सिर्फ हमीं लोगों के वक्त में—'

"सब सुना है। सब समझती भी हूँ। मैं सिफ सोच रहा हूँ, नीता तो जा रही है, अब यही मौका देखकर किसी तरह से मँझले चाचाजी को यहाँ लाया जा सके तो मैं उन्ह मैनेज करके उनसे कुछ रुपये झटक लेता।"

"यही नही होने वाला। सुचिन्ता बडी तेज औरत है।"

"उनके लडके आखिर कैसे है यही सोचता हूँ। वे लाग सहते कैसे हैं ?"

"लडके ?" मायालता की हँसी म विद्रूप था, लडके भी खुश है। वहाँ भी आमदनी हो रही है, तू इसे नही समझता ?"

अपनी माँ के साथ इस तरह की चर्चा म तपोधन ही विश्वस्त व्यक्ति था। साधन इस तरह से अपनी माँ से बातचीत नही करता। वह सिर्फ माँ-बाप की दृष्टि-विहीनता के कारण कुछ न बन पाने का ही मुखर असन्तोष व्यक्त करता रहता है। कहता है, पैसा खच न करने से बच्चे लायक नही बनते, बस वे जानवर बन सकते हैं। सिर्फ खाना-कपडा दे देने से ही माँ-बाप का कत्तव्य समाप्त हो जाने वाला जमाना अब नही रहा।"

बदलते हुए जमाने का बोध, शायद नीता वाली घटना के पहले, इन लोगो को इतनी तीव्रता से नही महसूस हुआ था। नीता के पिता आखिर उनके पिता के सग भाई हैं, यह बात जब भी उनके दिमाग म आती थी गुस्से के मारे उन लोगो का खून खौलने लगता था। उन्ही के निकट का व्यक्ति उनसे दूर होता जा रहा था, यह बात उन्हे असहनीय लगती थी।

सुविमल न अपने बेटा के प्रति अपने कत्तव्य का यथोचित पालन नही किया था, नीता ने जैसे उनके सामने इस तथ्य को उजागर कर दिया।

यही परिवेश सुशोभन का था।

यही उनका घर था, यही उनके अपने लोग थे। यही लोग जिन्होने कभी सुशोभन को अपना व्यक्ति कहकर अपने पास नही खीचा था, अब सुशोभन को हाथ से निकलता हुआ देखकर अपना सिर पीट रहे थे।

मायालता मूख होगी उसके लडके मूख हो सकते है, लेकिन सुविमल भी इसे महसूस कर रहे थे कि गत तीन वर्षों म उनका एक बार भी दिल्ली न जाना कहा तक न्यायसगत था। अब उनका मन हो उन्हे कोच रहा था। नीता के पत्र म उसके पिता के अस्वस्थ होने का समाचार पाकर भी निश्चित होकर बैठे रहना बिल्कुल उचित नही हुआ। आना-जाना बना रहता तो सुशोभन की लडकी उनसे कभी भी इस तरह से अलग नहीं हो सकती था।

साथ ही सुविमल का भी इस तरह से चार व्यक्तियो के सामने सफाई नही देनी पडती। अभी कुछ ही दिन पहले फुफेरे भाइयो ने आकर उनसे इस बारे म पूछताछ की थी। बडी बहन न बुला भेजा था लेकिन सुविमल नही गये थे। जाते तो शायद वह भी यही पूछती, "सुचिन्ता के यहा किसलिए ? तुम्हारे यहाँ क्या नही ?"

यह सब शायद कुछ भी नहीं हुआ होता अगर सुविमल न पहले से सोचा-विचारा होता। लेकिन जब तक कोई चीज अपनी पहुँच में रहती है, उसके मूल्य के बारे में कौन चिन्ता करता है। पहुँच से बाहर या हाथ से बाहर कोई चीज निकल जाने पर ही लोग अफसोस करते हैं कि पहले से क्या नहीं सोच विचार लिया। आदमियों के बारे में भी यही बात है।

सुमोहन भी भले ही सभी कुछ को हँसी और व्यंग्य में टाल देता हो, लेकिन मन ही मन वह भी यही सोच रहा था कि उसने अपनी जिंदगी के प्रारंभ में ही बहुत बडी गलती कर दी था। पैसा के बँटवारे के बाद बडे भैया के यहाँ अपना सिर न छिपाकर अगर उसने विधुर मँझले भैया का आश्रय ग्रहण किया होता तो अच्छा था। नीता भी तब बच्ची ही थी। अशोका जैसी चतुर कर्मठ चाची पाकर उन्हें खुशी ही हुई होती।

लेकिन सारी गडबडी की जड अशोका ही थी।

उसने कभी भी पति से कोई सलाह नहीं ली। लेकिन लगता था जैसे वह बडी अनुगता थी। इससे तो वह अगर रात दिन झगडती भी रहती तो बेहतर होता।

अच्छा सुचिन्ता ने अपने पति के साथ कैसे निर्वाह किया? यह तो स्पष्ट ही हो गया कि वे मन से किसी दूसरे ठिकाने से बँधी हुई थीं।

अचानक सुमोहन कुछ अवान्तर बातें सोचने लगा। उसने सोचा कि कौन जाने अशोका के मन में भी कोई चोर छिपा हुआ हो।

लडके-बच्चों की माँ है, लेकिन उससे क्या। औरतों के मन का क्या भरोसा। सुचिन्ता ने भी कैसा नाटक दिखाया।

आश्चर्य है! उम्र हो जाने पर भी प्रेम प्यार की बातें मन में बनी रहती हैं। अब यह सब तो सामने ही नजर आ रहा है। सुमोहन अपने मँझले भैया को भी सभी भाइयों-बहनों में बुद्धू समझता था लेकिन अब मँझले भैया को देखकर उसे जलन होती। उनके पागल होने के बावजूद उनसे ईर्ष्या होती है। बुद्धू भी प्रेम कर सकते है, इस बात से मन को ढाढ़स देने के बावजूद मन जैसे बेकाबू हुआ जा रहा था।

जीवन में पराजित होने वाले शायद ऐसे ही होते होंगे।

वे दुनिया पर व्यंग्य करके मन की जलन यह सोचकर मिटाना चाहते हैं कि मैं उनके जैसा मूर्ख नहीं हूँ। लेकिन ईर्ष्या के हाथ से उन्हें भी मुक्ति नहीं मिलती।

सभी कुछ ठीक-ठाक ही चल रहा था कि अचानक ऐसा लगा जैसे नीता ने एक ईंट उठाकर इन लोगों के माथे पर दे मारा हो।

खैर, इस ईंट से कइयों के सिर जख्मी हो गये थे।

नीता के जाने का कारण गौण हो गया था, वह जा रही था, यही चर्चा का

मुख्य कारण था। मायालता की मानसिकता से कृष्णा, शिप्रा, माधुरी जैसी इस मोहल्ले की आधुनिकाएँ भी अलग नही थी।

अगर नीता शादी-शुदा होती और उसके पति के बारे म दुर्घटना की ऐसी सूचना आयी हाती तो नीता का नि सदेह इन सभी की सहानुभूति मिली होती। लेकिन होने वाला पति ? आश्चय की बात थी।

"जो भी कहो, खूब तमाशा करके जा रही है।"

कृष्णा की इस बात पर इन्द्रनील की भाह सिकुड गयी। बोला, "तमाशा करके ?'

"और नही तो क्या।"

' प्रमी के सम्बन्ध मे तुम्हारी धारणा तो बडी कठार है।

"कठोर क्या होगी। वह देश कौन-सा है, यह ता देखना पडेगा। जहा हाथ पैर खत्म हो जान पर नकली हाथ पैर लगाकर काम लायक बना दते है, लग्स खराब हो जाने पर प्लास्टिक के लग्स लगाकर प्राण-रक्षा करत है सिर का ऊपरी हिस्सा उड जाने पर किसी दूसरे का खाल उतार कर फिट कर देते है। ऐसे देश मे क्या सोचना।"

"यह तो सही कहा।"

"आओ चलो, उससे मिल आएँ।"

"क्या जरूरत है। वह अभी बेहद व्यस्त है।"

"अपने पिता के बारे मे नीता दी न क्या व्यवस्था की है ?"

"क्या करेगी ?

"कोई नस-वर्स—

"नही।"

"तुम्हारी माँ को ही सब कुछ सँभालना पडगा ?"

"और क्या हो सकता है।" इन्द्रनील ने मुस्कराकर कहा, "नीता का मामला देखकर लगता है कि सब कुछ झटपट कर लेना ही उचित होगा, मनुष्य का जीवन कमल के पत्ते पर पडी हुई बूद है। न जाने कब खत्म हो जाए।"

"दो-दो घाडा को लाँघ कर घास खाने का इरादा है ?"

"लगना है यही करना पडेगा। बहुत दिनो तक धैयपूर्वक इन्तजार किया जा सकता है, ऐसा नही लगता।"

"इतना भी धैय नही है।'

"धैर्य का कोई मतलब नही है इसालिए इतना अधैर्य है। जब भूख लगी हुई हा और सामने सुस्वादु भोजन हो, तब धैय रखने का मतलब ही बेमानी होगा न ?'

"तुम्हारी यह तुलना अत्यत आपत्तिजनक है। भूख, सुस्वादु भोजन छी।"
"यह सब कुछ मैं नही समझता। जो सच है, वही कह रहा हूँ।"
"सोचती हूँ, तुम कितना बदल गये हो। तुम कैसे थे।"
"रिएक्शन। प्रतिक्रिया। अब समझ रहा हूँ कि मुझम अपने पिता का स्व भाव समा गया है। पिताजी अत्यत विलासी प्रवृति के थे।"
"तुम्हारी माँ जिस तरह से मुझे देखती है, उसस तो मुझे डर लगता है।"
"मुझे भी तुम्हारी माँ से डर लगता है। वे भी जाने कैसी नजरो से देखती हैं। लगता है अभी भस्म कर देंगी।"
कृष्णा हँसते हुए बोली, "इस पर भी हम लोग एक दूसरे की ओर नजरें उठाने से नही चूकते। यही आश्चर्य है।'
"परम आश्चय।"

नीता को विदा देने के लिए दमदम हवाई अड्डे पर काफी लोग गये थे। निरुपम, इन्द्रनील, कृष्णा, अडोस-पडोस के लडके-लडकियाँ सभी थे। एक बहाना चाहिए था उन्हे हो-हुल्लड मचाने का। एक खास उम्र के लडके-लडकिया इकट्ठे होने का कोई भी मौका वे हाथ से नही जाने देना चाहते हैं। गोल बाँधकर सिनेमा या गुरु दशन के लिए जाने मउन्हे समान रूप से मजा आता है। उनके आनद म रचमात्र भी कमी नही होती।
नीता के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए इन्द्रनील न कहा, "कब लोटोगी? तुम्हारे न लौटन तक हमारी शादी रुकी रहेगी।'
"लौटना तो मेरी इच्छा से नही होगा।"
"वहाँ जाकर रहोगी कहाँ?"
"इसकी व्यवस्था शिशिर राय करेंगे। लेकिन मेरे लौटने के इन्तजार मे तुम क्यो रुके रहोगे?"
इन्द्रनील कुछ देर की खामोशी के बाद बोला, "चाँद को हाथो मे न पाने के बावजूद चाँद के तरफ वाली खिडकी खुली रखने की इच्छा होती है। तुम्हारी बातो के जवाब म मैं यही कह सकता हूँ।"
"बडे भैया, पिताजी को छोडे जा रही हूँ।"
टपटप करके आँखो से आँसू टपक पडे, पहले गालो पर फिर हाथो पर। हाँ, निरुपम के उन्ही हाथो पर जिन्हे नीता बडी व्याकुलता के पकडे हुई थी।
"बडे भैया, मुझे पिताजी की सूचना मिलती रहे।"
"नही मिलेगी ऐसी बात क्यो सोच रही हो?"
"नही, कोई आशका नही है। सोचती हूँ, आप सभी पर—खैर, यह सब

नही कहूँगी, सिर्फ कहूँगी बुआजी पर काफी बोझ पड गया। उनकी भी आप देख-भाल कीजिएगा।"

'बुआजी' के बारे मे निरुपम की कोई खास सहानुभूति नही थी, इसीलिए वह बडे ठडे लहजे म बोला, "तुम्हे चिंता करने की जरूरत नही है।"

"डॉक्टर पालित ने तो कल खूब भरोसा दिलाया था।"

"हाँ, दिलाया तो था।"

"क्या यह सभव नही है कि जब मैं लौटूँ, पिताजी को पूरी तरह से स्वस्थ देखूँ।"

"ऐसा भी हो सकता है।"

समय हो गया था। यात्रियो म हलचल मच गयी थी। लोग हर तरफ सिसकने-रोने लगे थे। अपने देश और अपने लोगो को छोड जाते वक्त ऐसा कौन है जिसकी आखे गीली न हो जाती हो।"

और नीता ?

उसके तो आगे-पीछे दोनो तरफ आसुओ का सागर लहरा रहा था।

वहाँ जाकर वह सागर को किस हाल म पाएगी ? सागर क्या उसे पहचान पाएगा ? क्या सागर फिर से पहले जैसा ही हो जाएगा ? क्या नीता दुबारा सागर को लौटा ला सकेगी ?

वह लौटकर अपने पिता को तो न देख पाएगी ?

अचानक नीता को न पाकर कही मामला कुछ उलट-पुलट तो नही जाएगा ?

पिताजी क्या स्वस्थ हो जाएँगे ? सागर बचेगा कि नही ?

आकाश और पृथ्वी दोनो अपनी करुण दृष्टि से उसके चेहरे की ओर टक-टकी बाँधे हुए थे।

नीता तुम किसके लिए सोचोगी ?

आहिस्ते-आहिस्ते जमीन छोडकर आसमान का रथ ऊपर उठने लगा। जमीन धीरे-धीरे नीचे छूट गया। दूरियाँ बहुत बढ गयी। आसमान तेजी से सबको अपनी ओर खीचे लिए जा रहा था।

नीता के मन म सुशोभन की चिंता क्रमश मद हो रही थी, "वे लोग तो हैं ही, सुचिन्ता बुआ भी हैं। इन दिनो मैं कर ही क्या रही थी।" अपने मन को सात्वना देने वाले विचार भी अब खत्म हो रहे थे।

आसमान असीम वेग तरगित होने लगा था।

सागर, सागर, तुम्हे कितने दिनो से नही देखा ?

सागर, क्या जाकर तुम्हे देख पाऊँगी ? सागर, क्या तुम मुझ पर नाराज होगे ? क्या तुम सोचोगे कि मैंने तुम्हारे पास आकर अन्याय किया है, दु साहस किया है ?

सागर तुम मुझे पहचान तो न पाओगे ?

जाने तुम कैसे हो गये हो सागर ?

ये व्याकुल प्रश्न ही दुःसाहसिक अकेलेपन से भरी उस यात्रा के साथी थे।

पिता और पति ये दोनों लड़कियों के जीवन के दो प्रिय आराध्य होते हैं, दोनों में ही जबर्दस्त आकर्षण रहता है, इनमें से किसी एक को छोड़े बिना दूसरे को प्राप्त करना सम्भव नहीं होता। नारी जीवन की यही सबसे बड़ी ट्रैजेडी होती है। एक को तो छोड़ना होगा ही।

बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा।

छोड़कर जाना होगा अपना स्नेह नीड़, छोड़ना होगा अपना वंश-परिचय छोड़ना होगा बचपन से सीखे हुए संस्कार, पद्धति और रुचि को।

यह त्यागना ही सुन्दर है, शोभाजनक है।

न छोड़ने के दुराग्रह से जीवन नष्ट हो जाता है।

ऐसा क्या सिर्फ हमारे देश में ही है ? हर देश की नारियों के जीवन में त्याग की ऐसी ही परीक्षाएँ आती हैं। त्याग के बिना प्राप्ति का सुख भी तो नहीं होता।

अगर सागर जीवन्मृत होकर बचा रहे तो वह क्या करेगी ? अगर वह हमेशा के लिए पंगु हो जाय तो ? नीता किसको छोड़ेगी ? असहाय पागल बाप को या पंगु असहाय प्रेमी को ?

दोनों की एक साथ देख-भाल करने की क्या उसमें क्षमता होगी ?

सागर तुम स्वस्थ हो जाओ, पहले जैसी आत्मा का संचार मेरे जीवन में कर दो। सागर तुम मुझे तोड़ कर, चूर चूरकर धूल में मिलाकर न चले जाना।

आदमी का शरीर भी जाने किस धातु से बना होता है। अन्दर का उत्ताल तरंग बाहर आकर बिखरने नहीं पाता। उन्हें शरीर अन्दर ही अन्दर जज्ब किये रहता है।

ऐसा न होता तो निरुपम बाहर से इतना शान्त और स्तिमित कैसे बना रहता ?

बड़े भैया ! बड़े भैया !

इस सम्बोधन की गरिमा का वहन करना ही पड़ेगा।

निरुपम कितना निरुपाय है।

हाथ की चमड़ी में तभी से जलन हो रही थी। क्या नारी के आँसुओं में कोई दाहिका शक्ति होती है ? लग रहा था जैसे चमड़ी झुलस गयी हो। रूमाल से आँसुओं को पोंछने के बाद भी कोई आराम नहीं हुआ। निरुपम को जल की धार के नीचे अपना हाथ रखना पड़ा।

नीता ने कहा था कि वह नहीं जानती थी, 'दुनिया के सभी हृदय उसके प्रेम के लिए व्याकुल हैं।' लेकिन ऐसा ही होता है। जिसमें आकर्षण शक्ति होती है,

क्या वह एक को ही आकर्षित करके चुप बैठती है ? उज्ज्वल दीप-शिखा से लौ लगाकर लाखो पतगो को अपने प्राणो की आहुति देने की जरूरत क्या थी ?

"इतनी देर तक हाथ थामे हुए आखिर क्या बाते हो रही थी ?"

कृष्णा ने रूखे स्वर मे कहा ।

"अगर कहूँ वह अपने पिता के लिए बुरी तरह से चिन्तित थी, उसे ढाढस बँधा रहा था ।"

"मुझे यकीन नही आता ।"

"तब फिर नही कहूँगा ।'

"मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था ।"

"थोड़ा गुस्सा आना अच्छा है ।" इन्द्रनील बोला, "इससे प्रेम बढता है ।"

"यह पुरानी और सडी हुई बात है । नीता दी से क्या बाते कर रहे थे, वही बताओ न ।'

"यह नही बताऊँगा ।"

"नही बताओगे ?"

"नही, जिससे मेरी जो भी बाते होगी, सब तुम्हारे सामने पेश करना होगा, ऐसी किसी शर्त के अधीन मैं नही हूँ ।"

"हर व्यक्ति की हर बाते नही, लडकियो के साथ जो भी बातें होगी—"

"वह भी नही । कृष्णा, तुम एक बात जान लो, हर व्यक्ति के मन मे एक निर्जन कोना होता है, जहाँ किसी को भी झाकने की हिमाकत नही करनी चाहिए ।"

"यह सब मुझे अच्छा नही लगता ।" कृष्णा ने रूखे गले से कहा ।

इन्द्रनील मुस्कराते हुए बोला, "अगर मेरी हर बात तुम्हे अच्छी लगने लगे तो जल्दी ही मैं तुम्हारी नजरो मे पुराना पड जाऊँगा ।"

"इसका मतलब ?"

"मतलब कठिन नही है । घर जाकर सोचना । समझ जाओगी ।"

कृष्णा खीझकर बोली, "वह सब मैं नही जानती, मेरे अलावा तुम किसी और की ओर नही देखोगे, मेरे अलावा तुम किसी से बाते नही करोगे, मेरे अलावा तुम किसी और के बारे मे नही सोचोगे, यही मेरी शर्त है ।"

'कहा तो, मैं किसी शर्त को नही मानूगा ।"

कृष्णा छलछलायी आँखो से बोली, "यह जानते हो न कि तुम्हारे सिवा मैं किसी और से—इसीलिए तुम्हे इतना अहकार हो गया है ।"

इद्रनील ने कहा, "अगर व्यक्ति मे थोडा-सा अहकार न रहे तो उसमे रह ही क्या जायेगा ? व्यक्ति तो अहकार से ही बनता है।"

वही तो बात है।

अहकार से ही तो व्यक्ति बनता है।

सभ्यता का अहकार, सयम का अहकार, रुचि का अहकार, उदासीनता का अहकार, इतने सारे अहकारा के सहारे व्यक्ति अपने को टिकाये रखता है।

इस अहकार को खत्म नही कर पाने के कारण ही निरुपम रात भर जाग-कर पत्र लिखता है—'कल्याणेपु नीता'। पत्र के अन्त म उसने लिखा—'इति शुभेच्छुक बडे भैया।'

नही वह इस पत्र को नही भेजेगा। आज ही चिट्ठी भेज दे, ऐसा पागल निरुपम नही है।

निरुपम रात भर जागकर सिफ पत्र का मजमून बना रहा था। उसे पत्र लिखने का अभ्यास नही था। असल मे बँगला म पत्र लिखने का उसे बिल्कुल अभ्यास नही था। इधर नीता कह गयी थी, "मैं आपके पत्र की प्रतीक्षा करती रहूँगी, बडे भैया। पिताजी का विस्तार स समाचार देते रहियेगा। आप पर ही सारे भार डाले जा रही हूँ। लेकिन पत्र बँगला म ही लिखियेगा।"

निरुपम सुशोभन के बारे मे ही विस्तार से लिखने की कोशिश कर रहा था। लेकिन लिखने मे बात बन नही रही थी।"

उसने फिर से दूसरे कागज पर नये सिरे से लिखना शुरू किया, 'कल्याणेपु नीता—'

लेकिन पत्र की भाषा मनलायक होगी कैसे ?

लिखने की बात ही क्या थी ?

आज ही तो नीता गयी थी।

ताज्जुब है।

लग रहा था, जाने कितने दिन हो गये उसे गये हुए।

"लग रहा है—जाने कितने दिना के लिए मैं कही चला गया था। फिर से लौटा हूँ। बता सकती हो सुचिन्ता, मुझे ऐसा क्या महसूस हो रहा है।" सुशो-भन ने कहा, "मैं क्या कही गया हुआ था ?"

सुचिन्ता ने सिर हिलाकर कहा, "नही ता।"

"अच्छा, तब क्यो ऐसा लग रहा है कि जाने कितने लागा से मुलाकात हुई थी, लोगो ने जाने क्या-क्या कहा था, जाने कितनी गडबडी की थी। वे सब कौन थे, बता सकती हो ?"

सुचिन्ता ने मुर्झाये हुए कहा, "कहाँ, कही तो नही। तुम तो कही नही गये थे।"

"नही गया था ? कही नही गया था ?" सुशोभन उत्तेजित हो गये, "नही गया था कहने से ही मान लूगा। तुम जरूर मुझे कही ले गयी थी सुचिन्ता।"

सुचिन्ता ने म्लान उत्सुकता से कहा, "मुझे तो याद नहीं पड रहा है। तुम्ही बता दो कि तुम्हे किसने क्या कहा था ?"

सुशोभन खीझते हुए बोले, "वही बात तो पूछ रहा हूँ। दिमाग म बहुत सारी बातें है। लेकिन वह सारी बातें गड्ड-मड्ड हुई जा रही हैं। अच्छा जरा बताना वे लोग कहा चले गये ?"

सुचिन्ता के मन म भी अथाह सागर लहरा रहा था, मन मे दुर्भावनाओ का पहाड खडा था।

इसके बाद क्या ? इसके बाद क्या होगा ?

नीता थी तो जैसे पैरा के नीचे जमीन होने का अहसास होता था।

लेकिन पैरा के नीचे जमीन होने से क्या साहस और सत्य की परीक्षा सभव होती है ?

सुशोभन खीझते हुए बोले, "आखिर इतना सोच क्या रहा हो सुचिन्ता ? वे लोग कहाँ चले गये, बता क्या नही रही हो ?"

सुचिन्ता ने थके स्वर म पूछा, "वे कौन ?"

"ताज्जुब है ! और कौन ? जो लोग यहाँ रहते है।"

"जहाँ गये हैं, तुम्ह बता के गये हैं।"

सुचिन्ता न और भी थकान महसूस की, "नीता विलायत चली गयी, मेरे बडे और छोटे बेटे उसे पहुँचाने हवाई अड्डे पर गये हुए हैं।"

"नीता चली गयी ?" सुशोभन ने व्याकुल होकर कहा, "सुचिन्ता, वह क्यों गयी ? वह क्या नाराज होकर चली गयी ?"

"नाराज क्यो होगी ?" सुचिन्ता कुछ रुक-रुककर बोली, "तुम्हें तो उसने सभी कुछ बताया था। जिस लडके से नीता की शादी होने वाली है, उसकी तबियत खराब हो गयी है। उसे देखने नीता गयी हुई है।"

सुशोभन थोडी देर मौन रहे। बोले, "आह, अब समझ गया हूँ।"

"क्या समझ गये हो ?"

"नीता मुझसे नाराज होकर गयी है।"

सुशोभन करुण और उदास चेहरा बनाकर बैठे रहे।

सुचिन्ता ने आहिस्ते से सुशोभन के पुष्ट हाथो के एक भारी-भरकम पजे पर अपना हाथ रखकर शान्त चित्त से कहा, "आखिर नीता यू ही नाराज होकर क्या जायेगी ? तुमने कुछ कहा था ?"

आज सुशोभन उस स्पर्श के प्रभाव से विचलित नहीं हुए, उनका मन कहीं और था इसी तरह से वे बोले, "क्या मालूम ? ऐसा लग रहा है जैसे मैंने बहुत अपराध किया है। सुचिन्ता, मुझे जोर-जोर से रोने की इच्छा कर रही है।"

'छि वैसी बातें नहीं करते।" सुचिन्ता बोली, "नीता तो कुछ ही दिनों बाद लौट आयेगी ?"

सुशोभन ने आहिस्ते-आहिस्ते सिर हिलाकर कहा, "अब वह नहीं आयेगी।"

"मैं कहती हूँ न वह आयेगी।"

सुचिन्ता ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा।

सुशोभन चकित होकर देखते रहे, "तुम कह रही हो कि वह लौट आयेगी ? तुम सब कुछ समझ सकती हो सुचिन्ता ?"

"हाँ, मैं सब कुछ समझ सकती हूँ।" सुचिन्ता ने बात पलटी, "यही देख लो। मैं समझ गयी हूँ कि तुम्हें भूख लगी है।"

"कहाँ, नहीं तो ?'

"वाह, तुम क्या अपने आप ही समझ जाते हो ?"

सुशोभन ने सिर हिलाया, "मैं नहीं समझ पाता लेकिन नीता समझ जाती है। अब मैं भी समझ रहा हूँ। मुझे भूख नहीं लगी है।"

"तुम्हें कुछ पढ़कर सुनाऊँ, सुशोभन ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ? पढ़कर सुनाऊँ न ?"

"ओह सुचिन्ता, तुम बहुत दबाव डालती हो।"

"ठीक है, अब दबाव नहीं डालूँगी।'

"तुम नाराज हो गयी हो सुचिन्ता ?"

"बिल्कुल हुई हूँ। तुम मेरी बात क्यों नहीं सुन रहे हो ?"

सुशोभन थोड़ा-सा विचलित होकर बोले, "सुनूँगा क्यों नहीं। जरूर सुनूँगा। लेकिन—"

"क्या ? कहो क्या कहना चाहते हो ?"

"यही कि तुम्हारी बातें मुझे क्यों सुननी चाहिए ?"

इस बात से सुचिन्ता भी विचलित हुई।

सुशोभन में क्या कोई बदलाव लग रहा है ?

नीता के सामने क्या सुचिन्ता हार जायेगी ?

"लेकिन सुचिन्ता ने तो प्रतिज्ञा की थी कि वह हारेगी नहीं। हार नहीं मानेगी।"

'हाँ सुनोगे। मेरी बात तुम्हें सुननी होगी। कल से सुबह हम दोनों घूमने जाएँगे।"

"घूमने ?"

अचानक सुशोभन खुश हो गये। "अभी चलो न सुचिन्ता। चलो, जरा देख आयें, जिन लोगों के मकान तोड दिये गये थे, वे लोग कहा गये है। आओ चलो, चलें।"

"अब घर किसके टूटे है ? घर-वर तो कही नहीं टूटे।"

"टूटे नहीं ? कहने से ही मान लूगा ? रभी मार-मारकर नहीं तोड रहे थे। नीता ने बताया कि इन लोगों के मकान फिर से बनेंगे। झूठ कह रही थी। मैं कह रहा था नही बनेगा। मकान टूट जाने से क्या दुबारा मकान बनता है ?'

अचानक सुचिन्ता ने सुशोभन के कधे पर अपना एक हाथ रखते हुए रुँधे हुए गले से कहा, "दुबारा क्यों नही बनता सुशोभन ?"

अचानक पागल सुशोभन एक अशोभनीय काम कर बैठे। टेबल पर उनके पास एक काच का गिलास रखा हुआ था। उसे लेकर उन्होंने जमीन पर जोर से पटक दिया। एक तेज झनझनाहट चारो ओर बिखर गयी।

"क्यो नही बनता, अब तुम बताओ ?" सुशोभन अद्भुत एक आत्मतृप्ति का अट्टहास करते हुए बोले, "बता सकी ? सब पागलों जैसी बातें। तुम्हारी बात सुन-सुनकर बीच-बीच म, जानती हो सुचिन्ता, मुझे क्या महसूस होता है, कि जैसे तुम धीरे-धीरे पागल होती जा रही हो।"

"तुम्हे ऐसा लगता है ?" सुचिन्ता बोली।

"बिल्कुल—' सुशोभन ने अपनी बातों पर जोर देते हुए कहा, "बीच-बीच मे तुम ऐसा ही फालतू बाते करती हो। नीता विलायत गयी है। और तुम मुझसे कह रही हो कि नीता मुझसे नाराज होकर चली गयी है।"

अपनी बातों का खुद ही सुशोभन जवाब दे रहे थे।

"मुझे बाहर एक नौकरी मिली है।"

नीलांजन ने आकर अकारण ही रूखे स्वर मे यह नया समाचार दिया।

सुचिन्ता सब्जी काट रही थी। वे सनाका खाकर झटपट छुरी एक किनारे रखकर खडी हो गई। उन्होंने अपने बेटे की ही बात को ही दुहराया, "बाहर एक नौकरी मिली है।"

"हां।"

"कहां।" प्रश्न नहीं था, सिर्फ कह दिया गया था।

"है एक जगह।" सक्षेप में ही बोला। जैसे मतलब के अलावा कुछ भी

अतिरिक्त कहने की जरूरत नही। जगह का नाम बताने की जरूरत क्या है। 'है कोई जगह' बस, यह कहना ही पर्याप्त है।

सुचिन्ता क्या कहे। वह क्या व्याकुल होकर पूछें, "तुम अचानक बाहर क्या जा रहे हो?" या वे पूछें, "कैसी नौकरी है, क्या यहाँ से अच्छा है? तनख्वाह अधिक है? रहने की सुविधा है?"

या यह सब मातृ-हृदय सुलभ सवालो को पूछने का अधिकार सुचिन्ता को नही था।

क्योकि सुचिन्ता ने अपने बेटा को सामान्य, सुलभ नही बनाया था। इसीलिए थोडी देर की खामोशी के बाद वे बोली, "सब कुछ तय कर लिया है?"

"हाँ।"

"निरू को बताया है?"

"कहने की कोई जरूरत है?"

"नही जरूरत क्यो होगी?" सुचिन्ता ने सप्रयास गहरी साँस जता कर ली।

"अनुमति लेने के लिए कह रही हो?" नीलांजन के चेहरे पर विद्रूप भरा हास्य झलक गया।

"अनुमति।" सुचिन्ता चकित हुईं।

"क्या मालूम। बडे भाई हैं। गुरुजन हैं।"

सुचिन्ता खामोश रही।

"रात नौ की ट्रेन से जाऊँगा।" कहकर नीलांजन पीछे घूम गया, लेकिन शायद सुचिन्ता अनुपम कुटीर का सयत्न सहजा धैर्य अब सहेज न सकी, इसलिए लगभग आर्तनाद करते हुए वह बोल पडी, "क्या आज ही जाओगे?"

"हाँ आज ही। परसो ज्वाइन करना होगा।"

"बाहर जाने की कोई बहुत जरूरत आ पडी थी? सुचिन्ता ने कुछ रुकते हुए कहा, "यहाँ की नौकरी भी कोई बुरी तो नही थी।"

सहसा नीलांजन ने रूखे गले से व्यग्यपूर्वक कहा, "नही, यहाँ की नौकरी भी शायद बुरी नही थी, लेकिन माँ, अब यहाँ रहना असहनीय होता जा रहा है। इस असहनीय स्थिति से मुक्ति पाने के लिए ही मुझे यहाँ से आधी तनख्वाह पर दूसरी जगह चले जाना पड रहा है।"

नीलांजन अपने कमरे मे चला गया।

सुचिन्ता बरामदे की रेलिंग पर हाथ धरे हुए चुपचाप खडी रही। आसमान मे बादलो का आना-जाना लगा था। अनुभवी लोगो ने जीवन की तुलना आकाश

से का है जहा सुख और दु ख के बादलो का आना-जाना लगा रहता है, जहाँ कुछ भी स्थायी नही है।

सफेद बादल को सफेद और काले को काला समझकर व्यग्र होने की कोई बात नही है, ये सब वाष्पीकृत हैं, यही असल बात है। इनका आना-जाना लगा ही रहेगा।

उनमे आकाश का नुकसान पहुँचाने की क्षमता नही है।

सुचिन्ता क्या इसी आकाश की तरह होगी ?

जान कब सुशोभन अपने कमरे से बाहर निकलकर सुचिन्ता के पास आकर खडे हो गये थे। उनकी बात स सुचिन्ता चौंक गयी।

"सुचिन्ता, तुम्हारे लडके ने तुम्हे डाँटा क्यो ?"

सुचिन्ता झटपट बोली, "कहाँ, डाँटा तो नही।"

"नही डाँटा ? तब तुम मन खराब करके यहा खडी क्या हो ?"

"नही मन खराब क्यो होगा ? मन तो नही खराब हुआ है।"

सुशोभन ने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाकर कहा, "कहने से सुनोगी क्या ? मैं देख रहा हूँ कि तुम उदास हो। मुझे मालूम है कि वे लोग तुम्हे डाँटते हैं। आओ सुचिन्ता, हम लोग यहाँ से कही चले जाए।"

सुचिन्ता ने गर्दन मोडकर कहा, "चले जाएँ। कहाँ चले जाएँ।"

सुशोभन ने गुपचुप कहा, "वहाँ, जहाँ तुम्हारे बेटे मौजूद न हो। सिर्फ हम दोनो मिलकर बाते करेंगे। वहाँ उनकी तीखी नजरो से परेशानी नही होगी।"

सुचिन्ता सुशोभन की आँखो म टकटकी बाँधे हुए कई पलो तक देखती रह गयी। इसके बाद भरे गले से बोली, "वे लोग जिन नजरो से देखते हैं, उसे तुम समझ लेते हो ?"

"क्या नही समझूँगा !" सुशोभन अधीर होकर बोले, "सुचिन्ता, मुझे क्या अधा समझ रखा है ? मैं सभी कुछ देखता रहता हूँ।"

"तुम सब कुछ देखते हो ? तुम सब समझते हो ?" सुचिन्ता ने सब कुछ एकबारगी भूल-भालकर सुशोभन की बाँहो म अपना सिर रख दिया और आवेग भरे गले से बोली, "मेरे दाह को कितना समझ पाते हो ? जानते हो मुझे कितना तकलीफ है ?"

"गाडी के लिए खाना बनाने की परेशानी की—"

परेशानी की कोई जरूरत नही है—यह बात कहने के लिए ही शायद नीलाजन आ रहा था। अचानक वह रुककर अस्फुट रूप से कुछ कहते हुए विद्युत गति से फिर अपने कमरे मे घुस गया।

उसने क्या कहा था ?

"असहनीय ?"

"रश्मि ?"

"कुत्सित ?"

सुचिन्ता को कुछ सुनाई जरूर पड़ा था लेकिन वे पूरी तौर से समझ नहीं पायी।

सुशोभन ने अपने कंधे पर टिके हुए सुचिन्ता के सिर को अपने हाथों से दबाया नहीं बल्कि उसे आहिस्ते से हटा दिया। फिर सतर्क होकर बोले, "सुचिन्ता, देख लिया ? मैं कह नहीं रहा था कि तुम्हारे लड़के बड़ी विचित्र नजरों से हमें घूरते रहते हैं ?"

"देखें। जिसकी जैसी तबियत हो घूर कर देखें।' सुचिन्ता तीव्र आवेग भरे स्वर में बोली, "हम लोग भी उनकी ओर नहीं देखेंगे। हम लोग भी इसकी परवाह नहीं करेंगे कि वे क्या सोचते हैं। भला, सचमुच हम लोग कहीं दूसरी जगह चले जाएँ।"

यह बात सुशोभन ने भी थोड़ी देर पहले कही थी, "चलो सुचिन्ता, हम लोग कहीं दूसरी जगह चले चलें।" लेकिन इस समय उन्होंने इस बात का समर्थन नहीं किया, न वे इस बात पर खुश ही हुए। एक विचित्र स्वर में बोले, "धैर्य रखो सुचिन्ता, पहले सोचने दो। दिमाग में सब कुछ कैसा गड्डमड्ड हुआ जा रहा है। मुझे जरा सोचने दो।"

जरा सोचने दो !

पागल क्या क्या सोचते होंगे ?

या वे सोच सोचकर ही पागल होते होंगे ?

क्या सुचिन्ता भी धीरे-धीरे पागल हुई जा रही हैं ?

"डाक्टर पालित ने कल उन्हें एक बार देखना चाहा है।"

निरुपम ने नजदीक आकर अत्यन्त निर्वैयक्तिक रूप से कहा। उसने कोई सम्बोधन भी नहीं किया। उन्हें मतलब किसको, इस बारे में उसने किसी का नाम नहीं लिया।

फिर भी सुचिन्ता को जवाब देना ही पड़ा।

और चारा ही क्या था।

'ठीक है, ले जाना। कब ले आने के लिए कहा है ?"

"यही, जैसे जाते हैं, करीब ग्यारह बजे।'

"कल तुम्हारा कालेज नहीं है ?" सुचिन्ता ने बड़ी सावधानी से पूछ लिया।

"हो भी तो क्या किया जा सकता है।" निरुपम ने जवाब दिया, "जाना तो पड़ेगा ही।"

सुचिन्ता थोड़ा रुककर बोली, "पता बता देने से क्या मैं सुबल को लेकर वहाँ नहीं जा सकती ?'

"तुम ?"

"कोशिश करने मे हर्ज क्या है।"

'ऐसी जरूरत पडने पर कोशिश करना" निरुपम ने कोमल स्वर म कहा, "यह सारा बोझ नीता मुझ पर डाल गयी है। मतलब मुझसे आग्रह कर गयी है—"

"ठीक है। तब सुनो, जरा डाक्टर को यह भी बता देना कि पहले से इनकी भूख काफी कम हो गयी है।'

"कहूँगा। लकिन डाक्टर को तो इस बारे म तो कोई सोच-विचार करते नहा देखा।'

"ऐसा नही दखा ?'

"नहीं। कहने पर भी ध्यान नहीं देत। कहते है, उससे कुछ आता-जाता नहीं।"

"डाक्टर से एक बार मेरा भी मिलने की इच्छा होती है।" सुचिन्ता ने गहरी साँस ली।

'उसमे क्या असुविधा है।" निरुपम ने कहा। लेकिन उसने यह नही कहा, "ठीक है मा कल ही मेरे साथ चलो।"

सुचिन्ता कुछ क्षणो तक मौन रहने के बाद बाली, "नीलाजन ने तुम्हे कुछ बताया है ?"

"नीलाजन! मुझे!—किस बारे म ?'

"वह आज जा रहा है।"

"जा रहा है।"

"कही नयी नौकरी पर।"

"आज जा रहा है। कहा नया नौकरी पर।" निरुपम भी चकित हुए बिना नही रह सका। सुचिन्ता न किसी तरह कहा, "हाँ, अभी-अभी उसने खबर दी है। यहाँ से आधी तनख्वाह पर वह जा रहा है। यहाँ रहना उसके लिए असहनीय हो गया है।"

निरुपम बिना कुछ बोले अपनी माँ की ओर देखता रहा।

सुचिन्ता बोलीं, "शायद कभी तुम्हें भी यहाँ रहना असहनीय लगे, असहनीय लगे इन्द्र को भी।—उस दिन तुम लोग भी क्या घर छोडकर चले जाना चाहोगे ?"

"क्या तुम नीलाजन को दोष दे रही हो ?"

निरुपम ने निर्लिप्त होकर पूछा।

"नहीं, दोष क्या दूँगी ? दोष देने को है ही क्या ? असहनीय होना ही शायद स्वाभाविक है। लेकिन बता सकते हो, ऐसी स्थिति म मुझे और क्या करना चाहिए था ? दूसरा कोई होता तो क्या करता ?"

"मैंने ता तुमसे कैफियत नही मांगी, मां।'

अचानक उत्तेजित उद्वेलित होकर सुचिन्ता बोली, "क्या नहा मांगत ? वहा ता उचित हाता। तुम लाग बडे हा गये हा, क्या तुम लोग मरे अभाव के लिए जवाब तलब नही कर सकते ? मेरा मूर्खता पर अपनी सलाह नहीं द सकते ? मेरी—'

"मैं किसी का किसी बात का गलत नही समझता। लोग अपना राय स चलेंगे, यही तो स्वाभाविक है। और मूर्खता ? ऐसा सोचूंगा ही क्या, फिर उसके बारे म जो वाकई मूर्ख नही है।"

सुचिन्ता क्षुब्ध होकर बोली, "नीलांजन जा रहा, तुम लोगों म स कोई उसे रोकेगा नहा ?'

"इसम रोकने की क्या बात है ? लोग क्या बाहर नौकरी करने नही जाते ?"

"इसी तरह जाते हैं ?'

निरुपम थोडा हँसा, "मां, किसी के जाने क ढग से क्या आता-जाता है। जाना ही सार है।' सुचिन्ता वैसी ही व्यग्रता से बोली, "नीला न तो अपने मन का किया। दायित्व मुक्त होकर सिर्फ अपनी बात सोचकर चला गया। मैं सुशोभन को लेकर क्या करूंगी, यह कहा।"

"अब नये सिरे से तो कुछ भी करना रहा नही मां। और तुम क्या करोगी इस सवाल का भी अब समय नही रहा। यह सवाल पहले दिन ही करना चाहिए था।'

सुचिन्ता बुझकर खामोश हो गयी। थके हुए स्वर मे बोली, "अच्छा, यह सब बातें रहने दो। लेकिन इस कहना जरूरी समझती हूँ कि सुशोभन आजकल थोडा बहुत समझने-बूझने लगे है। अवहेलना, असम्मान, विरूपता आदि बातें उनकी पकड म आने लगी है।'

निरुपम थोडी चुप्पी के बाद बोला, "अवहेलना, असम्मान। कम से कम मेरी ओर से ऐसा कुछ भी नही हुआ है। होगा भी नही। लेकिन दूसरों के लिए मैं क्या कह सकता हूँ।"

सुचिन्ता ने आज क्या अपने लडके के साथ लडना ही तय कर लिया था ? जैसा एक बार सोने के कमरे के बँटवारे को लेकर किया था ?

उनकी सभी लडकों से तटस्थता थी। सिर्फ निरुपम से ही थोडी-बहुत बातचीत हो जाती थी। लेकिन बातें होती थीं क्या इसलिए सुचिन्ता झगडा करना चाहेगी ? —"अवहेलना, असम्मान भले ही नही करते होंगे, लेकिन उनके प्रति तुम लोगों का दृष्टिकोण संतापप्रद नही है। इसलिए वे इस बात को कहते हैं।"

सुचिन्ता की बातों म शिकायत थी।

'संतोषप्रद !''

निरुपम ने कहा, "सन्तोप-असतोप का सवाल अब इतने दिना के बाद क्या उठ रहा है, मैं नही समझ पा रहा हूँ। हम लोगा के सतुष्ट-असतुष्ट होन से क्या आता-जाता है ? क्या तुम्ह नये सिरे से किसी बात को लेकर असुविधा हो रही है ?"

"मुझे असुविधा ? असुविधा ? क्या मैं अपनी असुविधा की बाते कर रही हूँ ?" सुचिन्ता तमतमाये चेहरे से बोली, ' मेरे कहन का मतलब है कि बीच-बीच म सुशोभन की चेतना लौटने लगी है, अगर उस समय वह अपने प्रति दुराग्रह, अवहेलना की बात महसूस करके वह आहत हो और फिर से—"

"मुझे क्या करने के लिए कह रही हो, यह नही समझ पा रहा हूँ।'

सुचिन्ता बोली,"किसी कडे परिश्रम की बात नही कह रही हूँ, थाडा सहृदयता पूर्ण व्यवहार करने के लिए ही कह रही हूँ। उनसे थोडा आत्मीय व्यवहार, बस यही—"

निरुपम ने शात गले से कहा, "कोशिश करूँगा। भरसक कोशिश करूँगा। लेकिन अगर कुछ अधिक की ही मुझसे आशा करती हो तो यह तुम्हारी भूल होगी।"

"आशा करूँगी ? तुम लोगा से कुछ अधिक की ही आशा करूँगी ? नही नीरू, मैं इस दुनिया म कही भी किसी से कोई आशा नही करती, सिफ एक बीमार व्यक्ति के लिए—थोडी सहानुभूति की भाख माग रही हूँ।"

निरुपम के चेहरे पर एक बारीक मुस्कान फूट पडी, "बीमार आदमी की बात सोच-सोचकर अगर स्वस्थ व्यक्ति भी बीमार होने लगे तब बताओ किसके प्रति यह करुणा और सहानुभूति प्रकट की जाएगी ? अत मे यह करुणा सहानुभूति की धारा ही सूख जाएगी।"

सुचिन्ता ने इस व्यग्य का कोई परिहार नही किया ? नही, उन्होंने ऐसा नही किया। शायद वे कर ही नही पायी। ताखे गले से बाली, "सहज ही सूख जाती है नीरू ? ऐसा नही हाता। किन्ही विशेष स्थितियो म पुन॰ करुणा की धारा फूट पडती है। सिफ गुरुजनो का अपदस्थ करन म ही इस युग म तुम लोगा की वीरता रह गई है। इसीलिए नीलाजन कहाँ जा रहा है, इसे बिना बताये घर छोडकर चला गया, इन्द्र एक लडका के साथ खूब घूमता-फिरता रहता है, और तुम—"

"मेरी बात रहन दो माँ। मैं पहले जैसा था, वैसा ही हूँ और वैसा ही रहूँगा। यह कहकर निरुपम चला गया।

सुचिन्ता स्तब्ध होकर खडी रही।

लेकिन सुचिन्ता कब तक यू ही खडी रहती। घडी देखकर उन्हे सुशोभन के

नहाने का वक्त याद आ गया। इस बात को भूलकर वे विद्रोह करके बैठी रहतीं, सुचिन्ता के लिए यह संभव नहीं था।

मकड़ी की तरह सुचिन्ता खुद अपना ही भरम-जाल बुन रही थीं।

नीलांजन के जाने के कारण घर में स्तब्धता छा गयी थी।

यहाँ तक कि सुबल नौकर तक, जो बेडिंग सूटकेस नीचे ले जाने के लिए खड़ा था, स्तब्ध था। नीलांजन का इस तरह से चले जाने का निर्णय सहज रूप से बाहर नौकरी के लिए जाने का निर्णय नहीं था, सब लोगों के मन में रह-रहकर यही खटक रहा था।

इन्द्रनील कृष्णा के परिवार के साथ पिकनिक पर जाने के लिए भोर ही में निकला था, अब जाकर लौटा और लौटते ही इस तरह से नीलांजन को बाहर जाते हुए देखकर चौंक गया।

इन दिनों बातें करते रहने के कारण इन्द्रनील के मन में जो एक जड़ता और सकोच घर कर गया था वह मिट चुका था। इसलिए वह तुरन्त बोल पड़ा, "बात क्या है मँझले भैया? इसके मतलब?"

नीलांजन ने कहा, "व्यवस्था करने लायक कोई मतलब नहीं है। बाहर एक नौकरी मिली है, वहीं जा रहा हूँ।

"बाहर? कहाँ पर?"

"बँगलौर में।"

अपने कमरे में सुचिन्ता ने इस संवाद से जाना कि उनका लड़का कहाँ जा रहा है।

इन्द्रनील ने कहा, 'यह तो बड़ा अच्छा हुआ। बड़े मजे से सरके जा रहे हो। जान छूट गयी।"

सुचिन्ता अपने सबसे छोटे सुपुत्र की बातें सुन रही थीं। घर छोड़कर चले जाने से मँझले भैया की जान परेशानी से छूट रही थी, अपने भाई के प्रति वह यही अभिनन्दन व्यक्त कर रहा था।

इस बात के जवाब में जो नीलांजन ने कहा उसे सुचिन्ता सुन नहीं पायीं। नीलांजन की आवाज बहुत धीमी थी। उधर इन्द्रनील मुखर होकर कह रहा था, "मेरे लिए भी कोई नौकरी जुटाने की कोशिश करना। फिर मैं भी किनारा कर लूँ।"

सुचिन्ता के बेटे किनारा कसने की तैयारी में लगे थे। बाहर कोई भी नौकरी जुट जाने से ही उनके लिए रास्ता साफ हो जाएगा। यहाँ से उनकी जान छूट जायेगी।

"तुम तो मजे में हो।" नीलांजन ने अपने छोटे भाई से कहा।

"कह सकते हो। घर से जितनी देर तक बाहर रह पाने के लिए जो भी

साधना सभव है, वही करता फिर रहा हूँ। सिर्फ खाने और साने के कारण ही यहाँ बँधा हुआ हूँ, इसकी चिन्ता से मुक्त होते ही यहा एक घटा रहना भी गवारा नही करूँगा।"

इस वार नीलाजन ने तीखे विद्रूप भरे लहजे म कहा, "लेकिन तुम्हे क्या इतना असहनीय लग रहा है। तुम तो अपने आचरण से सिद्धान्तवादी नही लगते।"

"सिद्धान्त-विद्धान्त मैं नही जानता मँझले भैया! जो अच्छा नही लगता, उसे सहन नही कर पाता, यही साफ बात है। खैर, जाने दो। चलो, तुम्हें गाडी पर चढा आऊँ। भोजन कर लिया है तुमने?"

"स्टेशन मे कर लूगा।"

"स्टेशन मे खा लोगे! क्यो अभी तो आठ बज रहे हैं, बिना किसी परेशानी के—"

"नही, वही सुविधाजनक होगा! सुवल इन्द्र नीचे ले चलो।"

सुविनय ने निवेदन करते हुए कहा, "पहले एक टैक्सी बुला लेना उचित न हागा?

नीलाजन बोला, 'नही, बाहर निकलकर कोई टैक्सी पकड लेंगे। इन्द्र तुम चलना चाहते हो तो चलो, हालाकि इसकी कोई जरूरत नही थी।"

"जरूरत तुम्हे भले न हो, मुझे है। तुम्हारा पता-ठिकाना मालूम कर लेना जरूरी है। कौन जानता है किसी दिन मुझे भी कलकत्ता छाडकर तुम्हारे यहा जाकर ही आश्रय लेना पडे। मुझे ता तुमसे बेहद ईर्ष्या हो रही है।"

नीलाजन की नौकरी कैसी है, उसका भविष्य कैसा है, इन्द्रनील को इसकी परवाह नही थी। नीलाजन घर छोडकर जा रहा था उसके मतलब की यही बात थी। इतनी ही बात लेकर नीलाजन से ईर्ष्या की जा सकती थी।

"मेरी ट्रेन का वक्त हो गया है।" नीलाजन ने इतना ही कहा।

मा के कमरे के पास पहुँचकर उसने यह सूचना दी।

इतना ही पर्याप्त था।

कोई निरपेक्ष व्यक्ति वहा होता ता वह नीलाजन की ही प्रशसा करता। लडके के बाहर जाते वक्त जो माँ अपने अह को लेकर अपने कमरे म ही बैठी रहती है, उतावली होकर बेटे के नजदीक नही आती, उस माँ के प्रति किसकी सहानुभूति हागी? सभी उसे धिक्कारेंगे ही।

शास्त्रो में भी कहा है, "स्नेह निम्नगामी होता है।"

बालचाल मे भी कहा जाता है, "भले ही पुत्र कुपुत्र हो—"

नीलाजन ने इतना कहकर अपनी ओर से बहुत कुछ किया है।

लेकिन छी छी सुचिन्ता न यह क्या किया?

वे अपने कमरे मे ही बैठी रही।

बाहर निकलकर नहीं आयी। विदा होते समय बेटे को उन्होंने आशीर्वाद भी नहीं दिया। इस छोटे से कमरे में वह कर क्या रही थी?

जो बाहर निकलकर आये, वे सुशोभन थे।

वे दूसरी तरफ वाले कमरे से भारी-भारी कदम रखते हुए बाहर निकल आये।

सारी चीजों पर एक बार अपनी नजरें फेरकर वे अचानक डाँटते हुए बोले, "तुम लोगों ने समझ क्या लिया है, जो सब लोग यहाँ से चले जा रहे हो?"

उनकी बात का इन लोगों ने कोई जवाब नहीं दिया। बल्कि अवहेलना भरी नजरों से देखकर नजर घुमा ली। लेकिन हमेशा से खामोश रहने वाला सुबल अचानक बोल पड़ा। उसकी बातों में श्लेष था इसमें कोई संदेह नहीं था। उसने कहा—

"आप तो यहाँ हैं ही बाबू, यही पर्याप्त है।"

अचानक सुशोभन चीख पड़े, "तुम खामोश रहो। अपनी औकात न भूलो। मैं इन लड़कों से बातें कर रहा हूँ।"

"सयाना पागल बोचका आगल।" इसे बुदबुदाकर सुबल ने छोटे बेडिंग को कंधे पर रखा और चमड़े के भारी सूटकेस को हाथ में लेकर नीचे उतर गया।

सुशोभन नजदीक चले आये।

बोले, "क्या तुम लोग नीता के पास जा रहे हो?"

इन्द्रनील ने जरा मजा लेने के लिए कहा, "नीता के पास क्या जाऊँगा? वहाँ जाने की हम लोगों को जरूरत क्या है?"

"जरूरत नहीं है। नीता से मिलने की जरूरत नहीं है? तब तुम लोगों को जाने की जरूरत ही क्या है?"

इन्द्रनील ने कुछ ऊँचे स्वर में कहा, "क्यों, जाने से तो अच्छा ही होगा। घर में इतने सारे लड़के हैं। इतने लड़के तो आपको अच्छे नहीं लगते हैं न?"

सुशोभन ने तुरंत सहमति में सिर हिलाया, "सच कहते हो। बात सही है। लेकिन सबके चले जाने से सुचिता रोने लगेगी।"

"नहीं, रोयेंगी क्यों?" पागल को सम्मान देने की जरूरत नहीं थी, उसके सामने शिष्ट होने की भी कोई जरूरत नहीं थी, इसलिए इन्द्रनील तीखे स्वर में बोला, "आप तो हैं ही।"

"हाँ, मैं तो हूँ ही।" अचानक सुशोभन गंभीर होकर खीझते हुए बोले, "तुम लोगों की बातें अच्छी नहीं हैं, समझे? बहुत खराब। आगे से अच्छी तरह से बातें करना सीखो। नीता से सीख लेना। नीता तो तुम लोगों की तरह नहीं दिखती है। तुम लोगों की तरह ऐसी बातें नहीं करती है।"

भगवान जाने इन्द्रनील कुछ और कहता कि नहीं, लेकिन ठीक उसी समय

दूसरी तरफ के छोटे अँधेरे कमरे के दरवाजे पर एक छायामूर्ति आकर खडी हो गयी। एक वेपहचानी आवाज सुनाई दी, "सुशोभन तुम अपने कमरे मे जाओ। तुम्हे बाहर आने की जरूरत नही है।"

वह छाया फिर कमरे के अँधेरे मे विलीन हो गई।

सुशोभन भी तेजी से अपने कमरे मे घुसकर बिस्तरे पर बैठकर वडबडाने लगे, "जरूरत नही है। जरूरत नही है! जरूरत नही है मतलब? उनके जाने के बाद तुम अकेली बैठकर रोओगी, क्या मैं इस बात को नही जानता हूँ? वे तुम्हे प्यार नही करते, हमेशा डाँटते रहते है, फिर भी तुम उनके लिए आँसू बहाओगी। सुचिन्ता, अब अधिक बेवकूफ मत बनो।'

उस खामोश मकान से नीलाजन और इन्द्रनील खामोशी से निकल गये।

नीता इस परिवार की लडकी नही थी। लेकिन नीता के चले जाने के साथ-साथ जैसे बहुत बडा शून्य महसूस होने लगा था। ऐसी स्थिति मे नीलाजन का घर से चला जाना किसी को महसूस ही नही हुआ।

नीलाजन कल रात मे चला गया था। दिनचर्या म सुबह से कोई परिवर्तन नही हुआ। नीलाजन के कमरे के दरवाजे पर बादामी रग का भारी पर्दा जैसे लटकता था, वैसे ही लटकता रहा। उसके दूसरी ओर एक भयकर खालीपन विराजमान था, उसे बाहर से देखकर बिल्कुल नही महसूस किया जा सकता था।

नीलाजन के घर मे न होने को सिर्फ सुबल ने ही महसूस किया, खासकर सुबह चाय के वक्त और भात पकाने के वक्त।

लेकिन शायद सुचिन्ता भी नीलाजन के जाने को, उसके चले जाने को महसूस करना चाहती थी इसलिए नीलाजन के कमरे का पर्दा हटाकर वह भीतर चली गयी।

नही सुचिन्ता की इस दुर्बलता पर किसी की नजर नही थी।

थोडी देर पहले ही निरुपम सुशोभन को डाक्टर के पास ले गया था। इन्द्रनील किसी को कुछ बताए बिना कही गया था। नौकरानी काम करके चली गयी थी और सुबल को सुचिन्ता ने अभी-अभी फल लाने के लिए बाजार भेजा था।

फिर भी सुचिन्ता का जाने कैसा डर लग रहा था।

जैसे सुचिन्ता की इस कमजोरी को कही से कोई देखकर हँस पडेगा। असाधारण होना कितना कष्टकर होता है! साधारण होने म बडा सुख रहता है।

साधारण होती सुचिन्ता तो अभी वे लडके की चारपाई की पटिया पर अपना सिर रखकर रोने लगती, जिस चारपाई से तोशक, तकिया और चादर वह ले गया था। सिर्फ दरी बिछी हुई थी।

नीलांजन की कठोरता बिल्कुल आँखों के सामने थी। —नंगी चारपाई के प्रतीक रूप में।

सुचिन्ता इस पर बैठ न सकी।

कुर्सी पर भी नहीं। कहीं पर भी बैठ नहीं सकी। वे सिर्फ सारी चीजों को स्तब्ध होकर देखती रहीं। नीलांजन की मेज-कुर्सी, छोटी आलमारी, कपड़े का रेक, सूटकेस, तिपाई, टेबल लेम्प—मतलब सारी चीजें पड़ी हुई थीं।

यहाँ तक कि चारपाई के नीचे उसका मन पसंद पैर पोंछने वाला मैट भी खामोश पड़ी हुई थी। सामानों का जरा-सा भी इधर-उधर होना नीलांजन को पसंद नहीं था। अब इन सबके बिना उसका काम कैसे चलेगा?

क्या वह सारी चीजें फिर से जुटा लेगा?

पुरानी चीजों को मिट्टी के ढेले की तरह फेंककर क्या वह फिर से नया संग्रह करने के नशे में डूब जाएगा?

फिर भी कोई उसकी निन्दा नहीं करेगा! यह कोई नहीं कहेगा कि नीलांजन, यह तुम क्या कर रहे हो?"

नीलांजन कहेगा 'मेरे लिए असहनीय हो गया था'—चार जन समर्थन में कहेंगे—

"ठीक ही किया। क्या उस हालत में रहा जा सकता था?"

सुचिन्ता सोचने लगी, वह फिर से सारी चीजें इकट्ठी कर लेगा। इसके साथ ही सोचने लगी कि नीलांजन के चले जाने के पीछे क्या वाकई वे ही जिम्मेदार थीं?"

नीता की तरफ बहुत बार कई तरह की नजरों से सुचिन्ता के लड़के ने दृष्टिपात किया था। क्या उस पर सुचिन्ता ने गौर नहीं किया था?

क्या सुचिन्ता नीता को अभिशाप देगी?

क्या नीलांजन लौटकर नहीं आएगा?

नीलांजन की किताबें तो यहीं पड़ी हुई थीं।

कभी न कभी वह किसी अवकाश में इन किताबों के लिए घर जरूर आयेगा। उस दिन क्या सुचिन्ता सहज सामान्य हो पाएँगी? अपने लड़के का हाथ पकड़ कर कहेंगी, "अब तुम नहीं जाओगे। तुम्हारे जाने से मुझे तकलीफ होगी।'

लेकिन सुचिन्ता ऐसा कह नहीं पायेगा।

फिर भी सुचिन्ता चारपाई के पटिये पर हाथ रखकर स्तब्ध होकर सामने रखे कपड़े के रैक की ओर एकटक देखे जा रही थी रैक बिल्कुल खाली था बल्कि उसके खालीपन को बढ़ाने के लिए ही जैसे उसके निचले राड पर एक फटा हुआ तौलिया और अधमैली बनियान झूल रही थी। इनको बेकार समझकर नीलांजन फेंक गया था।

ठीक उस समय शायद सुचिता के गालो की चमडी की सम्वेदना खत्म हो गयी रही होगी, फिर सामने कोई शीशा भी नही था इसलिए सुचिता को महसूस नही हो रहा था कि उनके गालो से होती हुई आँसुओ की अविरल धारा बह रही थी।

"माँ!"

सुचिन्ता चौंक गयी।

घर मे कोई नही था, इस तरह से उन्ह किसने बुलाया ? और 'माँ' कहकर ही क्यो बुलाया ? सुचिता के लडके तो कभी इस तरह से 'मा' कहकर बात नही करते।

क्या यह आवाज सुचिता के मन की व्याकुलता और उनकी कामना की आवाज थी ? उनका हृदय बुरी तरह धडकने लगा।

सुचिन्ता झटपट उस कमरे से बाहर चली आयी। उन्होने देखा सामने ही निरुपम और सुशोभन खडे हुए थे। वे लोग लौट आये थे। सुचिन्ता बहुत देर तक अन्यमनस्क रही थी ? लेकिन क्या निरुपम न ही सुचिता को इस तरह से बुलाया था ?

वे समझ नही पायीं। सुशोभन आगे बढ आये, "तुम कैसी अन्यमनस्क थी सुचिन्ता ? सारा मकान खुला पडा है। हम लोग आकर तुम्हे ढूढ रहे थे और तुम्हे पता ही नही चला। अगर कोई चोर आकर तुम्हारा सब कुछ चुरा ले जाता, तब ?"

"चोर मेरा क्या ले जाता ?"

निरुपम चुपचाप अपने कमरे म चला गया। उस ओर सुचिन्ता ने देखा, फिर नजरें घुमाते हुए बोली, "चलो, तुम्हारे भोजन का समय हो गया है।" गालो की सवेदना शायद लौट आयी थी, इसलिए वे उसे दूसरो की नजरो से छिपाने की कोशिश कर रही थी।

"हो जाएगा, हो जाएगा।" सुशोभन ने कहा, "तुम्हे तो सिर्फ भोजन की चिता पडी रहती है। जरा बैठो न, थोडी देर।"

"अच्छा बैठ गयी। अब कहो तुम क्या कहना चाहते थे ?" सुचिन्ता बोली।

सुशोभन गभीर होकर बोले, "इस तरह से क्या कहा जा सकता है ? सब गडबडा जाता है। लेकिन अभी तो तुम रो रही थी सुचिन्ता। फिर भी—"

"बडी आफत है सुशोभन। मैं रोऊँगी क्यो ? हर समय तुम मुझे रोते हुए ही देखते हो।"

"नही रो रही थी ? तब ठीक है। लेकिन तुम्हारा चेहरा काफी बदला हुआ लग रहा है। पहले तो लगता था—दिनाजपुर म तुम हरदम हँसमुख बनी

रहती थी और इस समय हरदम लगता है तुम रो रही हो। लेकिन सुचिन्ता तुम्हारा यह बडा लडका बिल्कुल गुस्सैल नही है। उसने मेरा काफी ख्याल रखा था। मेरा सम्मान भी किया था।"

"तुम्हारा ख्याल रखा था! सम्मान किया था!"

"हाँ, वह मेरी नीता को भी प्यार करता है।"

सहसा मन के सारे बोझ को फेंककर सुचिन्ता खिलखिला पडी। बोली, "अच्छा यह बात है? लेकिन यह बात तुम्हे मालूम कैसे हुई? क्या उसने तुम्हें बताया था?"

सुशोभन असतुष्ट लहजे म बोले, "मुझे क्यो कहेगा? न कहने से क्या समझा ही नही जा सकता? यू ही नही कहता कि तुम मुझे पागल समझती हो सुचिन्ता।"

लेकिन अब तो लग रहा था कि सुचिन्ता ही पागलपन कर रही थी। इसी लिए अचानक सुशोभन के एकदम नजदीक जाकर बोली, "पागल क्यो समझूगी? बिना बताये हुए तुम समझ कैसे लेते हो, जरा यही जानना चाहती हूँ। मुझी को लो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ कि नही, क्या तुम इसे समझ पाते हो?"

सुशोभन कुछ और गभीर हो गये। धीरे से उन्होंने सुचिन्ता को हटाया और थोडी दूरी बनाकर बोले, "बिल्कुल समझता हूँ। लेकिन मेरे इतने नजदीक तुम्हे नही आना चाहिए सुचिन्ता, नही तो तुम्हारे बेटे तुमसे नाराज होकर यहाँ से चले जाएँगे।"

अचानक सुचिन्ता झल्लाकर चीख पडी, "जाएँ, सभी चले जाएँ। मैं अब किसी की नाराजगी की परवाह नही करूँगी। आखिर करूँ भी क्या? वे सब प्रेम कर सकते है, जिससे चाहे अपनी इच्छानुसार प्रेम कर सकते है, सिर्फ मेरे वक्त ही यह अपराध हो जाता है?"

सुशोभन थोडा डर गये।

भयभीत होकर बोले, "सुचिन्ता तुम भी नाराज होने लगी हो? किसी को नाराज देखकर मेरे दिमाग म रेलगाडी चलने की-सी घडघडाहट होने लगती है। तुम्हे नही लगता?"

लेकिन रेलगाडी की घडघडाहट क्या सिर्फ दिमाग मे ही होती है? सिर्फ सुशोभन के दिमाग म? क्या यह घडघडाहट सुचिन्ता के दिल म नही होती? कभी रेलगाडी चलने की तरह होती है तो कभी हथौडी के आघात की तरह।

लेकिन सुचिन्ता का दिमाग खराब नही है, इसलिए तो इनको अपने दिल म दबाकर उन्हे निरुपम के पास जाकर खडा होना पडता है, "डॉक्टर पालित ने क्या कहा? इस बार तो उन्होने काफी दिनो के बाद देखा था।"

निरुपम ने हाथ की पुस्तक मोडकर सिर उठाकर कहा, "उनके अनुसार तो आशाजनक सुधार हुआ है।"

"आशाजनक सुधार देखा।"

"यही तो कहा। और यह एक नयी दवा भी दी है—" सामने टेबल से एक पैक की हुई शीशी लेकर निरुपम ने सुचिन्ता की ओर बढा दी। बोला, "कैप्सूल टैबलेट। रोज सोने से पहले एक।"

सुचिन्ता जैसे कुछ और सुनना चाहती थी, कुछ विस्तार से, यही कि डॉक्टर ने किस सूत्र से यह जाना कि रोगी की आशाजनक उन्नति हो रही है।

माँ को चुपचाप खडे देखकर जाने क्या सोचकर वह थोडा घरेलू अदाज मे बोला, "दवा नयी निकली है। डॉक्टरो के सर्किल म इस दवा को लेकर काफी हलचल है।"

विशेषकर कमजोर स्नायु वालो को इससे काफी फायदा हुआ है, मतलब हताश और अवसादग्रस्त रोगी भी—"

"डॉक्टर ने उनको किस वग म डाला है?" सुचिन्ता बीच म ही बोल पडी।

निरुपम न कामल लहजे मे कहा, "उन लोगो के ढेरा वर्गीकरण हैं। ठीक इस तरह से तो मैंन उनसे नही पूछा लेकिन जैसा उन्होने मुझे समझाया कि जिस तरह से धूप प्रखर होते रहने से कुहासा कट जाता है ठीक उसी तरह से बुद्धि पर जो विस्मृति का कुहासा छा जाता है उसको काटकर किसी प्रक्रिया से फिर से चेतना विकसित होती है। इस दवा से गहरी नीद आती है जिस कारण स्नायुओ को गहरे विश्राम का अवसर मिलता है। इससे उनकी ताकत धीरे-धीरे लौट आती है।"

क्या माँ के प्रति निरुपम के मन मे करुणा उमड पडी थी?

सुचिन्ता के गाल से आँसुओ का दाग क्या अभी तक नही मिट पाया था? क्या इसीलिए निरुपम अपनी माँ से इतने घरेलू लहजे म वातचीत कर रहा था?

"नीता की चिट्ठी आने का अभी समय नही हुआ क्या?"

"हुआ तो है। अगर उसने चिट्ठी भेजी हो तो।"

"बस वही टेलिग्राम आया था।" कहकर सुचिन्ता एकटक देखती रही। क्या सुचिन्ता यह देख रही थी कि एक पागल ने कैसे यह महसूस कर लिया था कि उनका बडा लडका उनकी लडकी के प्रेम मे पड गया है।

लेकिन निरुपम के चेहरे से सुचिन्ता को कोई भी आभास नही मिला।

उसने अपने हाथ की पुस्तक पर फिर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए कहा, "हूँ।"

कृष्णा के माँ-बाप इन्द्रनील पर दबाव डालने लगे थे।

अगर शादी करनी है तो चटपट कर डालो। हम लोगो की लड़की के साथ हरदम घूमते रहोगे और शादी की बात दर-किनार रखोगे, ऐसा नहीं होगा। पिकनिक के दिन ही यह बात बिल्कुल साफ-साफ कह दी गयी थी।

लेकिन इन्द्रनील ने उस दिन की अपनी बात के विपरीत बात कही, "इस समय कैसे शादी की जा सकती है ?"

कृष्णा की माँ गभीर होकर बोली, "कैसे मतलब ? अग्नि नारायण को साक्षी करके और कैसे। तुम लोग हमारी बिरादरी के ही हो, यही हम लोगों का पुण्यफल है ?"

"अभी तो मेरे बड़े भाइयो की शादी नही हुई।"

कृष्णा की माँ लीला कुछ और गभीर होकर बोली, "बड़े भाइयो की शादी नही हुई तो क्या हुआ, तुम भी तो बड़े हो गये हो।"

"शादी कुछ दिन और बाद करने से आप लोगो का क्या आपत्ति हो सकती है ?"

"बहुत आपत्ति है। शत-प्रतिशत आपत्ति है। मूल बात है, अचानक किसी दिन शादी की अनिवार्यता के कारण तुम दोनो रजिस्ट्री मैरेज करके चले आओगे, ऐसा हमे पसद नहीं है। तुम लोगो की किसी तरह की स्वाधीनता मे कभी हम लोगो ने हस्तक्षेप नही किया, किसी बात मे बाधा नहीं दी, इसलिए हम लोगों की भी यह बात तुम्हे माननी चाहिए।"

इस पर भी इन्द्रनील ने कहा था, "इस समय क्या देखकर आप अपनी लड़की मुझे देना चाहती हैं ?"

इस बार कृष्णा के पिता बोले थे। कृष्णा की माँ से भी कही अधिक गभीर होकर। "लड़की देने का प्रश्न अब इस स्थिति मे हास्यास्पद लगता है। सिर्फ सामाजिकता की रक्षा के लिए। कन्यादान का दिखावा करना होगा। क्योकि सभी सब कुछ जानते हैं, सब समझते हैं फिर भी इस नाटक से ही समाज मे अपना मुह दिखलाने लायक रखा जा सकता है।"

"लेकिन विवाह के बाद पत्नी का दायित्व वहन करना भी मेरा कर्तव्य होना चाहिए।"

"कर्त्तव्य का निर्वाह बहुत अच्छी बात है", कृष्णा के पिता बोले, "लेकिन उसके निर्वाह के बिना इस तरह से प्रेम करते रहना मेरी राय मे सबसे अनुचित काम है, मूर्खता की चरम परिणति। ठीक है, सोच लो अगर मेरी लड़की से शादी करने की क्षमता अभी तुममे नही है तो फिर मेरी लड़की से मिलना-जुलना बद कर दो।"

यह सुनकर कृष्णा अपनी आँखो पर रूमाल रखकर सिसकने लगी थी।

यह देखकर कन्यावत्सला माँ को तुरत कहना पड़ा था, "मतलब यह कि उन्होने कहा था, "पत्नी को खिलाने की चिंता तुम्हें अभी से करने की जरूरत नहीं है बेटा। कृष्णा हम लोगो की इकलौती लड़की है, हम लोगो का जो भी है, वह सब कृष्णा का ही है—इसे तो तुम जानते ही हो।'

"लेकिन एकदम से स्टूडेंट लाइफ म शादी कर लेना, यह कैसे सभव हो सकता है, मैं यही सोच रहा हूँ"—इद्रनील न कहा था।

यह सुनकर कृष्णा के पिता बेहद नाराज होकर बाले, "अगर स्टूडेंट लाइफ म प्रेम करके घूमना-फिरना चल सकता है तो फिर शादी मे ही कौन-सी बाधा है, मैं यही नही समझ पा रहा हूँ। शादी करने लायक साहस नही है मगर भले घर की लडकी के साथ मिलने-जुलने का शौक काफी है—क्या यह हास्यास्पद नही है ?"

इद्रनील ने आरक्त चेहरे से कहा, "वाग्दत्त होकर क्या कोई दो-चार साल इन्तजार नहीं कर सकता ?"

"वह जहा होता होगा और जो उसका अनुसरण करते हुगे, मैं उनमे से नही हूँ। मैं जो तुमसे अपनी लडकी की शादी की बात चला रहा हू, इसे मैं बहुत मजबूर होकर ही कह रहा हूँ। तुमसे कही अधिक अच्छे लडके के हाथ म मैं अपनी लडकी का हाथ दे सकता था।"

इद्रनील मुस्कराकर बोला, "'देने' शब्द पर ही तो आपको आपत्ति थी।"

कृष्णा के पिता ने जलती हुई आखा से ताकते हुए कहा, "हाँ, जिसे तुम लोग जान गये हो। तुम लोग, इस युग का सताने, हम लोगा की मजबूरी का फायदा उठा रहे हो। इस सभय के मा-बाप की मजबूरी को सिर्फ कानून का डर ही मत समझना। माता-पिता मजबूर हाते है अपनी ममता के कारण। लडकी के भले-बुरे की बाते साचते रहने के कारण ही ऐसी मजबूरी होती है। पुराने दिन होते तो ऐसी लडकी को ताले म बन्द कर दिया गया होता। या हाथ-पैर बाधकर जहाँ चाहते वही इसकी शादी कर देते।" यह कहकर अपना जलती हुई नजरो से लडकी की ओर कटाक्ष करके वे वहाँ से हट गये।

कृष्णा बैठी हुई रूमाल से अपनी आँखे पाछ रही थी। कृष्णा की माँ न बेटी को सात्वना देकर समझा दिया था। इसके बाद पिकनिक के शोरगुल म सभी व्यस्त हो गये।

उनमे से कोई लडका ताश का जादू दिखलाने लगा। कोई दूसरा हाथ देखने लगा था। हाथ दिखलाने के लिए सभी आग्रही थे। उसने कृष्णा का हाथ देखकर कहा कि कृष्णा का विवाह शीघ्र ही होने वाला है और इद्रनील के बारे म बताया कि इसके हाथ मे विवाह की रेखा हा नहीं थी। इस बात को लेकर बडा मजा हुआ। इद्रनील ने दृढ़ होकर कहा था कि वह भविष्य म इसे साबित कर दिखाएगा कि इन रेखाआ की बात गलत है। भविष्य बाँचने वाला कृष्णा का मौसेरा भाई था। वह मौका निकालकर झटपट कृष्णा की माँ तक यह सूचना पहुँचा पाया कि, "मँझली-मौसी, तुम्हारी लडकी की शादी के मसले को मैंने गति दे दी है।"

सारा दिन खूब शोर-गुल, हँसी-मजाक म बीत गया। कृष्णा के पिता भी किसी के साथ शतरज खेलने म जुट गये थे।

उस दिन इन्द्रनील खूब खुश होकर घर लौटा था। लेकिन घर आकर उसने पाया कि वहाँ की फिजा ही एकदम बदली हुई थी।

हालांकि इधर काफी दिनो से आवहवा अनुकूल नहीं थी। लेकिन नीलाजन के अचानक चले जाने जैसी आवहवा भी नहीं थी।

तब उस समय किससे कृष्णा के पिताजी के प्रस्ताव की चर्चा करता?

इन्द्रनील का घर भी विचित्र था।

बगाल के हजारो घरो से तुलना करने पर भी ऐसा घर नहा मिलेगा।

एकदम अतुलनीय था।

नीता अगर ऐसे समय इस तरह से विदेश न चली गयी होती।

नीता इन लोगो की कोई नही थी, लेकिन इन थोडे से ही दिनो म मानो जैसे इनके घर-परिवार की सदस्य बन गयी थी।

इन्द्रनील ने कई दिनो तक इस पर विचार किया।

सोच-सोचकर वह जाकर एक दिन उस घर म जाकर कह भी आया,"आप लोगो की जैसी खुशी हो वैसी व्यवस्था कीजिए। लेकिन मेरे घर से आप लोगो को न कोई सहायता मिलेगी। और न कोई सहयोगिता ही अगर इसम आपत्ति न हो तो परपरागत हिन्दू विवाह म मुझे कोई दिक्कत नही है। सिर्फ कृपा करके शादी के मुकुट-वुकुट को अलग ही रख दीजिएगा।"

कृष्णा की माँ भौह सिकोडकर बोली, "चीज काई भी नही छोडी जाएगी। तुम लोगो की तरह दुनिया मे अकेला घर मरा तो नही है। ठीक है मेरे हो मकान से ही शुद्धि श्राद्ध आम्युदयिक वगैरह सभी हो जाएँगे।"

इन्द्रनील चौंकता हुआ बोला, "श्राद्ध मतलब? श्राद्ध क्या है?"

कृष्णा की माँ ने क्षण भर भावी जामाता की ओर देखा फिर बोली, "श्राद्ध नही जानते? शादी के समय लडकी की माँ को श्राद्ध करना पडता है। पहले कभी नही सुना?"

होने वाली सास के इस श्राद्ध-कौतुक को अच्छी तरह न समझने के बावजूद इन्द्रनील कृष्णा के पास जाकर बोला, "ऐसे अर्यहीन बेमतलब के आचार अनुष्ठान की भला क्या जरूरत है, बता सकती हो?'

"बिल्कुल जरूरत है।" कृष्णा ने तर्क करते हुए कहा, "क्यो नही है? दुनिया म हर जगह, हर सभ्य या पिछडी जातियो म शादी के वक्त तरह-तरह के अनुष्ठान होते हैं।"

"लेकिन यह नाई, पडित, श्राद्ध, पिंड—"

"इससे कुछ मतलब नहीं, उपलक्ष्य में समाज के सभी वर्गों के लोगों की थोडी-बहुत आमदनी हो जाए यही बात है।"

"इसका मतलब सारी जनता को घूस देकर शादी की अनुमति ले के लिए प्रार्थना करनी होगी।"

"घूस क्या ? उन्हें 'प्रसन्न किया' कह सकते हो। सभी को प्रसन्न करके और सभी की शुभ कामनाएँ लेकर जीवन में आगे बढ़ने की कामना की जाती है। यही असली बात है।"

"उस युग में इसकी जरूरत रही होगी, लेकिन अब यह बिल्कुल बेकार है।"

"होने दो—" कृष्णा ने नखरे से कहा, "कान्ट्रैक्ट पर दस्तखत करके शादी कर लेना मुझे अच्छा नहीं लगता है। शादी भी भला कोई व्यवसाय या दुकान-दारी है ?"

इंद्रनील मुस्कराकर बोला, "नहीं है मतलब ? बिल्कुल ऐसा ही है।"

"ऐसा ही है ?"

"क्या नहीं ! तुम लोगों की शादियों के मंत्र क्या हैं ? 'मेरा हृदय तुम्हारा हो' कहकर दान-पत्र लिखने के साथ ही साथ क्लेम भी किया जाता है, खैर यह तो ठीक है, लेकिन इसके बदले 'तुम्हारा हृदय भी मेरा हो।' क्या "बिल्कुल एकतरफा नहीं है, और जो एकतरफा नहीं है। वही व्यवसाय है।"

"बहुत खूब ! तर्क जोरदार है।"

"खंडन कर सकती हो ?"

"कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम्हें देखकर लगता है कि तुम पर ज्यादती की जा रही है। मैं इससे खुद को अपमानित महसूस कर रही हूँ, यह जानते हो न ?"

"लडकियाँ तो जाने किन-किन बातों से अपने को अपमानित महसूस करती रहती हैं। समझ लो, अगर मैं कह बैठूं कि तुम्हारे चेहरे का सौंदर्य तुम्हारा नहीं है, नकल किया हुआ है, भौंहें नकली हैं, आँखें कटावदार बनायी गयी हैं, ओठ रंगीन हैं, गालों पर पुताई हुई है, यह सब सुनकर तो तुम्हारे अपमान की परा-काष्ठा ही हो जायेगी।"

कृष्णा ने तीखे गले से कहा, "बिल्कुल नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारा अभियोग आधारहीन है।'

"आधारहीन है। तुम कहना चाहती हो तुम्हारे चेहरे पर जो भी है सब वास्तविक है।"

'चाहने का क्या मतलब ?" कृष्णा रुआंसी होकर रूमाल से अपनी भौंह घिसने लगी। देखो, नकली भौंहों को मिटा पाते हो कि नहीं। देखो, आँखों पर भी कोई कारीगरी की गई है या—"

"बस, बस, बहुत हुआ।" इन्द्रनील हँस पडा—"अगर ये सब तुम्हारी अपनी चीजें हैं तो अब एक दिन के लिए भी तुम्हें दूसरे बबर पुरुषो की नजरो के सामने अकेला नही छोडा जा सकता। इन दिनो बाजार म ऐसी खालिस चीजें मिलना दुलभ है।"

झूठमूठ के झगड स उबर कर फिर से दोनो हँसी-खुशी भरे मूड म आ गये। कृष्णा सोचने लगी कि इस बेपरवाह स्वभाव के कारण ही मैं इस पर मुग्ध हूँ। अगर वह गद्‌गद होकर हर समय प्रेम के डायलॉग बोलता रहता तो शायद मैं बर्दाश्त नहीं कर पाती। उधर इन्द्रनील सोच रहा था, मारो गोली सब को, जो होता है होने दो। घर की आबहवा अब बर्दाश्त नही होती।'

इन्द्रनील घर मे कम ही रहता। जितनी भी देर रहता वह मुह बनाए रहता मानो उसे जबरन नीम का काढा पिला दिया गया हो।

सुचिन्ता सुशोभन के सामने बैठकर अखबार पढ रही थी। वह सुशोभन के सान्निध्य मे बिल्कुल डूबी हुई थी। इस दृश्य को हजारो तक देकर भी प्रसन्नचित होकर सहा नही जा सकता था।

नीता के पिता होने के नाते सुशोभन के प्रति जो भी सहानुभूति उत्पन्न होती वह सब मा का प्रेमी होने के नाते क्षण भर म खत्म हो जाती थी।

इधर सुचिन्ता भी जैसे पहले से अधिक साहसी हो गयी थी। कहीं अधिक लापरवाह हो गयी थी। लडको की पसद-नापसद की वह अब अधिक परवाह नही करती थी।

"नीता की चिट्ठी।"

चिट्ठी सामने की मेज पर रखकर निरुपम चला गया। उसी मेज के आमने-सामने सुशोभन और सुचिन्ता बैठे हुए थे। सुचिन्ता की आँखो के सामने एक पुस्तक खुली हुई थी। शायद वे उसे सुशोभन को पढ़कर सुना रही थीं। जिसे देखकर सुचिन्ता के बडे लडके की शात दृष्टि शायद कुछ तीखी हो गयी थी।

नीता की चिट्ठी!

सुचिन्ता खिल उठी। उन्होंने उसे झपट कर उठा लिया। लेकिन तब तक सुशोभन ने झुककर चिट्ठी ले ली थी।—"नीता की चिट्ठी। क्या उसने मेरी बात लिखी है?"

सुशोभन का चिट्ठी वाला हाथ कॉपने लगा। उन्होंने कई बार सरसरी नजर से चिट्ठी पर आँखें फेरने के बाद हताश होकर कहा, "नीता ने इतना ढेर सारा क्या लिखा है। कुछ समझ म नही आ रहा है।"

वे समझ जाएँगे इसकी आशा किसी ने भी नहीं की थी।

सुबह अखवार आते ही व सबसे पहले उसे उठाकर उस पर अपनी नजरे गडा देते लेकिन थोडी देर बाद ही उसे फेककर अपन माथे पर हाथ फेरते हुए कहते, "इतनी ढेर सारी बाते लिखने की क्या जरूरत है जिनका मतलब हा समझ म न आये।"

सुचिन्ता मुस्कराकर कहती, "क्यो तुम्ह क्या ये सब बेकार बाते लिखी हुई लगती हैं?"

"बेकार नही हैं?" सुशोभन वैश म आकर कहते, "पढते समय दिमाग मे जाने कैसा गड्डमड्ड हो जाता है। यह बात तुम्हे नजर नही आती?"

सुचिन्ता ने नजरे उठायी, फिर वाली' 'दिमाग म जो कुछ होता है, क्या वह नजर आता है?"

"नजर नही आता? वाह खूब कहा कि नजर नही आता।"

"मुझे तो नजर नही आता। तुम देख सकते हा? मेरे दिमाग म क्या हा रहा है इसे क्या तुम देख पा रहे हो?"

सुशोभन अचानक खिलखिला पडे। हँसते-हँसते उनका चेहरा लाल हो गया। बोले, "सुचिन्ता तुम्हारी वाते ठीक पागलो जैसी लगती है।"

कमरे के अदर वैठे हुए बडे लडके का चेहरा भी यह सोचकर लाल हो उठता है कि इस तरह से ठठाकर हँसने लायक कौन-सी बातें अखबार मे लिखी होती है। निरुपम ने आज भी अपने कमरे मे बैठे-बैठे हँसने की आवाज सुनी। सोचा नीता की चिट्ठी म इस तरह से हँसने की क्या बात लिखी हुई है?

कई वार पढी हुई चिट्ठी को निरुपम न फिर ध्यान से देखा।

नीता ने लिखा था कि सागरमय को होश जरूर आ गया है और मृत्यु की आशका भी अब शायद नही है। लेकिन डाक्टरो ने आशका व्यक्त की है कि अब वह दुनिया को अपनी आखो से देख नही पायेगा। आधुनिक विज्ञान ने भी सागरमय की आखें वापस दिलाने के बारे म सदेह व्यक्त किया है। सबसे अधिक चोट आखो को ही लगी थी।

नीता ने यह भी सूचना दा थी कि सागरमय की हालत जरा-सा भी सुधरते ही वे लोग उसे सागर मार्ग से वापस ले आयेंगे। वे लोगो से मतलब नीता और सागर के दोस्त शिशिर से था। शिशिर इस दुघटना के दौरान बहुत हो अन्तरग हो गया था। सागरमय की ऐसी हालत देखकर अपना काटिनेटल टूर का प्रोग्राम कैंसिल करके सागर को देश पहुँचाने के लिए उसन नीता की मदद करना तय कर लिया था। शिशिर के अध्ययन की मियाद भो पूरी हो गई थी, यही तकदीर की बात थी।

इसके बाद नीता सुशोभन के बारे म जानने के लिए उतावली और व्यग्र हो

उठी थीं। डॉक्टर ने क्या कहा, हालत अब कैसी है, नीता के न रहने के कारण कोई नया उपसर्ग तो नजर नहीं आया ? आदि-आदि।

नीता के न रहने पर।

निरुपम ने सोचा अगर लक्षण बदले भी हैं तो इस पागल आदमी के नहीं बल्कि स्वस्थ व्यक्तियों के ही बदले हैं। अब सुचिन्ता ही बेपरवाह हो गयी थीं। नहीं तो क्या रोगी के कमरे में रात बारह बजे तक नीली बत्ती जलाकर वे उन्हें सुलाने की कोशिश करतीं। कमरे में किसी के न होने पर क्या सुशोभन को नींद नहीं आती थी ?

बल्कि आगे खराब लगने वाली किसी भी बात पर सुचिन्ता कैफियत देने की कोशिश करती थीं। लड़के के ध्यान न देने के बावजूद वे कोशिश करती थीं। लेकिन अब ? सोचने-विचारने के वक्त जैसे फिर एक हथौड़ी की चोट की गयी हो।

सुशोभन इस बार पुनः अट्टहास कर उठे थे। वही आवाज हथौड़ी की चोट जैसी महसूस हुई थी। इसके साथ ही साथ दिमाग के रेशे-रेशे में पिन चुभोने जैसी एक और मधुर तीखी हँसी की ध्वनि सुनाई पड़ी।

नीता ने जो पत्र सुचिन्ता को दिया था उसमें क्या वाकई कोई ऐसा उल्लास जनक समाचार था ? न होता तो इतना हँसने की क्या बात थी ?

लेकिन नीता ने ऐसा कुछ भी नहीं लिखा था। उसमें भी वही था जो निरुपम के पत्र में था। सिर्फ सुचिन्ता को लिखा था, एक अलग चिट्ठी में बड़े भैया को डॉक्टर पालित के बारे में पत्र लिख रही हूँ। सुचिन्ता के पत्र में भी वही सागरमय के दुर्भाग्य की बात लिखी हुई थी।

लेकिन वह चिट्ठी सुचिन्ता पढ़ पायें तब न ?

एक पंक्ति पढ़ते न पढ़ते सुशोभन असहिष्णु होकर सुचिन्ता के चिट्ठी वाले हाथ को हिलाते हुए बोले, "यह क्या सुचिन्ता ? तुम मन ही-मन में क्या पढ़ रही हो ? जोर-जोर से नहीं पढ़ सकती ? नीता की चिट्ठी तुम मन-ही-मन पढ़ोगी ?"

सुचिन्ता ने चिट्ठी से नजरें हटाकर कहा, "जरा रुको, पहले मैं पढ़ तो लूँ, फिर जोर-जोर से भी पढ़ूँगी।"

सुशोभन ने धैर्यपूर्वक बैठे रहने की भंगिमा बनायी। इंतजार करने की मुद्रा में दो-चार कदम चहलकदमी भी की, लेकिन यह सब क्षण भर के ही लिए था। इसके बाद दुबारा जल्दी मचाने लगे। बोले, "क्या हुआ सुचिन्ता ? तुम चोरी चोरी नीता की चिट्ठी पढ़ रही हो ? तुम्हारा मतलब क्या है ?"

थोड़ा अनुनय करके सुचिन्ता ने फिर से दो-एक पंक्तियाँ पढ़ी ही थीं कि

अचानक सुशोभन ने उसके हाथ से चिट्ठी खींच ली और उसे लेकर मुट्ठियों में भींचने लगे।

"अरे, यह क्या कर रहे हो ?"

सुचिंता ने हड़बड़ाकर चिट्ठी छीनने की कोशिश की लेकिन पागल से भी भला कोई छीना-झपटी में जीत सका है ?

अचानक सुशोभन कुर्सी लाँघते हुए मेज पर चढ़कर चिट्ठी वाला हाथ ऊँचा उठाकर बोले, अट्टहास करते हुए बोले, "क्या ? मेरे साथ जोर-आजमाइश करके जीत सकती हो ?"

"दुहाई है सुशोभन चिट्ठी को मसलकर मत फेंको। उसे मुझे दे दो। मुझे पढ़ने दो। उसका हाल जानने के लिए मैं उतावली हूँ। अच्छा मैं जोर से पढ़ूँगी। उसे मुझे दे दो।"

सुचिन्ता नजरें ऊपर उठाए हुए खड़ी-खड़ी अनुनय करती रही। शायद पागल के लिए यह घटना बहुत मजेदार रही हो इसलिए मजे से प्रफुल्लित होकर उन्होंने अपने हाथ को और ऊँचा उठा दिया, बल्कि वे अपने पंजों पर और उठ गये। सुचिंता चिट्ठी की बात भूलकर सुशोभन कहीं गिर न पड़ें, यही सोचकर वे परेशान होने लगीं। "सुशोभन तुम गिर जाओगे। अब तुम उतर आओ। दुहाई है। सुशोभन मैं तुम्हारे पैरों पर गिरती हूँ।" वे मेज के दोनों कोनों को दबाकर अपना चेहरा उठाये हुए कातर वाणी में कहती रहीं—और इन बातों से सुशोभन का और मजा आने लगा।

"क्यों, अब और नीता की चिट्ठी लेकर मन ही मन पढ़ोगी ?"

अचानक सुचिन्ता को एक तरकीब सूझी। वह उदास होकर बोली, "ठीक है चिट्ठी मत देना। मुझे नीता की चिट्ठी से क्या मतलब। नहीं पढ़ूँगी।"

तरकीब काम कर गयी।

"नहीं पढ़ूँगी" कहने के साथ-साथ सुशोभन ने अपने हाथ की चिट्ठी सुचिन्ता की ओर फेंककर हँसते हुए बोले, "इस्स, मुझे चिट्ठी से क्या मतलब। तब इतनी देर से क्यों चीख रही थी ? सुचिंता उस समय तुम कैसी लग रही थी, जानती हो ? उस कथामाला के शृगाल की तरह। मुँह ऊपर किए हुए बैठे रहने के बाद आखिर में हुआ क्या कि अंगूर खट्टे निकल गये।" कहते हुए सुशोभन उतर आये।

सुचिन्ता के हाथों में तब तक चिट्ठी आ गयी थी। इसलिए शायद वे यह उपमा सुनकर हँस पड़ीं। बोलीं, "कथामाला के कथा-चित्रों की याद तुम्हें अभी तक है ?"

"क्यों नहीं रहेगी भला ? कथामाला की कहानियाँ भी कोई भूल सकता

है ? एक बार एक शेर के गले म हड्डी फँस गयी थी—यह कहानी तुम्हे याद नही है ?"

सुचिन्ता ने अनमनी दृष्टि से आसमान की ओर देखते हुए कहा, "बिल्कुल याद है।" इसके बाद गहरा साँस लेकर बोली, "अच्छा सुशोभन जरा इस चिट्ठी को मुझे पढ लेने दो। इसके बाद तुम्हे बताऊँगी कि नीता ने लिखा क्या है। नीता के लिए तुम चिन्ता कर रहे होगे न ?"

"चिन्ता नही होगी ? बिल्कुल हो रहा है। तुम नही जानती, मैं नीता से कितना प्यार करता हूँ।"

सुशोभन कुछ देर चहलकदमी करते रहे, फिर सुचिन्ता के पास आकर बोले, "सुचिन्ता, सारी बाते मुझे सुनानी पडेगी। बाते दबाने से काम नही चलगा।"

सुचिन्ता के चेहरे पर जाने कैसी हँसी थी। बोली, "क्या मैं तुम्हे गलत बताती हूँ ?"

सुशोभन न बलपूर्वक कहा, "बिल्कुल। अखबार पढ़ते समय तुम बहुत कुछ बातें दबा जाती हो। क्या मैं इसे नही समझता ?"

"कैसे समझते हो ?"

"कैसे समझने का क्या मतलब ? पढते समय मेरी ये नजरें तुम्हारे चेहरे की ओर ही लगी रहती हैं। तुम्हारी दृष्टि कहाँ रहती है क्या मैं नही समझता ?"

सुचिन्ता जैसे हर पल आग स खेल रही थी। इसीलिए बोली, "अगर ऐसी बात है तो तुम मुझे डाँटते क्यो नही ?"

"मैं तुम्हे डाँटूंगा सुचिन्ता ? तुम भी कैसी बातें करती हो। लेकिन अब तुम फिर बेवकूफ बना रही हो। नीता की चिट्ठी क्या नही पढ़ रही हो ? पढ़कर मुझे झटपट बताओ उसम क्या लिखा है ?"

लेकिन नीता सारी बातें बतायेगी कैसे ?

चिट्ठी जब पूरी पढ पायगी तभी तो ?

पढ़ना सभव था ? अगर एक लम्बे-चौड डील-डौल वाला व्यक्ति कुर्सी के ठीक पीछे उसकी पुश्त पर हाथ रखकर कुछ आगे को झुककर खुद भी चिट्ठी पढ़ने के लिए उतावला हो जाये और सार समय गाल, गदन, कानो पर उसकी गर्म साँस महसूस होती रहे तो ऐसी हालत म चिट्ठी पढ़ी भी कैसे जा सकती थी ?

पागल की साँसें भी भला इतनी गर्म होती होगी ? जिसके उत्ताप स गाल और गले की त्वचा जलन और कानो म सनसनाहट होने लगती हो ?

ऐसी बातो से सुचिन्ता के ठण्डे खून म क्या अभी भी उत्तेजना की लहर नहीं उठ सकती थी ?

पीछे थोड़ी दूर पर चुपचाप कब आकर इन्द्रनील खड़ा हो गया था, सुचिन्ता

को मालूम नही पडा । उन्हे तब पता चला जब वह घूमकर सामने आकर खडा हो गया ।

इस परिवेश से जान-बूझकर अपनी आखे हटाकर इन्द्रनील ने कपडे की कतरनो की तरह बात का एक टुकडा फेंक दिया, "मुझे एक बात कहनी थी ।"

सुचिन्ता ने चेहरा ऊपर उठाया । आखो मे शका थी ।

जाने क्या बात होगी ।

शका के कारण ही उन्होंने बात को महत्त्व नही दिया । जल्दी से कह उठी, "नीता की चिट्ठी आयी है ।"

चिट्ठी नीता की थी, इसे इन्द्रनील ने देखते ही समझ लिया था । लेकिन 'नीता ने क्या लिखा है । चिट्ठी कब आयी ? उसके होने वाले पति का क्या हाल है ?' ये बाते वह कब पूछता ? और पूछने का मन भी कैसे होता ? अपनी आँखो से यहाँ की हालत देखकर—"

इसलिए इन्द्रनील नीता के समाचार जैसी महत्त्व की बात को भी बिना महत्त्व दिये ही बोला, "यह तो देख ही रहा हूँ ।"

"वहाँ एक दूसरी परेशानी खडी हो गयी । उसने लिखा है, जान का डर नही है लेकिन—"

"सुचिन्ता !" सुशोभन खीझकर बोले, "चिट्ठी की बात मुझे न कहकर उसे क्यो बता रही हो ?'

"वाह क्या वह नीता की खबर नही सुनेगा ?"

"नही ।' सुशोभन अचानक इन्द्रनील के एकदम पास आकर खडे हो गये । बोले, "यगमैन ! सुचिन्ता के छोटे बेटे । नीता के बारे मे जानने की तुम्हे क्या जरूरत है ?"

"मुझे कोई जरूरत नही है ?" इन्द्रनील कुछ उद्धत होकर बोला ।

"बिल्कुल जरूरत नही है । तुम्हारी कोई जरूरत नही है ।' सुशोभन लगभग डाँटते हुए बोले, "नीता क्या कोई ऐसी-वैसी लडकी है ? कि तुम उसके बारे मे जानना चाहोगे ? जानते हो यह नीता का अपमान करना होगा ।"

इन्द्रनील तुरत बोला, ' थोडा अपमान होने ही दीजिये न ।"

"होने दूँ ? सुचिन्ता तुम्हारे लडके की बुद्धि तो बिल्कुल अच्छी नही है । तुम—"

सुचिन्ता अचानक बोली, "सुशोभन आओ कमरे मे चलें ।"

"कमरे मे चलूँ ?"

"हाँ । चलो, तुम्हे नीता की चिट्ठी पढ़कर सुनाऊँ ।"

सुशोभन की पीठ पर हल्के से अपना हाथ रखकर इन्द्रनील के सामने से होते हुए सुचिन्ता कमरे के अन्दर चली गयी ।

अपने ओंठो को दाँतो से दबाकर कुछ क्षणो तक चुपचाप खडे रहने के बा' इन्द्रनील वहाँ से हट गया ।

वह कृष्णा के पिता के प्रस्ताव की बाबत बताने आया था । कहने आया था कि आज शाम को कृष्णा के माता-पिता सुचिन्ता से मिलना चाहते हैं। लेकिन कह नही पाया ।

उसने सोचा, अब वह जाकर कृष्णा के पिता से क्या कहेगा ?

उसने पहले ही काफी बाधा डाली थी । कहा था, मा के पास जाकर उसके लडके की शादी के लिए निवेदन करने जाना बेकार ही होगा । इन्द्रनील की माँ इतनी उदार स्वभाव की हैं कि लडके की शादी हो जाने की बातें सुनकर भी बिल्कुल नही चौंकेंगी, नाराज नही होगी ।"

लेकिन कृष्णा के पिता ने गम्भीर होकर कहा था, "यहाँ पर सवाल निवेदन का नही है । सामान्य व्यावहारिकता और सौजन्य भी कोई चीज होती है।"

"मेरी माँ सामान्य नियमानुसार सौजन्य-सामाजिकता की बातो को कोई महत्त्व नही देती । '

कृष्णा भी बोल पडी, "भले ही तुम्हारी माँ असाधारण हो लेकिन हम लोग तो वैसे नही हैं । हम लोगो के लिए लोक-लाज नाम की भी कोई चीज है । बस हम लोग जाकर अपना कर्त्तव्य-मात्र निभाएँगे ।"

इन्द्रनील के लिए अब और कहने को क्या था ?

इसलिए माँ से ही उनके आने की अग्रिम सूचना देने आया था । उसने सोचा था माँ को पहले से जानकारी द देगा ।

लेकिन डोर ही टूट गयी ।

सुचिन्ता के इस तरह से चले जाने की भंगिमा म जैसे कोई दु साहसिक सकल्प निहित रहा हो ।

इन्द्रनील क्या अपने होन वाले श्वसुर को जाकर कह दे कि अगर माँ को बिना बताये ही शादी करना चाहे, तभी वह सभव होगी ।

लेकिन वे अभिमानी स्वभाव के थे । शायद वे कह ही बैठे, "जहाँ ऐसी विचित्र शर्त हो वहाँ शादी नही हो सकती । तब रहने ही दो ।"

अगर ये बातें कृष्णा सुन लेगी तो वह रूमाल से अपनी आँखे पोछने लगेगी और मौका पाते ही इन्द्रनील के कधे पर अपना चेहरा रगडने लगेगी ।

अचानक इन्द्रनील को लगा कि कृष्णा से उसकी जान-पहचान न ही हुई होती तो भी अच्छा रहता ।

परिचय के प्रारम्भ से ही कृष्णा की जाने कैसे यह धारणा बन गयी थी कि इन्द्रनील उसके प्रेम म दीवाना हो गया है । लडकियो की ऐसी बेवकूफी युवा

पुरुषों के लिए कौतुकप्रद होती है। पहले-पहले तो इन्द्रनील भी मजा लेता रहा इसके बाद जाने कैसे वह भी इस पर यकीन करने लगा।

यह कब से हुआ ?

कैसे हुआ ?

ऐसी बातें किसे याद रहती हैं। किसी सुंदरी लडकी के निरंतर प्रेम निवेदन के आकर्षण से कोई भी तरुण विचलित हो सकता है और इस हालत मे तो और भी होता क्योंकि इन्द्रनील का व्याकुल मन उस समय किसी आश्रय की ही तलाश कर रहा था।

यह सच है कि उसने नीता से प्रेम करने की बात नही सोची थी। सिर्फ मुग्ध मन से वह उसे निहार रहा था, लेकिन तभी उसे यह बात मालूम हुई कि नीता का मन काफी पहले से ही कहीं बंधक रखा हुआ है। मित्र भाव से नीता ने इन्द्रनील से इस बात की चर्चा की थी। सिर्फ इन्द्रनील ही जानता था कि नीता के पास सागर पार से किसी की चिट्ठियाँ आती हैं।

उसके मन में लडकियों के प्रति आकर्षण का भाव जागा जरूर, लेकिन मन-ही-मन उसने समझ लिया था कि नीता की ओर आकर्षित होना अब कोई मायने नही रखता। इसी समय उसकी जिन्दगी में कृष्णा का आविर्भाव हुआ। इन्द्रनील ने महसूस किया कि नीता दूर आकाश के नक्षत्र की तरह है जिसे पाना संभव नही है। आपकी हँसी, बातें, भाव-प्रकाश आदि बातों से वह सम्पूर्णत जानी नही जा सकती। यह तो उसका बाह्य आचरण मात्र है। शायद उसे ठीक से किसी भी दिन समझा नही जा सकेगा। इन्द्रनील के लिए यह कतई संभव नही था कि वह एक ऐसी रहस्यमयी नारी का भार जिन्दगी भर ढोता रहे। उसके लिए शायद कृष्णा जैसी लडकी ही ठीक थी। जिसे एक सांस में पढा जा सकता था जिसे किसी मुश्किल किताब की तरह बार-बार पढकर समझने की जरूरत नही पडती थी। सीधी सादी कृष्णा में ही इन्द्रनील की सद्य जाग्रत आकांक्षा ने आश्रय ढूंढ लिया।

लेकिन आज ?

आज इन्द्रनील सोच रहा था कि अगर कृष्णा से मुलाकात न हुई होती तो क्या बुरा था। अगर वह भी मझले भैया की तरह भाग गया होता तो बेहतर होता।

शायद इस हालत में ऐसा ही महसूस होता होगा।

जो लडकी खुद ही किसी के पास आत्म-समर्पण करके अपना रहस्य खोल देती है वह बाद मे उस व्यक्ति के लिए बोझ बन जाती होगी।

"हर जगह है भिक्षा वृत्ति
अगर लक्ष्मी भिखारिणी हो जाएँ

तब लोग कहाँ जाएँगे ?"

पुरुष लक्ष्मी की वन्दना की कामना तो करता है, किंतु भिखारिणी की दयनीयता को अधिक दिन सह नहीं पाता।

वह निराश होकर सोचता "तुम्हारे पास मैं इस आशा म गया कि तुम मेरी कामना पूरी कराेगे और तुम हो कि खुद मेरे दरवाजे पर भिखारी होकर बैठे हुए हो।"

सहज-प्राप्ति का सुख पहले-पहले व्यक्ति को उन्मादग्रस्त कर देता है। उससे पौरुष की परितृप्ति होती है। अपने को विजयी समझने के अहं मे पुरुष फूला नहीं समाता। लेकिन सहज-प्राप्ति को भी असहनीय बनने म ज्यादा दिन नही लगते। लेकिन इससे बचने का कोई उपाय भी नही होता। अगर यह भी पता चल जाये कि कब्जा की हुई वस्तु धान न होकर सिर्फ भूसी है तो भी उसे विवश होकर लादे हा रहना पडेगा नही तो अपनी कमी दूसरो की नजरो मे आ जायेगी। शायद प्रेम विवाह का अधिकाशत हश्र यही होता होगा।

विवाह पूर्व प्रेम मधुर और उत्तेजक होता है, क्योंकि तब वह दायित्वहीन होता है। ऐसा प्रेम विभ्रांतिकर भी होता है क्योकि वहाँ की एक दूसरे वे निगाहो मे खूबसूरत दिखते रहने के लिए चौकन्ने रहते हैं।

लेकिन फिर इस माधुर्य का जादू विवाह-बंधन मे बंधते ही खत्म होने लगता है। सिर्फ यहाँ हा नही विदेशा म भी सामाजिक कुलीनता और आर्थिक कुलीनता के अलग-अलग चेहरे विद्यमान हैं, इसलिए इस कुलीनता पर जहाँ भी चोट पडती है वही अभिभावक ऐसे प्रेम के मामला म असहानुभूतिपूर्ण रवैया अपना लेते हैं। इस हालत म विवाह के बाद की सारी जिम्मेदारी पूरी तौर से अपने ही कंधो पर उठानी पड जाती है।

इस भार को फूला की तरह हल्का बनाने वाली जीवनसंगिनी कितने लोगो के भाग्य म जुटती होगी ? कृष्णा जैसी लडकियों की संख्या ही तो अधिक है। इसीलिए अधिकतर ऐसी-विवाह शैली की परिणति प्रेम-विच्छेद म ही घटती है।

अगर कृष्णा से इंद्रनील की भेंट न हुई होती तो इंद्रनील अभी से इस तरह की बातें शायद न सोचता। अगर वह घर मे सबसे छोटा बेटा होने की सुविधाएँ पाता तो भी शायद ऐसा न करता। माँ की आकाक्षा और बडे भाइयो के संरक्षण सुख म अगर उसे एक राजा बेटे की तरह सिर्फ सिर पर मौर धारण करके ही विवाह के लिए निकलना पडता तो शायद कृष्णा को प्राप्त करने का सुख ही उसके लिए सबसे बडा सुख होता।

लेकिन यह सुख इंद्रनील को कहाँ बदा था ? जो भी उसे मिल रहा था, उसकी उसे ढेर सारी कीमत चुकानी पड रही थी इसलिए वह क्षण-क्षण म नाराज हो उठता था। अब उसे लग रहा था कि कृष्णा के पिताजी व्यक्ति के तौर पर

बहुत सुविधाजनक नही है, कृष्णा की माँ भी सिफ अपने मतलब की ही सोच रही है और खुद कृष्णा भी इन्द्रनील के लिए तकल्लुफ-ह होगी।

लेकिन अब तो लौटना भी मुश्किल लग रहा था।

फिर लौटेगा भी कहाँ ? उस श्मशान म जहाँ मृत, विवर्ण शव की साधना की जा रही थी ? अनुपम कुटीर म जीवन की ऊष्मा कहाँ थी ? स्वाभाविक जीवन-यात्रा का ललित राग वहाँ कहाँ था ? ऐसे रागहीन, जड जीवन स मुक्ति पाने की कोशिश म ही इन्द्रनील इतनी सहजता से कृष्णा को पकडने म लग गया था।

लेकिन अदर ही अदर उसका मन उसे कचोट रहा था, "काश, कृष्णा से उसकी भेंट न हुई होती ? काश, मझले भैया की तरह वह भी यहाँ से कही भाग पाता।"

बहुत दिनो के बाद आज इन्द्रनील को अपने पिता की याद आयी। शायद अनुपम मित्तर के जीवित रहने स उसे जीवन म इतनी समस्याओ का सामना नही करना पडता। या वे खुद ही उसके लिए समस्या बन गये होते ? कौन जानता है। लेकिन इस समय उसे एक ही चिन्ता रह-रहकर घेर रही थी। इस समस्या स बचने का उसे कोई रास्ता नही सूझ रहा था। कृष्णा के माता-पिता का सुचिन्ता से मिलने आना बिल्कुल तय था।

और आने के बाद ही यह सवाल भी उठेगा कि सुशोभन कौन हैं। वह यहाँ क्या है ?

किस तरह से उनको इस घर म आने स रोका जाए, यह सोचते-सोचते ही वे लोग इन्द्रनील के यहाँ पहुँच भी गये और कुछ तय न कर पाने से हडबडी मे 'आप लोग बैठिये' मुझे एक जरूरी काम से जाना है कहकर इन्द्रनील तुरत वहाँ से खिसक गया। उसने अपनी माँ की ओर भी नही देखा। सुचिन्ता उसके जाने वाले रास्ते की ओर देखती ही रह गयी।

वे लोग बोले, "हम लोगो का आपके पास और पहले आना ही उचित था। खैर, एकदम न होने से देर म होना भी बुरा नही है। आपकी क्या राय है ? बात यह है कि हम लोग आपके सबसे छोटे बेटे को अपना दामाद बना रहे हैं।"

सुनकर सुचिन्ता चौंक गयी ?

इस अप्रत्याशित आघात स वे जड हो गयी ?

कुछ ठीक ठीक समझा नही जा सका। सुचिन्ता की सारी बातें समझी नही जा सकती। प्रकट रूप मे सुचिन्ता बिलकुल नही चौंकी बल्कि मुस्कुराते हुए बोली, "अगर तय ही कर लिया है तब तो बात ही खत्म हो जाती है।"

शायद कृष्णा के पिताजी को ऐसे जवाब की आशा नही थी। इन्द्रनील ने जैसा भी उनके बारे म बताया था, लेकिन उन्होंने सोचा था, भद्र महिला यह सोचकर आग हो जाएँगी, भडक उठेंगी या आघात पाकर खामोश हो जाएँगी।

यही परिस्थिति पैदा करने के लिए ही उन्होने 'दामाद बनाना चाहता हूँ' न कहकर 'दामाद बना रहा हूँ' कहा था।

मनुष्य के मन की बातो को समझना बडा कठिन है।

सुचिन्ता का आहत करके खुश होन की उन्हे क्या जरूरत थी? सुचिन्ता ने उनका क्या बिगाडा था?

शायद जिस अपमान की आग म वे मन ही मन जल रहे थे, उसी को शायद वे कही कसर निकालना चाहते थे। सुचिन्ता की माँ को ही उन्होंने उपयुक्त पात्र समझा होगा। इन्द्रनील की वही अभिभावक थी। इन्द्रनील जैसे एक बेकार छोकरे के हाथ मे उन्हे अपनी मूल्यवान सम्पत्ति विवशता मे सौंपनी पड रही थी। यह कोई कम छटपटाहट पैदा करने वाली बात नही थी।

इस विवशता की जननी तो उनके घर म ही मौजूद थी, लेकिन उस ओर उनका ध्यान नही था। वे इसके लिए एकमात्र दोषी अभागे लडके को ही मानते थे। इसीलिए उसकी मा को समान रूप से दोषी समझते थे।

सुचिन्ता की बात सुनकर वे सज्जन गभीर हो गये।

उसी गभीरता से बोले, बात खत्म जरूर हो गयी है लेकिन शिष्टाचार के नाते हम लोगो को एक बार आपका बतला देना जरूरी लगा, इसलिए "

सुचिन्ता दुबारा हँसी, "यह सुनकर खुशी हुई।'

सुन्दरी कन्या के गर्व से गर्वान्वित महिला बाल उठी, ' मेरी लडकी को आप न जरूर देखा होगा। आपके यहाँ वह भी आ चुकी है।"

सुचिन्ता बोली, "दो-तीन लडकियाँ तो बीच-बीच म आती-जाती रहती थी, लेकिन उन्हे कभी गौर से नही देखा, इस समय ठीक से ख्याल नही आ रहा है कि उनम से आपकी लडकी कौन थी?"

लीलावती न आरक्त चेहरे से कहा, ' आपके घर म अगर कोई आए तो आप उसकी ओर नजर उठाकर भी नही देखती ?"

सुचिन्ता चकित होकर बाली, "क्या मुश्किल है। देखूगी क्यो नही, अगर मेरे पास आती तो जरूर देखती। बच्चो के दास्त साथी कब कौन आते-जाते हैं यह सब देखने की फुर्सत किसे है? और इसकी जरूरत भी क्या है?"

"किस तरह के दोस्त-साथियो से आपके लडके जान-पहचान बढा रहे हैं, क्या आप इस पर ध्यान देने की जरूरत भी महसूस नही करती हैं?"

"इससे लाभ क्या है?" सुचिन्ता बाली, "उनकी सारी गतिविधियो पर निगाह रख रहूँ, इतनी क्षमता मुझम नही है। मेरे इस छोटे से घर के इन दो छोटे-छोटे कमरों म उनकी गतिविधियाँ आखिर कितनी होगी?"

' बहुत खूब।' कृष्णा के पिताजी मुँह बिचकाकर बोले, "आप जैसा उदार

मां यहा घर-घर मे हो जाएँ तो अपने देश को विलायत बनने मे ज्यादा समय नही लगेगा।"

इस सीधे आक्रमण से शायद सुचिन्ता विमूढ हो गयी लेकिन यह विमूढता क्षण भर के लिए ही थी। तुरत ही वे हँसते हुए बोलीं, "पागल हुए हैं। ऐसा कभी होता है ? आप लोग तो हैं ? आप लोग नही रोकेंगे ?"

वे सज्जन कडवाहट भरी मुद्रा मे बोले, "रोक पा कहा रहा हूँ ? अगर वैसी ही क्षमता होती तो क्या अपनी इकलौती लडकी को इस तरह से बहने देता ? आप नही जानती, मैं उसका विवाह जस्टिस घोष के लडके से तय कर सकता था, लेकिन—"वे चुप हो गये। उनको चुप होते देखकर सुचिन्ता बेहद सरलता से बोली, "सच कह रहे हैं। मैं भी यह सोचकर चकित हो रही थी, फिर भी—आप क्यों मेरे इस आवारा बेकार लडके को अपना दामाद बनाने को तुले हुए है।"

लीलावती तेज होकर बोली, "क्यो कर रही हूँ, इतना समझन की क्षमता आपमे जरूर होगी।'

इस बार सुचिन्ता गभीर हो गयी।

और इसको छिपाने की उन्होंने कोशिश भी नही की। गभीर स्वर मे ही बोली, "शायद वह क्षमता है, लेकिन यह समझने की क्षमता जरूर नही है कि आप लोगो की लडकी आप लोगो के काबू के बाहर है। यह खबर मेरे पास आकर इतनी धूमधाम से सुनाने की जरूरत क्या है ? यही सोचकर मैं हैरान हो रही हूँ।"

"बेवकूफी की थी।" कृष्णा के पिताजी उठ खडे हुए, और रूखे गले से बोले, "सोचा था, शादी से पहले आपको सूचित करना सामान्य भद्रता होगी, लेकिन अब महसूस कर रहा हूँ कि यह मेरी गलती थी। अच्छा चलता हूँ।" हाथ उठाकर उन्होंने नमस्कार करने की भगिमा बनायी।

सुचिन्ता ने भी तुरत वैसा ही किया।

इसके बाद पति-पत्नी को चला जाना चाहिए था। लेकिन शायद लीलावती इतनी जल्दी नाटक के पर्दे नही गिराना चाहती थी। इसलिए व खडी होकर भी कह बैठी, "अपने यहा आये अतिथियो का चाय देकर सम्मानित करने का भी अभ्यास शायद आपको नही है।'

सुचिन्ता शायद मर्माहत नही हुई थी, इसलिए इस सवाल से बिना विचलित हुए व मुस्कराकर बोली, "मेरे यहाँ अतिथियो का आना-जाना इतना कम होता है कि उनके लिए क्या करना चाहिए, क्या नही, समझ नही पाती।"

"तुम चलोगी नही ?"

पत्नी की ओर देखकर वे सज्जन नाराज होकर बोले। पत्नी भी क्रोधपूर्वक

भौहो को नचाते हुए बोली, "नही चलूगी तो क्या यहाँ रहने आयी हूँ ? चलती हूँ अच्छा है, सुना, आपका एक लडका अचानक कही चला गया है ?"

सुचिन्ता ने इस सवाल के आघात को सहकर भी सहजता से बोली, "बाहर नौकरी पर जाना क्या आपके लिए बडा आश्चयजनक है ?"

"नौकरी ! मैंने तो सुना कि बिना कह-सुने अचानक "

सुचिन्ता खिलखिलाते हुए बोली, "घर के नौकर-चाकरो से शायद आपने सुना होगा । वे लोग इसी तरह की अफवाह फैलाते रहते हैं ।"

'नौकर-चाकर' शब्द मे जिस तरह की अवहलना का भाव निहित था उसे समझकर लीलावती का गोरा चेहरा लाल हो गया । नौकरो से बातें करने की उनकी आदत नही है । शायद वे यही कहना चाहती थीं कि तभी वहाँ एक काड घट गया ।

कमरे के अदर दरवाजे के पास खडे हुए सुशोभन कह उठे, "इतनी देर इन बेकार के लोगो से क्या बातें कह रही हो सुचिन्ता । उनको भगा दो ।"

क्षण भर के लिए जैसे उन तीनो को ही करेंट मार गया हो, ऐसा अहसास हुआ । इसके बाद सुचिन्ता बोली, "तुम नीचे क्यो चले आये सुशोभन ? ऊपर जाओ ।"

सुशोभन का इस तरह से नीचे चला आना वाकई अप्रत्याशित था । नीचे की मजिल के इस सजे-सजाये डाइङ्ग रूम मे शायद कभी सुशोभन पहले नही आये थे । सदर दरवाजे के सामने ही सीढी थी, वही उनके लिए पूरी तरह से परिचित थी ।

लेकिन सुचिन्ता ही कितने दिना बाद इस कमरे म आयी थी ?

क्या सुशोभन के आने के बाद एक बार भी वे यहाँ आयी थी ?

आज ही यहाँ आकर बैठी थी ।

जब वह नीचे आयी थी तब सुशोभन सो रहे थे । कुछ दिनो से वे कभी-कभी दोपहर मे भी सोने लगे थ । ऐसा पहले नही होता था । क्या जाने यह लक्षण अच्छा था या बुरा ? डाक्टरो की राय के अनुसार यह मानसिक रोगियो के लिए शुभ लक्षण था ।

आश्चय की बात तो यह थी कि सुचिन्ता बेवक्त सुशोभन को सोते हुए देखती था तो शकित हो जाती थी । शाम को नाश्ते के समय का बहाना करके उन्ह जगा देती थी । अगर उन्ह जगाया न जाए तो उनकी नीद सहज ही टूटती नही थी ।

इसीलिए सुचिन्ता निश्चित थी । अतिथियो से मिलन के लिए नीचे आते समय उन्होने सुशोभन को गहरी नीद म सोते हुए देखा था । न जाने नीद कब

टूट गयी थी। शायद इधर-उधर खोजकर जब उन्हें कोई नहीं मिला होगा तब वे घबड़ाकर नीचे उतर आये होंगे।

सुचिन्ता ने पूछा, "तुम नीचे क्यों चले आये ? ऊपर चले जाओ।"

सुशोभन न जाने के लिए एक कदम आगे बढ़ाया लेकिन बिना असतोष व्यक्त किए हुए रहा नहीं गया। वे बोले, "तुम्हीं नीचे क्या करोगी ? आओ ऊपर चले।" कहकर भारी कदमों से जीना चढ़ने लगे।

इतनी देर बाद लीलावती को बोलने का मसाला मिला। भौंहें सिकोड़कर और सदेह भरे स्वर मे बोली, "वे कौन थे ? आपके भाई ?"

"नहीं।"

"तब कौन थे ?'

सुचिन्ता न उनकी आखो मे आखे डालकर कहा "मेरे बचपन के साथी।"

"बचपन के साथी।'

लीलावती ने जिस स्वर म इसे कहा उससे यही लगा कि इस शब्द को उन्होंने जीवन मे पहली बार सुना था।

सुचिन्ता ने बिना कोई बात किए हुए सिर्फ विदा देने की चालू भगिमा मे अपना हाथ एक बार उठाकर नमस्कार किया।

इस पर भी लीलावती बिना बोले न रह सकी, "सुना था आपके घर म कोई पागल आया है। क्या यह वही है ?"

अचानक सुचिन्ता ठठाकर हँस पड़ी। हँसते-हँसते बोली, "आपमे एक नजर म पागलों को पहचान लेने की आश्चयजनक क्षमता है। अच्छा, अब चलू। नमस्कार ! एक पागल को लेकर जाने कितना झमेला उठाना पड़ता है।"

कहा जरूर, लेकिन सुचिन्ता का चेहरा देखकर इन लोगो को यकीन नहीं आ सकता था कि सुचिन्ता को इतना झमेला उठाना पड़ता होगा !

"मुझे बिना बताये हुए तुम चली क्यो जाती हो सुचिन्ता ?' विक्षोभ भरे असतुष्ट स्वर म वे बोले, "मैं तुम्हें ढूढ़ता रहता हूँ लेकिन तुम नहीं मिलती ?"

"तुम तो सो रहे थे।"

"वाह खूब रही। हमेशा मैं सोता ही रहूँगा ?'

"तो क्या किसी के खान पर मैं बाते न करूँ ?"

"नहीं नहीं, उन लोगो से बाते करने की जरूरत नहीं है।"—सुशोभन ने विरोध करते हुए कहा, "वे सब अच्छे लोग नहीं हैं।'

सुचिन्ता हँसते हुए बोली, "किसने कहा कि वे अच्छे लोग नहीं हैं ? अच्छे तो हैं।"

"नही, नही ! देखा नही वे लोग तुम्हे किस तरह से घूर रहे थे ?"

"किस तरह से ?"

"नाराजगी से भरकर । तुमने गौर नही किया ?"

सुचिन्ता नजदीक आकर बोली, "तो क्या सभी लोग तुम्हारी तरह ही मुझे ताकेंगे ?"

सुशोभन ने अचानक अपने को बहुत विपन्न महसूस किया । चचल होकर बोले, "मेरी तरह ? मैं किस तरह से ताकता हूँ सुचिन्ता ? मेरी समझ मे बिल्कुल नही आ रहा है ।'

"रहने दो, तुम्हे समझने की जरूरत नही है । लेकिन वे लोग अगर दुबारा आएँ तो तुम उन लोगो के पास मत जाना । वे लोग तुम्हे प्यार नही करते ।"

"मुझे प्यार नही करते । लेकिन ऐसा क्यो सुचिन्ता । मुझे तो सभी प्यार करते हैं ।'

"तुम्ही ने तो कहा कि वे लोग अच्छे नही हैं ।"

"ओह हैं, ठीक, ठीक । लेकिन सुचिन्ता वे लोग हैं कौन ?"

"कौन है ?"

सुचिन्ता ने मजा लेते हुए कहा, "वे लोग मेरे सबसे छोटे बच्चे के सास श्वसुर थे ।"

"सास-श्वसुर । सबसे छोटे बेटे के सास-श्वसुर । मेरी समझ मे नही आया सुचिन्ता ।"

"बहुत हुआ । तुम्हारी समझ मे नही आया । उनकी लडकी के साथ मेरे सबसे छोटे लडके की शादी होगी ।"

"नही नही, किसी तरह से नही होगी—" पौरुष प्रदर्शन करके रोकने की भगिमा मे सुशोभन ने अपना हाथ उठाया, "वे सब अच्छे लोग नहीं हैं ।"

"लेकिन उनकी लडकी के साथ तो मेरे सबसे छोटे लडके ने प्रेम किया है," सुचिन्ता धीरे-धीरे समझाने के अदाज मे बोली, "मेरे छोटे बेटे को उनकी बेटी ने पसद किया है, प्रेम किया है । शादी न होने से उनकी लडकी के मन को तकलीफ होगी ।"

सुशोभन शात हो गये । एकदम नरम हो गये । सहानुभूति भरे स्वर मे बोले, "मन मे तकलीफ होगी ? उनकी बेटी के मन को चोट पहुँचेगी ?"

"हाँ, फिर मेरे लडके को भी तकलीफ होगी । '

"उनकी लडकी कही उन्ही की तरह तो नहीं है सुचिन्ता ?" सुशोभन के सिर पर फिर एक दुश्चिन्ता सवार हो गयी, "तुम्हारी तरफ गुस्से मे भरकर ताकेगी तो नही ?"

"बिल्कुल नही । वह बहुत अच्छी लडकी है ।"

"अच्छी लडकी !" सुशोभन ने पसंद आने की भंगिमा में अपना सिर एक-दो बार हिलाया, अचानक फिर उन पर चिन्ता सवार हो गयी, "लेकिन सुचिन्ता वे लोग तो मुखर्जी हैं। उनसे कैसे शादी होगी ?"

सुचिन्ता थोडी देर तक एकटक इस पागल की ओर देखती रही। फिर बोली, "किसने कहा कि वे लोग मुखर्जी हैं ? मुखर्जी तो नही हैं।"

"नही हैं ? ठीक कह रही हो सुचिन्ता ?" सुशोभन को जैसे जान में जान आयी हो, "भाग्य ही है कि नही है।"

सुचिन्ता ने उसी तरह से पूछ लिया, "मुखर्जी होने से क्या हो जाता ?"

"क्या होता ? मूर्खों की तरह कह दिया क्या होता। दोनो में शादी नही होती, इतना भी नही जानती क्या ?"

पूरे रास्ते अर्थात् रास्ते के इस पार से उस पार की दूरी तक पति-पत्नी दोनो ही निस्तब्ध रहे। अपने घर में घुसकर पत्नी ने ही इस निस्तब्धता का भंग किया, "अंत में मुन्नी के भाग में यही लिखा था।"

"रहेगा ही।" पति बेहद नाराज होकर बोले, "अभी भाग्य क्या देखती हो। अभी आगे जाने कितना और देखोगी !"

"छि छि एकदम बेकार हैं।" आज अपने पति की बात पर पत्नी झल्ला नही पडी बल्कि रुआँसी होकर बोली, "मैं तो देखती हूँ, बिल्कुल कायदे की नही है। इतने दिनो से इस मुहल्ले मे हूँ लेकिन मैं यह सब नही जानती। अभागी लडकी ने खोज-बीनकर अपने लिए चुना भी तो कैसा—"

"खोज-बीनकर ?"

कृष्णा के पिताजी ने कसकर डाँट लगायी, बेवकूफ लडके-लडकियों को चुनाव करना आता भी है ? जिसे सामने पाया उसे ही—छी छी। क्या कहूँ, तुम्हारी इस लाडली बेटी ने आत्महत्या की भी धमकी दे रखी है। नही तो इस लडकी को कमरे में बंद करके उस लडके को ठीक कर देता। दो हाथ पडते ही देखती साहबजादे कैसे बाप-बाप करके भागते हैं। भले घर की लडकी के साथ प्यार करने की इच्छा जिंदगी भर के लिए खत्म हो जाती।"

लीलावती अपनी आँखें पोछते हुए बोली, "अब क्या करूँ, अपनी लडकी ही दुश्मन निकल गयी। तुम्हारे लाड-प्यार ने ही उसे जिद्दी बना दिया है। आज तुम मुझे कोसते हो, लेकिन क्या तुमने उसे बचपन से बढ़ावा नही दिया था ? इकलौती लडकी होने के नाते उसने जो भी चाहा, उसे पूरा नही किया ? क्या तुम्ही ने उसकी हर माँग पूरी नही की ?"

"हाँ, दिया तो सब कुछ था।" वे चीखकर बोले, "अच्छी-अच्छी चीजें माँगी,

लाकर दी। अगर वह सड़क का कीचड़ गमला के लिए मांगता तो क्या मैं उसे दे देता ?"

कृष्णा की माँ और भी रुँआसी होकर बोला, "खैर, इस उम्र म हित-अहित सोचने की क्षमता कहाँ होती है ? लेकिन इन्द्रलाल लड़का बुरा नहीं है। तुम उसकी तुलना कीचड़ से मत करो। मुन्नी को ये बातें मालूम पड़ेंगी तो उसे काफी धक्का लगेगा।"

"धक्का लगेगा। ओह ! लेकिन धक्का लगने पर क्या सकती हो क्या होता है ? अगर कुछ होता तो तुम्हारी लड़की ने जिस दिन आत्महत्या करने की धमकी दी थी, उसी दिन मेरा भी हार्ट फेल हो गया होता। कुछ समझी ? अपमानित होकर भी ऐसा क्या किया, जानती हो ? लड़की के मोह से ग्रस्त होकर नहीं, बल्कि इस डर से कि अगर लड़की लेक म डूबकर मर गयी तो मेरी ही जगहसाई होगी। अब अफसोस कर रहा हूँ कि शुरू म ही इस झंझट को क्या नहीं खत्म कर दिया।'

लीलावती आतंकित होकर बोली, "दुहाई है, अब चुप भी रहो। मुन्नी सुन लेगी। मुन्नी को वैसी सास के पास घर-गृहस्थी करने के लिए मुझे नहीं भेजना है। बेटी दामाद दोनो यहाँ ही रहेंगे।"

"अगर ऐसा कर सको तो कर लेना। बेटी-दामाद के साथ सुखपूर्वक घर गृहस्थी चलाना।" पति गंभीर होकर बोले "मैं अपने रहने के लिए कोई दूसरी जगह ढूंढ लूंगा।'

लीलावती इस धमकी की परवाह नहीं करती थी।

उनके पति उन्हें छोड़कर अन्यत्र रह सकते हैं, ऐसी आशका ही वह मन मे नहीं लाती।

ससार का पहिया इसी तरह से चलता रहता है। जब आदमी अपनी समस्याओं के चक्कर मे फँसता है तब उससे उबरने के लिए वह जो कुछ भी करता है उसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

हालांकि सभी की समस्याओं का एकदम से निदान होना संभव नहीं है।

एक ही घटना को विभिन्न लोग विभिन्न तरीके से देखते हैं। जिस वर्षा का किसान प्रसन्न होकर अपने दोनो हाथ उठाकर अभिवादन करते हैं, उसी वर्षा से शहर के लोगो की भृकुटि टेढ़ी हो जाती है। जो कानून किरायेदारो के लिए राहत पहुँचाता है, उसी कानून से मकान-मालिक खिन्नता महसूस करते हैं।

पैसे वाला के मन मे गरीबो का असतोष कुढन पैदा करता है, गरीबो को पैसे वालो की विलासिता फूटी आँखों नहीं सुहाती। बड़ो की नजरो मे छोटो का व्यवहार आपत्तिजनक होता है, छोटो की निगाहो म बड़े लोगो का आचरण निष्ठुरतापूर्ण होता है।

अत दोष किसे दिया जाए ?

कृष्णा ने प्रेम किया तो क्या उसे ही दोषी माना जाए ?

कृष्णा के अभिभावक उसके गलत चयन के कारण कुपित हो गय थे। क्या यह उनके लिए असगत था ?

सुचिन्ता ने अपने उद्धत पडोसी की अवहेलना की, यह जितना उनके लिए स्वाभाविक था, ठीक उतना ही स्वाभाविक उनके पडोसी द्वारा उनके बारे मे 'खराब' राय कायम करना भी था।

भगवान् ही जानता होगा कि सही-गलत का असली पैमाना किसके पास है।

परस्पर विरोधी सचाई न सारे ससार को एक ऐसे विचित्र कुहासे म जकड रखा है कि उसे चीरकर वास्तविक सत्य रूपी सूर्य की खोज असभव हो गयी है। गुरु का कोई भक्त अगर अपने पुत्र की बीमारी म डाक्टर न बुलाकर गुरु का चरणामृत उसे सेवन कराता है तो उसके इस व्यवहार की निंदा की जाएगी या उसकी गुरुभक्ति की सराहना की जाएगी। स्वामी की दुश्चरित्रता से क्षुब्ध होकर पत्नी जब अपनी गोद की सतान को बहाकर पतिगृह छोडकर चली जाती है तो उस स्त्री के स्वाभिमान की प्रशसा की जाएगी या उसकी कठोरता की निंदा की जाएगी ?

मनुष्य के बारे म कुछ भी सोचना बडा मुश्किल है।

मनुष्य के बार मे सोचना कठिन है लेकिन उसके कत्तव्य के बारे म विचार करना क्या उससे अधिक सरल है ?

फिलहाल इस समय सुविमल मुखर्जी जैसे बुद्धिमान वकील ही क्या कत्तव्य का निर्धारण कर पा रहे थे ? मामला सुशोभन को लेकर ही था। इसके पहले उन्होन खुद ही इन बातो को लेकर सिर खपाने के लिए मायालता को मना कर दिया था। लेकिन नीता के चले जाने के बाद से वे इस बारे म लगातार सोच-विचार रहे थे। नीता से नाराज होकर भाई के बारे मे तटस्थ होकर बैठ जाना उन्हे न्यायसगत नही लग रहा था।

एक अविनयी लडकी की कत्तव्यहीनता से क्या सुविमल अपना कर्त्तव्य भूल जाएँगे ? अपने बीमार भाई को वे एकबार देखने भी नही जाएँगे ? सिफ देखने के लिए ही क्यो जाना, देख-भाल करने की भी तो जरूरत है। सुचिन्ता उसे अपन पास रखना चाहती है, क्या इसलिए अपन भाई को हमेशा के लिए उसके पास ही छोड देंगे ?

असल म यहाँ पर लेने-देने की बात ही बेकार थी। उस दिन एक पागल को वहाँ जिस तरह से अनुशासन मे बधे देखा था उससे उन्हे आश्चय ही हुआ था। तभी उन्होन स्वीकारा था कि सुविमल को लेकर अधिकार जतलाना ही सब कुछ नही है।

फिर सुविमल की भी तो एक सामाजिक मान-मर्यादा थी।

नात-रिश्तेदार भी बीच-बीच म सुशोभन के बार म पूछत रहत थ और उनको किस अधिकार स सुचिता ने अपन पास रखा था इसे लेकर आश्चय चकित भी होते थे। एक बार तो सुविमल की छोटी बुआ ने ही कह दिया, "मुझे एक बार सुचिन्ता के यहाँ ले चलो। जरा देखू तो कैसा जबदस्त लडकी है। देख आऊ उसने क्या टोना-टोटका किया है। लडके से भी मिल आऊँगी।'

सुविमल ने 'पागल हुई हो' कहकर उनके प्रस्ताव का टाल दिया था। लेकिन तभी से वे सोच रह थे कि एकबार उनका वहाँ जाना उचित होगा। इसके अलावा एक और कारण भी था—नीता के बार म जानने का।

एक रविवार की सुबह उन्हान वहा जाना तय किया। मन ही मन यह भी तय किया कि वे अपन साथ सुमोहन के दोनो बच्चा का भी ले जाएगे। दखे कोई प्रतिक्रिया होती है या नही।

इन दोना बच्चो का सुशोभन बेहद चाहते थे।

सुविमल न कब अशोका का दानो लडका को तैयार कर देने के लिए कहा और कब अशोका ने उनक आदेश का पालन किया इसे मायालता जान ही नही पायी। पति को उन दाना को साथ लेकर बाहर जाते हुए देखकर ही उन्हे पता चाल।

अक्सर रविवार की सुबह सुविमल अपन दाना भतीजा को लेकर टहलने निकलते है, लेकिन मायालता ने कभी भी इस सहजता स नही ग्रहण किया। हर सप्ताह ही वे दीवाल को सुनाकर कहती, "जरा चोचले तो देखो। लडकी को उकसा दिया। आदमी को और भी तो काम हो सकता है। वैस ही रात-दिन काट मुवक्किल, मामले-मुकदमे का चक्कर, इसस थाडी फुसत मिली तो भतीजो का लेकर प्रेम-प्रदर्शित करना पडेगा। अपने लडको को लेकर तो कभी एक कदम भी घूमन नही गये। मैं भी समझती हूँ, पीछे मैं कोई काम की बात न कह दूँ इसलिए जान बचाने के लिए घर से भागत रहत हैं।"

कहना न होगा कि मायालता का ऐसा आरोप सुनकर भी दीवाले मौन रह जाती थी और सुविमल भी हमेशा की तरह तुम लोग तैयार हुए कि नही की हाँक लगाकर उन्हे साथ लेकर झटपट बाहर निकल जात थे।

लेकिन सुविमल न आज जल्दबाजी नहीं की थी, सहज भाव स ही निकल रहे थे कि उन पर मायालता की निगाह पड गया। हमेशा की तरह ही वे झपट कर पूछ बैठी, "इतनी सुबह अपने भतीजो का सिर पर बिठाकर कहाँ जान की तैयारी है?"

बच्चो म से एक की उम्र सात वष की थी और दूसरा छ वर्ष का था। वे दोना अपन ताऊ जी के दोना आर उनकी एक-एक उगली पकडकर अधिकार पूर्वक खडे हुए थे। उनकी ओर देखते हुए सुविमल मुस्कराते हुए बोल,' सिर पर

कहाँ बैठे है? बल्कि यह पूछ सकती हो कि ऊँगली पकड़कर वहाँ ले जा रहा हूँ।"

"ठाक है, ठीक है, मुझसे व्याकरण का गलती हो गयी। हाँ, तो इतनी तैयारी से जा कहाँ रहे हो?"

सुविमल बोल, "समझ नही पा रही हो?"

"ज्योतिषी ता मैं नही हूँ।'

"इह इनके मँझले ताऊ स मिलवान ल जा रहा हूँ।'

"मँझले ताऊ स मिलवान! आह!" मायालता थाडी।कुटिलता से बोली, "तो इन लागो का बहाना करने की क्या जरूरत थी। अपने मिलने जाने की बात ही कह सकते थ। जा सच है वहा कहा न। खैर, प्रेम के ताजमहल को खुद देखने जा रह हो ता जाओ, इसम बच्चो का क्या घसीटते हा?"

"ताजमहल ता दिखलान की ही चीज है।" कहकर सुविमल बाहर निकल गये। मायालता अपने लडका के पास जाकर बडबडान लगी, "देखा? तुम लोगा ने देख लिया? मुझसे एक बार कहा तक नही। चुपके-चुपके अपन भाई की बहू से बात कर ली, चुपके-चुपके लडके तैयार भी हो गये और घर की इस दासी-बाँदी को कानाकान खबर तक नही।"

"तुम भी वहया हा—" तपोधन न अपन हाथ की सिगरेट पीठ पीछे करते हुए कहा, "तभी तुम अभी भी पिता जी से बातचीत करता हो। दूसरी कोई प्रेस्टीज वाली महिला होती ता कभी एसे अपमानित होने पर किसी तरह का का-आपरेशन नही करती।"

इस बार मायालता ने अपन लडके को आक्रमण का निशाना बनाया। क्योकि लडके ने सीधे दिल पर चाट की थी। उस चाट से मायालता तिलमिला उठी। बोली, "और उपाय ही क्या है? तुम लोग मेरा एक भी काम करते हो? परिवार के लिए थाडी-सी भा मेहनत करत हो? मुझे भी काम निकलवाने की गरज रहती है। बातें बन्द करने से काम कैसे चलेगा?"

नजरो से दूर कही 'दीवाल' बैठकर चाय बना रही थी। एक बडे काच के गिलास मे चाय लाकर वह अपनी जेठानी के पास आकर मुस्कराते हुए बोली, "दीदी आप भी कैसी बाते करती हैं? कही राजा के बिना राजपाट चल सकता है—'

"क्या! क्या कहा तुमने छोटी बहू?" मायालता तडफडा उठी, "तुम मेरे मरने की कामना कर रही हो?"

"आश्चर्य है। आप भी दीदी कैसी बातें करती हैं। चाय ठढी हा जाएगी, पहले आप इसे पा ले।' कहकर एक दूसरे बदरग इनामेल के गिलास म अशोका चाय ढालने लगी।

यह चाय घर की बूढी महरिन क लिए थी।

अचानक अपना गुस्सा दरकिनार करके मायालता पूछ बैठी, "यह चाय किस के लिए है ?"

"ऐसे गिलास म और किसका चाय होगी दीदा—"

"समझ गयी मैं। लेकिन यह भी तुम्ह कह देती हूँ छोटी बहू कि दूसरों के माल पर इतना बरहम होना ठीक नही। इतनी मँहगी चाय नौकरानी को दी जा रही है और वह भी आधसेरा गिलास भरकर। यू ही कहा जाता है 'कम्पनी का माल दरिया म डाल।' क्या नौकरानी के लिए थोडी सस्ती चाय नही मँगा सकती थी ? क्या थोडा कम देने से काम नही चलता ?"

अशोका गम चाय का सावधानी से अपने आँचल से पकडकर जाते-जाते बोली, "इन दोनो बातो म स एक भी पूरा करना मेरे लिए सभव नही है। बेहतर होगा कि कल से गोपाल की माँ के लिए चाय आप खुद बना दीजिएगा।"

"हुआ ?" तपोधन ने व्यग्य करते हुए कहा, "गाल बढ़ाकर झापड खाना हुआ ता यूँ ही नही कहता कि तुम्हारी जगह कोई प्रेस्टीज वाली महिला होती तो इन लोगो से बातें तक नही करती।"

मायालता गुस्से म बोली, "मान मर्यादा कोई देगा, तब न रहेगी ? इस गृहस्थी म मैं हमेशा दासी बनकर ही रहती आयी हूँ। अभी क्या बिगडा है। इसके बाद लडको की बहुएँ आकर उठते-बैठते अपमानित किया करेंगी।"

क्षण-क्षण म ही मायालता के गुस्से के पात्र और कारण बदलते रहते थे।

ठीक दूसरे ही क्षण वे तेजी से बगल के कमरे म सुमोहन से लडने चली गयीं क्योंकि उन्हें सुनाई पड गया था कि सुमोहन ने शायद अपनी स्त्री को लक्ष्य करके व्यग्य किया था, "यही है तुम लोगो के इतवार का नाश्ता ? वाह ! वाह ! सुना है, गरीब-दुखिया के घर म भी इतवार की सुबह का नाश्ता इससे जरा बढ़िया ही रहता है।"

यह बात कानो म जाते ही मायालता अब और रुक नही सकी। पति पत्नी की बातचीत के बीच जाकर टपक पडी। बोली, "मैं कहती हूँ देवरजी, दिन और तारीख तुम्हें याद भी रहती है। धन्य है तुम्हारी स्मरण शक्ति। नही तो इतवार और बुधवार की बातें तो तुम्हें याद रखने लायक नही थीं।"

मायालता का स्वभाव ऐसा ही था।

सिर्फ वाक्-सयम के अभाव के कारण ही उन्होंने गृहिणी की मर्यादा खो दी थी। उनसे कहीं ज्यादा कजूस, स्वार्थी और नीच मन की गृहिणियाँ भी अल्पभाषी होने के कारण अपना काम चला लेती है। मायालता जितनी बक बक करती थीं, उतनी बुरी नही थीं।

"सही बात' कहने के लालच ने ही मायालता का सारा सम्मान खत्म कर दिया था।

किसी से बात बन्द करके वे अपनी प्रेस्टिज बचाये रखेगी, ऐसी सामर्थ्य मायालता मे नही थी। उनके अन्दर बातो का अनत खजाना था जो लगातार बाहर निकलने के लिए ठेलम ठेल किए रहता था।

देवर से थोडी देर वाकयुद्ध करने के बाद उत्तप्त मायालता बडे लडके के पास जा पहुँची। बोली, "तपो तो किसी काम का नही है, क्या तुम भी इस बारे म ध्यान नही दोगे ? कहती हूँ, तुम लोगो के मँझले चाचा का मामला कब तक यू ही चलता रहेगा ?'

"चलने दो।"

"तुम इस तरह से हाथ-पैर झाड दोगे, मुझे मालूम था। मैं कहती हूँ क्या पुलिस की मदद नही ली जा सकती ? क्या यह नही कहा जा सकता कि एक आदमी को पागल पाकर उसे अपने यहा बद कर रखा है ? यह भी तो कहा जा सकता है कि कुछ दवा आदि खिलाकर सुचिन्ता ने एक भले-चगे आदमी को पागल कर दिया है।"

यह सुनकर साधन हँस पडा। बोला, "इससे शायद सुचिन्ता को थोडा परेशान किया जा सकता है ! लेकिन इसमे अपना फायदा क्या है ?"

"कुछ न करना हो तो कोई फायदा नही। लाभ तो रात-दिन अच्छे-अच्छे कपडे पहनने मे और सप्ताह म तीन दिन सिनेमा देखने म है। ठीक है, तुम लोगो को कुछ भी नही करना पडेगा। मैं एक बार राधू से मिलने जाऊगी।"

राधू या राधानाथ मायालता की बहन का दामाद है, जो लाल बाजार म नौकरी करता है। मायालता की धारणा थी कि राधू ही लाल बाजार आफिस का सर्वेसर्वा है। इसलिए हर किसी मुश्किल के वक्त मायालता घमड म भरकर कह उठती थी, "ठीक है, मैं राधू से कहे देती हूँ।"

हालांकि भरपूर नाश्ता और कई कप चाय डकारने के अलावा आज तक मायालता की बहन के दामाद ने उनका कोई काम नही किया।

फिर भी उनका घमड नही खत्म होता और राधू को कुछ कहने जाने के उपलक्ष्य म व बीच-बीच मे सदेश स भरा हुआ एक डिब्बा लेकर अपनी भाजी से मिलने चली जाया करती थी। राधू का घर भी मायालता के घर के नजदीक ही था। रिक्शे से अकेले जाने मे कोई असुविधा नही होती थी। फलत वे आज भी गयी।

सदेश का डिब्बा थमाते हुए वे भरपूर मुस्कराते हुए बोली, "बेटा आज तुमसे एक सलाह लेने आयी हूँ।

सलाह करने के लिए लोग जाने कहाँ-कहाँ दौडते हैं। हालांकि अपने घर म

सुचिन्ता किसी से भी काई सलाह नही करती थी। उनके लडके भी यही करते थे।

शायद किसी अनभ्यस्त काम को नये सिरे से शुरू करन म उन लोगों को शका होती होगी। इन्द्रनील का ही उदाहरण लें। लेकिन उसके लिए भी और क्या उपाय था ?

लीलावती ने कहा था, "शादी के बाद तुम दानो कुछ दिनो के लिए कही घूम आना। हनीमून भी मना लागे और मुहल्ले के लोगो की आँखो के सामन से कुछ दिनो के लिए हट जाना भी हो जाएगा। शादी के बाद लडकी अपने ससुराल मे न रह सके, यह तो शर्म की बात है।"

इन्द्रनील ने कहा, "श्वसुर के धन से 'हनीमून' के लिए जाने से अधिक लज्जा की बात और क्या होगी ?"

कृष्णा की माँ चिढकर बोली, "जब श्वसुर के पैसो से ही तुम्हें कुछ दिनो तक काम चलाना होगा तब उस पैसे को अशुचि और अपवित्र समझकर कुठाग्रस्त होने की कोई जरूरत नही है। यह मूखता होगी। मैं तो तुमसे बार-बार यही दाहरा रही हूँ कि हम लोगो का जो कुछ भी है, वह मुन्नी का ही है।"

इस बात पर इन्द्रनील ने कहा था, "यह हो सकता, लेकिन मेरे लिए तो यह अधिकार बेमानी है।"

लीलावती नाराज होकर बोली, "अब तुम चुप रहो। लडका की तरह हँसो खेलो, खाओ-पिओ, लेकिन बडी-बडी बातें करके मेरा जी न जलाओ। वैसे ही मैं घर और बाहर दानों जगह से परेशान हूँ। मैं पहले से दार्जिलिंग के किसी अच्छे होटल मे कमरा बुक कराये दती हूँ, तुम लोग फूलशय्या के दूसरे दिन रवाना हो जाना। इसके बाद लौटने पर फिर आगे के लिए सोचा जायगा।"

इसके बाद सारी घटनाएँ बडी तेजी से घटने लगी। कृष्ण के पिता ने दामाद को पहले से अपने घर मे बुलाकर, कहना चाहिए घर मे रोककर, खूब धूमधाम से अपनी लडकी का विवाह सम्पन्न किया। फिर फूलशय्या के दूसरे दिन अपने साथ लेकर हवाई जहाज से दार्जिलिंग भेजने के लिए, दमदम पहुँचा आये।

प्यार की ऊष्मा और घटना-चक्र तथा समारोह के तेज बहाव म असहाय होकर निरुपम बाढ मे बह जाने की तरह बह गया। उसकी शादी मे उसके माँ और भाई की कोई भूमिका ही नही रही।

'लेकिन वाकई कोई भूमिका नही थी ?

भूमिका थी श्रोता की, भूमिका थी दर्शक की। पडोस म लगातार तीन दिनों तक शहनाई बजती रही जिसका स्वर हवा मे तैरता हुआ उन तक पहुँचता रहा। सुचिन्ता और निरुपम दोनो ने ही इसे सुना।

शादी की एक और विशेषता निरुपम को देखने को मिली। शायद सुचिन्ता ने भी देखा हो, लेकिन इसका असली हकदार तो निरुपम ही था।

कृष्णा के पिता जो अनुपम कुटीर के बडे लडके के नाम पडोसी होने के कारण एक निमत्रण-पत्र भेज दिया था जिसे निरुपम ने मेज पर पडे हुए देखा। मँहगे कागज पर कलात्मक ढग से छपे उस पत्र को उठाना भूलकर निरुपम काफी देर तक निहारता रहा था।

मा-बेटे मे घर के एक और बेटे के इस आश्चर्यजनक विवाह को लेकर कोई चर्चा ही नही हुई। नीलाजन के बाहर जाते वक्त घर मे थोडा-बहुत शोरगुल हुआ भी था लेकिन इन्द्रनील अनुपम कुटीर की परिधि से निकलकर बडी खामोशी से विलीन हो गया।

सिर्फ शहनाई की आवाज से व्याकुल होकर सुशोभन बार-बार एक ही सवाल पूछने लगे, "सुचिन्ता यह शादी की शहनाई कहा पर बज रही है?"

"सुचिन्ता आहिस्ते से बोली, "पडोस मे शादी हो रही है सुशोभन।"

"कहा? किसके यहाँ? चलो सुचिन्ता हम लोग भी चलकर दूल्हा-दूल्हन को देख आएँ।"

"वाह हम लोग कैसे जा सकते हैं? क्या हम लोग उन्हे पहचानते हैं?"

"नही पहचानती? अपने पडोसियो को नही पहचानती हो सुचिन्ता?"

"क्या सभी को पहचानना सभव है?"

"लेकिन हम लोगो के बचपन के दिनो म तो ऐसी बात नही थी सुचिन्ता। अपने मुहल्ले के सभी लोगो को हम लोग पहचानते थे।"

"हम लोगो का बचपन बहुत दिन हुए बात गया है सुशोभन, "एक अबोध पागल को लक्ष्य करके माना सुचिन्ता ने खुद से ही यह बात कही, "हम लोगा का सब कुछ बात गया है। यहाँ हम लोग अजनबी हैं। हम लाग भी यहाँ किसी को नही पहचानते।"

सुशाभन ने इस पर ध्यान नही दिया, बोने, "शादी-ब्याह की इस शहनाई से मुझे बडी तकलीफ होती है सुचिन्ता। लगता है जैसे कोई किसी को हमेशा के लिए छोडकर चला जा रहा है। तुम्हे भी ऐसा नही लगता? तुम्हे तकलीफ नही होती?"

सुचिन्ता अचानक बलपूर्वक बोली, "क्यो, तकलीफ क्यो हागी? शादी-ब्याह तो खुशी की बात हाती है। हाँ, हाँ खूब खुशी की बात।"

दिन-रात की लुका-छिपी खेलते हुए कई दिन बीत गये। अनुपम कुटीर की हवा मे खामोशी छायी हुई थी। इस घर म ही कुछ दिन पहले तक काफी गहमा-गहमी थी, इसके कण कण म मधुर सगीत प्रवाहित होता था, जाने कितनी बातें

रात के अँधेरे म रोती हो । मैं क्या उस अँधेरे म भला देख सकता हूँ ?"

सुचिन्ता का धैर्य जैसे खत्म हो गया । कपित गले से बोली, "जब नही देख पाते—तब यह कैसे समझ गये कि मैं रात म रोती रहती हूँ ?"

सुशोभन पुन पहले जैसा चहलकदमी करते हुए बोले, "नही पता चलेगा ? तुम रोओगी और मुझे पता नही चलेगा ? वही जब जाने कहाँ तुम रहती थी और मैं दिल्ली मे रहता था । हर रोज देखता, नही नीता के सो जाने के बाद मैं खामोशी से अपने बिस्तरे से उठकर खिडकी पर आकर खडा हो जाता था और तब देखता कि तुम रो रही हो ।"

सुचिन्ता लगभग फुसफुसाते हुए बोली, "मैं कहाँ बैठकर रोती थी ?"

"बैठकर ? बैठकर नही । खडी होकर । बहुत दूर जाने कहाँ की किसी खिडकी के पास तुम खडी रहती थी । चद्रमा का प्रकाश तुम्हारे चेहरे पर पडता रहता था और उस रोशनी म तुम्हारी आखो से झरते हुए आँसू मुझे साफ नजर आते थे । बिल्कुल मोतिया जैसे बूद-बूद ढरकते आसू । मैं सच कह रहा हूँ न ?"

सुचिन्ता बोली, "सुशोभन, वह सुचिन्ता तो जाने कब की खत्म हो गयी है ।"

"नही, नही ।" सुशोभन चीख उठे, "तुम नाहक मरने की बात कहकर मुझे डरा रही हो । सुचिन्ता तुम भी जाने कैसी हुई जा रही हो ?"

सुचिन्ता बोली, "सुशोभन मैं तो जाने कैसी हो ही गयी थी । इस दुनिया म 'हँसना' और 'रोना' भी कोई चीज है इसे तो मैं भूल ही गयी थी ।"

वाकई ऐसा ही था ।

भावावेग की छटपटाहट से मुक्त होने के लिए रोना जरूरी है, इस बात को सुचिन्ता भूल ही गयी थी । स्वस्थ मानसिकता का परिचय देने के लिए आदमी को जाने कितना भूलना पडता है । "मैं स्वस्थ और स्वाभाविक हूँ"—इसे जाहिर करने के लिए आदमी को जाने कितना कुछ छोडना पडता है ।

लेकिन पागलो की कोई जिम्मेदारी नही होती ।

इसलिए जिसे वह भूल जाता है, उसे एकदम से भूल जाता है । जिसे भूल नही पाता, उसे दबा-ढँका रखने की कोई चिन्ता भी नही करता । और शायद उसके दिमाग म कोई बात सवार हो जाए तो सहज ही वह ध्यान से उतरती ही नही, हमेशा उसे मथती ही रहती है ।

इसीलिए जो सुशोभन नीद की दवा के प्रभाव से सारी रात मूर्च्छित होकर सोये रहते थे, अब वे जाने कैसे आधी रात को उठकर बिना किसी आहट के एक कमरे से दूसरे कमरे मे घुस जाते है ।

अँधेरे मे अगर कोई अपनी तेज नजरो से देख पाता तो सुशोभन की कुतूहल भरी आँखे और सफलता से दीप्त हुआ चेहरा उसे जरूर नजर आता ।

सुचिन्ता का कमरा भी अँधेरे म डूबा हुआ था ।

इस छोटे से कमरे में कोई बेड स्विच भी नहीं था जिसे तुरत आनकर बिजली जलायी जा सकती। सुचिन्ता को सहसा अँधेरे में कुछ भी नजर नहीं आया। सिर्फ अपने चेहरे पर उन्होंने एक भारी हाथ का स्पर्श महसूस किया। वह हाथ जैसे चेहरे पर फिरकर यह पता करना चाहता था कि सुचिन्ता के गालों पर मोतियों जैसे आँसुओं के कोई चिह्न हैं या नहीं।

'कौन है! क्या बात है। क्या हुआ?'' झटके से उस हाथ को ठेलकर अपनी देह का कपड़ा सँभालते हुए सुचिन्ता हड़बड़ाकर उठ बैठी। बत्ती जलाकर उन्होंने देखा कि उनके बिस्तर के पास एक विचित्र कुतूहल भरी मुस्कराहट लेकर वह पागल खड़ा हुआ था।

अचानक सुचिन्ता को महसूस हुआ कि उसके सोते हुए अगर कोई उसका खून करने आये तो उसकी मुख-मुद्रा ठीक इसी तरह होगी। उन्होंने दबी मगर तेज आवाज में पूछा,"अचानक इस तरह से यहां चले आये? क्या बात है?'

पागल ने फुसफुसाकर कहा, "तुम्हारी चोरी पकड़ने आया था। देखने आया था कि तुम रो रही हो कि नहीं।"

"छि छि! नींद टूटने पर क्या इस तरह से चले आना चाहिए? जाओ अपने कमरे में जाकर सो जाओ।"

पागल ने इसकी परवाह नहीं की।

अपने चेहरे पर भरपूर मुस्कराहट लाकर बोला, "तुम्हें कैसा पकड़ लिया, यह नहीं कह रही हो। कहती थी कि तुम बिल्कुल नहीं रोती। आँसुओं से तुम्हारे गाल अभी भी भीगे हुए हैं।"

"ठीक है, मैं इन्हें पोंछ लेती हूँ। चलो सुशोभन, तुम्हें चलकर सुला दूं।"

सुशोभन को कहीं बैठने की जगह नजर नहीं आयी शायद इसीलिए वे परम निश्चिंतता से बिस्तर पर बैठ गये। बोले, "सुचिन्ता, मुझे अब नींद नहीं आयेगी यहाँ पर कुछ देर बैठकर तुमसे बातें करने का मन हो रहा है?"

"मेरा मन नहीं है, मुझे नींद आ रही है।' सुचिन्ता ने पागल को डाँटने के लिए थोड़े कड़े लहजे में कहा, "नींद में बाधा पड़ने से मेरी तबियत खराब हो जाती है। चलो, जाकर अपनी जगह पर सो जाओ।'

"नहीं सुचिन्ता," सुशोभन बच्चों की तरह मचलते हुए बोले, "नहीं, नहीं, तुम्हें आज सोने नहीं दूंगा। देखो न तुमसे मैं कितनी मजेदार बातें कहनेवाला हूँ।"

सुशोभन मैं तुम्हारे पैर छूती हूँ। अब चलो यहां से। सुनो, रात में कभी इस तरह से न आना चाहिए, न बातें करना चाहिए। समझ गये?'

"नहीं।"

"नही, नही, अब जल्दी उठकर अपने कमरे मे जाओ। मुझे बडी जोर से नीद आ रही है।"

सुशोभन चुपचाप खडे हो गये।

बुझे हुए स्वर मे बोले, "लेकिन पहले तो तुम्हे इतनी नीद नही लगती थी सुचिन्ता, जब खिडकी के पास खडी होकर रोती रहती थी। तब तो यू ही कितनी रात बीत जाती थी न तुम्हे पता चलता था, न नीद ही सताती थी ?"

"अब मेरी तबियत ठीक नही रहती।"

"तबियत ठीक नही है।' सुशोभन चौक गये। बोले, "तुम्हारी तबियत खराब रहती है और सारी दवाएँ मुझे ही खिलाती रहती हो। इस्स, तुम बहुत दुबली भी हो गयी हो।'

एक व्यवहारहीन पागल स्नेह मे भरकर रोग की परीक्षा करने के लिए सुचिन्ता के माथे और गालो पर हाथ फेर-फेरकर देखने लगा।

सुचिन्ता हताश होकर बोली, "सुशोभन, बीच-बीच मे ऐसा लगता है कि तुम बिल्कुल चगे हो गये हो। लेकिन फिर—"

"चगे होने से क्या मतलब है सुचिन्ता ?" पागल ने खीझकर कहा, "क्या मुझे कोई बीमारी हुई थी ? तुम्ही पागलो की तरह सारे समय मुझे दवा पिलाती रहती हो। अब मैं नही खाऊँगा। जैसे आज मैंने नही खाया—" अपनी बहादुरी अपने कौतुक भरे चेहरे से सुशोभन ने रहस्योद्घाटन किया, "रात मे सोने से पहले तुमने मुझे जो टेबलेट दिया था, मैंने उसे सिर्फ मुह मे दबा रखा था जिसे तुम्हारे कमरे से बाहर जाते ही मैंने फेक दिया था।"

"फेंक दिया ?"

"बिल्कुल फेकूगा। तुम मुझे सिर्फ दवा क्यों खिलाती रहोगी ?"

सुचिन्ता उस प्रसन्नता भरे मुख को चकित होकर देखती रही। दवा पेट मे न जाने के कारण ही शायद यह अनिद्रा और ऐसी स्नायविक चचलता है। फिल हाल तो यही दवा सुला-सुलाकर पागल के चचल स्नायुओ के तनाव को ढीला कर रही थी। इस दवा को नियमित देते रहने से लाभ होगा, डाक्टर की भी यही राय थी।

सुशोभन ने सुचिन्ता की नजर बचाकर दवा को फेंक दिया था। सुचिन्ता को और थोडा सतर्क रहना चाहिए था।

"सुशोभन, अब कभी ऐसा मत करना।"

"क्या नही करूँगा ?"

'यही दवा फेंक देना, रात गुजरने पर यहाँ आकर मेरी नींद खराब करना—'

"सुचिन्ता, तुम नाराज हो गयी ?" सुशोभन के चेहरे पर अपराधीपन छा गया।

शायद सुचिन्ता कहने जा रही थी, "हाँ मैं नाराज हूँ।" लेकिन ऐसा कह नहीं सकी। उस अबोध चेहरे को देखकर जैसे उनकी अन्तरात्मा उनके इस विचार से उन्हीं को धिक्कारने लगी।

अपने को थोड़ी सी असुविधा के आघात से बचाने के लिए वे इस अबोध विश्वस्त व्यक्ति को चोट पहुँचायेंगी ? क्या सुचिन्ता इतनी अधिक स्वार्थी हो गयी है ?

"नाराज क्या होऊँगी ?' सुचिन्ता मुस्करा पड़ी, "मुझे तो नींद आ रही है। बहुत नींद आ रही है। चलो, तुम्हें सुला आऊँ, फिर मैं भी सोऊँगी।"

"क्या मुझे सुलाने की क्या जरूरत है ?" सुशोभन गम्भीरतापूर्वक बोले," मैं क्या कोई छोटा बच्चा हूँ ? इससे अच्छा है कि तुम्हीं लेट जाओ। मैं तुम्हारे माथे पर हाथ फेर रहा हूँ, तुम्हें गहरी नींद आयेगी।"

"खूब गहरी नींद आयेगी ? खूऽऽब गहरी नींद ?" अचानक एक विचित्र अस्वाभाविक स्वर में सुचिन्ता कहने लगी, "ऐसी नींद जो कभी नहीं टूटेगी ? सुशोभन ऐसा कर सकते हो ? मुझे ऐसी नींद में सुला सकते हो ? पहले तुम मुझे ऐसी नींद लाने की गारंटी दो, तब मैं तुम्हारी गोद में सिर रखकर सो जाऊँगी।"

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं सुचिन्ता तुम मुझसे इस तरह से बातें न किया करो।"

"नहीं कहूँगी ? ठीक है। लेकिन दिक्कत यह है कि मेरे सिर पर किसी के हाथ फेरने से मुझे नींद नहीं आती है।'

"नींद नहीं आती ?"

"नहीं।"

"आश्चर्य यह है। और मुझे क्या महसूस होता है, जानती हो सुचिन्ता ? मेरे माथे पर तुम्हारे हाथ फेरने से मैं खूब आराम से सो सकता हूँ। लेकिन तुम तो ऐसा कभी नहीं करतीं।"

"अच्छा करूँगी। किसी दूसरे दिन करूँगी। अब आज ऐसे ही सो जाओ, सुशोभन।"

"दूसरे दिन क्या, आज ही।" अचानक जिद भरी भंगिमा में वे सुचिन्ता के बिस्तर पर धप्प से बैठते हुए और अपनी खास हँसी में रात की निस्तब्धता को भंग करते हुए बोले, "मुझे हिलाओ तो जानूँ। देखूँ, तुम्हारी देह में कितना जोर है।'

नहीं, सुचिन्ता की देह में ज्यादा ताकत नहीं है। कभी भी नहीं रही। लेकिन आत्मबल ? वह शायद शरीर की ताकत के विपरीत होता है। सभी को ऐसा

महसूस होता है, यह नही मालूम लेकिन सुचिन्ता के सदभ म ऐसा ही था। बेहद आत्मबल न होने से पागल की जोरदार खिलखिलाहट से चौंककर बडे लडके का नीद टूट जाने पर इसके चकित होकर उस कमरे म आ जाने के बावजूद भला सुचिन्ता इतने सहज ढग से वैठी रह सकती थी ?

और सिफ वैठे रहना ही नही, नजदीक वैठकर उस पागल के सिर पर हाथ भी फेरते रहना पडा था।

लेकिन निरुपम ने कुछ भी नही कहा।

सिफ वह उठकर एक बार दरवाजे के बाहर आकर सामने बरामदे मे खडा हो गया था। एक बार कहना भी सही नही होगा, कहना चाहिए क्षण भर के लिए वह बाहर आया था। दूसरे ही क्षण वह छाया खामोशी से हट गयी थी। सुचिन्ता ने देखा, पलक झपकते न झपकते उस छाया को अँधेरे म गायब होते हुए देखा।

लेकिन निरुपम क्या कोई सवाल नही कर सकता था ? कुछ नही तो विस्मय प्रकट ही कर सकता था। माँ के ऊपर क्या थोडी-सी भी सहानुभूति प्रकट करना क्या उसके लिए सभव नही था ?

सुचिन्ता का बडा लडका तो उदार और बेहद परिष्कृत स्वभाव का था। उनके घर मे जबरन आये हुए एक पागल के लिए वह बहुत कुछ करता है। निरुपम के ऊपर दायित्व डालकर नीता जैसी बुद्धिमती लडकी भी निश्चित हो गयी थी। वह जानती थी कि सुचिन्ता के बडे लडके की सहानुभूति वैसे पागल के प्रति पूरी तौर से थी।

लेकिन आश्चर्य है, अपनी मा के प्रति उसकी जरा भी सहानुभूति नही थी।

सुचिन्ता न गहरी सास लेते हुए सोचा, एक तुच्छ सवाल करके भी वह बहुत बडा बन सकता था, बहुत सुन्दर हो सकता था। अगर वह सिफ यही पूछ लेता कि, "क्या हुआ ? बात क्या है ?" लेकिन मनुष्य का मन बहुत कृपण है, दीन है।

मुट्ठी मे ऐश्वय की चाभी बद रहने के बावजूद व्यक्ति बडे आदर से दैन्य को स्वीकार कर लेता है।

सुचिन्ता सारी रात स्तब्ध होकर वैठी हुई मनुष्य के इस इच्छाकृत दैन्य के बारे मे सोचती रही।

रात मे नीद मे बाधा पडने की प्रतिक्रियास्वरूप सुशोभन सुबह देर तक सोते रहे। बत्ती रातभर जलती रही थी। सुचिन्ता ने सुबह जाकर उसे बुझा दिया। इसके बाद वे नहानघर मे चली गयी। सुचिन्ता के कमरे का आधा सरकाया हुआ पर्दा वैसे ही झूलता रहा।

नौकरानी सध्या रोज की तरह बरामदा पोछने के लिए हाथ म पोछना

और वाल्टी लेकर आयी। सरकाये हुए पर्दे से जब उसने छोटे कमरे में एक छोटी सी खाट पर एक भारी-भरकम आदमी को सोते हुए देखा तो वह काफी देर तक चौंककर खडी रह गयी। इसके बाद उसके चेहरे पर छुरी की धार जैसी एक तेज महीन हँसी फूट पडी। फिर वह अपने काम मे जुट गयी।

सुबल चाय का पानी लेकर दूसरी मजिल पर आया, ट्रे को टेबिल पर रखकर उसने कधे से झाडन उतारकर टेविल को अच्छी तरह से पोछ दिया। इसके इसके बाद पीछे मुडकर देखते ही वह जड हो गया।

जड होने की बात ही थी।

उसे अच्छी तरह से याद है रात म पगला बाबू के सो जाने के बाद वह कमरे मे पीने का पानी रखकर और बिस्तर म मसहरी खोसकर गया था।

नही, सुबल के चेहरे पर हँसी की किरण नही फूटी। उसका काला चेहरा और भी काला हो गया और चेहरे की पेशियां मन ही मन कुछ सोचकर कठोर पड गयी।

कलकत्ते मे अनुपम कुटीर के अलावा ढेर सारे घर हैं। अगर वहा रहने का ठिकाना न हो तो ठीक है सुबल अपने 'देश' लौट जाएगा।

अब न इन्द्रनील के लिए चाय बनती है न नीलाजन के लिए ही। चाय बनती है सिर्फ निरुपम के लिए। इस समय वह रोज बरामदे के कोने मे बिछी अकेली कुर्सी पर बैठकर अखबार पढता हुआ मिलता है। लेकिन आज वह जगह खाली पडी हुई थी।

तनाव भरे काले-कलूटे चेहरे वाला सुबल इन्द्रनील और नीलाजन के खाली कमरो को पार करके निरुपम के कमरे के सामने आकर खडा हो गया। कुछ देर तक यू ही खडा रहा।

उसने देखा कि वह कमरा भी खाली था।

उसने चकित होकर देखा कि बिस्तरे की चादर खाट से नीचे लटक रही थी। इन्द्रनील के कमरे म साधारणत ऐसा दृश्य नजर आ जाता था लेकिन निरुपम के कमरे म ऐसी अस्त-व्यस्तता आज तक नजर नही आयी थी। नीद से उठने पर बिस्तर झाडकर कमरे की चीजो को व्यवस्थित करके तब वह अपने कमरे से बाहर निकलता था।

क्या निरुपम भी चला गया ?

सुबल को ऐसा ही लगा।

अचानक सुबल के चेहरे पर क्रूरता झलकने लगी। वह एक के बाद एक तीनो कमरो की खिडकिया-दरवाजो को खोलकर और उनके सारे पर्दे हटाकर दृढ कदमो से नीचे उतर गया।

अगल-बगल के तीनो खाली कमरो का खालीपन भयकर रूप से उभर आया

था। भोर की शर्मीली किरण खिडकियो से बेरोक-टोक घुसकर दीवाल से सट-कर खडी हुई यह दृश्य देखती रही।

सुचिन्ता नहा-धोकर बिल्कुल सफेद ब्लाउज और कान के ऊपर वैसी ही एक सफेद पतली चादर ओढकर अपने कमरे के सामने आकर खडी हो गयी। देखा, उस समय भी उस छोटे से बिस्तर पर अपनी भारी-भरकम देह लेकर किसी शिशु की तरह सुशोभन गहरी नीद ले रहे थे। लौटकर वे चाय की मेज के पास आकर खडी हो गयी। देखा, सुबल हमेशा की तरह चाय रख गया है लेकिन हमेशा की तरह निरुपम अपनी कुर्सी पर नही बैठा हुआ था। उन्होने पलटकर देखा और देखते ही देखते सुबल द्वारा तैयार किया हुआ वह सारा दृश्य उनकी नजरो के सामने आ गया।

लेकिन क्या वाकई यह दृश्य सुबल का तैयार किया हुआ था ?

या सुचिन्ता द्वारा निर्मित था। सुबल तो एक क्रूर हँसी हँसकर सिर्फ उसे उद्‌घाटित कर गया था।

मतलब निरुपम भी चला गया ?

सुचिन्ता ने भी सुबल की तरह ही सोचा। सोचने लगी, आखिर कब गया ? क्या आधीरात को ही घर से बाहर निकल गया ?

नीलांजन के जाने के बाद उसके खाली कमरे मे खडे होकर उसे देखते हुए सुचिन्ता की आँखो से बरबस आसू झरने लगे थे। शायद उन्हे खुद भी इसका पता न रहा हो। लेकिन आज एक कतार मे खडे इन तीन-तीन खाली कमरो के भयकर खालीपन को सूनी नजरो से ताकती हुई वे पत्थर की मूर्ति की तरह अचल हो गयी। गहरी साँस लेना तो दूर रहा लगा कि वे सास लेना ही भूल गयी थी।

लेकिन सुचिन्ता का बडा बेटा घर छोडकर नही गया था।

वह अपने परिवार के राहु की पुत्री से वचनबद्ध था। वह तडके ही घर से निकलकर बहुत दूर तक इधर-उधर घूमता रहा, इसके बाद डा० पालित के दिए हुए समय पर उनके चेम्बर मे जाकर हाजिर हो गया।

डॉक्टर बोले, "अच्छा ऐसी बात है ? मैंने ऐसे आशा नही की थी।" फिर बोले, "इसका मतलब दो-एक सिटिंग और करनी पडेगी।'

डाक्टर के यहाँ से होकर वह बिना नहाये धोये ही कालेज चला गया। वहाँ से शाम को घर लौटा।

घर मे घुसते ही उसे महसूस हुआ कि शायद माँ ने भी दिन भर कुछ नही खाया होगा। लेकिन दूसरे क्षण उसने जान-बूझकर मन को सख्त कर लिया। सोचा ऐसा न भी हुआ होगा, पागल का मन रखने के लिए ही शायद खाने की मेज पर साथ-साथ बैठकर हँसते-बतियाते हुए भोजन कर लिया हो।

सुबल न बडे भैया को घर म घुसते हुए देखा। उसके सीने पर रखा हुआ बोझ उतर गया। सुबह की बात साचकर उसे अपन ऊपर शर्म भी आयी। क्या मालूम किसी काम से गये रहे होगे। शायद आज सुचिन्ता को भा सचमुच भूख नही लगी होगी। अन्यथा दो-दा लडका के घर से चले जाने के बावजूद सुचिता के खाने और साने म सुबल ने कभी कोई व्यतिक्रम नही देखा था।

सुचिता गोद म एक पुस्तक लेकर बैठी हुई थी।

बिना किसी भूमिका के निरुपम बोला, 'डाक्टर पालित की राय म एक-दो सिटिंग की और जरूरत है।"

सुचिन्ता को जवाब देने मे थोडा वक्त लगा। शायद आकस्मिक ढग से कही गयी बात को समझने म वक्त लगा होगा। विलम्ब स कहने पर भी उन्होने बहुत सक्षिप्त जवाब दिया। सिफ इतना कहा, "ओह।"

निरुपम लौट गया।

शायद लौट ही जाता, लेकिन अचानक एक बात साचकर रुक गया। बोला, "सोच रहा हूँ कि उन्ह अस्पताल मे भर्ती करवा दूँ।'

इस बार सुचिता को जवाब देन म वक्त नही लगा।

अत्यन्त सहजता से वे बाली, "ऐसा करना उचित नही होगा।"

"उचित नही होगा ? ऐसी भर्ती लायक हालत होने के बावजूद उचित नही होगा ?"

बहुत अधिक उत्तेजना के वक्त क्या आदमी बेहद शात हो जाता है ? इसीलिए निरुपम का लहजा और बाते एकदम ठढी है।

सुचिन्ता उसे तटस्थ चेहरे की आर देखकर वैसे ही लहजे म बोली, "नही। कम स कम नीता के लौटने तक ता मैं उन्ह अपने से बिल्कुल अलग नही कर सकती।"

निरुपम उस जिद्दी चेहरे की ओर देखता रह गया फिर बोला,"इसका मतलब यही समझना हागा कि तुम चाहती हो कि मैं भी घर म न रहूँ।"

यह सुनकर सुचिन्ता बिल्कुल नही चौकी।

शायद ऐसी बात सुनने के लिए वे तैयार हो था। शायद इतन दिना से दुनिया के हर सवाला को सहने के लिए उन्हाने मन ही मन अपने को तैयार कर लिया था।

इसीलिए बिना चौंके ही व बोला, "मेरे चाहन न चाहने पर ही क्या सब निभर करता है ?"

"कुछ ता करता ही है।"

सुचिन्ता एक क्षण के मौन के बाद बोली, "नीरू, विवक और विवचन करन की क्षमता सब म समान नही हाता।"

सबसे अन्त म उसने यह भो लिखा था कि सागर को लेकर वह यथाशीघ्र भारत लौटने वाली है। साथ म सागर के दोस्त शिशिर रहेगे, इसलिए चिंता की कोई बात नही है। पहले जाकर दिल्ली म रुकना पडेगा क्योकि सागर के कई मामले वहाँ सुलझाने हैं इसके बाद फिर भविष्य के बारे मे सोच-विचारकर देखना पडेगा कि क्या करना उचित होगा। कहना नही होगा कि जीवन के हर क्षेत्र मे नीना अपने भाग्योपलब्ध बडे भाई के स्नेह और सहयोग की आशा रखती है।

उस टेलिग्राम की ओर एकटक देखते हुए निरुपम सोचने लगा, ऐसी शक्ति व्यक्ति म कहाँ छिपी होती है ? जिस शक्ति के वशीभूत होकर नीता जैसी लाड-प्यार म पली, एक कम उम्र की मुखी लडकी अधे पति और पागल पिता इन दो दो दुर्वह भारो के बावजूद बिना विचलित हुए अपने सुखी भविष्य के बारे मे सोच सकती है। व्यक्ति म ऐसी शक्ति आती कहाँ से है ?

निरुपम की भो भविष्य के बारे म कोई योजना है ? क्या कभी थी भी ? वर्तमान रात और आगामी कल के अलावा क्या उसने कभी अपने भविष्य के बारे म कोई दूरगामी चिन्ता की थी ? सिर्फ निश्चित दिनचर्या के अलावा निरुपम ने अपने भविष्य के बारे म कुछ भी सोचा नही था ?

भाग्य की विमुखता ही क्या व्यक्ति म साहस जुटाती है ? निरुपम के जीवन मे भी तो ऐसी परिस्थिति आ खडी हुई है लेकिन निरुपम उसे सहज रूप मे स्वीकार करके नये सिरे से भविष्य की योजना कहाँ बना पा रहा है ? वह ऐसा साहस भी नही जुटा पा रहा है जिसके माध्यम से वह सुचिन्ता से स्नेह और सहानुभूति से पेश आ सके और सुशोभन को वह निकट आत्मीय की भाति स्वीकार कर सके।

प्रेम करने और पाने से ही क्या व्यक्ति को अपने मन का अतल गहराइयो मे छिपी हुई कभी न खत्म होने वाली शक्ति के स्रोत की प्रतीति होती है।

लेकिन प्रेम करने और पाने का सौभाग्य भी इस ससार मे कितने लोगो को प्राप्त होता है ? शायद ही किसी को अपने जीवन मे उस महिमामय से साक्षात्कार होता हो। साक्षात्कार होने पर भी आत्माभिव्यक्ति का मौका नही मिलता। शायद मौका मिल भी जाए तो वह द्विधा और कुण्ठा के कारण व्यर्थ हो जाता है। इसीलिए लोग मन ही मन इतने दीन-हीन-कठोर बन जाते है।

अचानक निरुपम को सुचिन्ता की याद आ गयी।

आज की सुचिन्ता नही। अनुपम मित्तिर के ससार को यन्त्रवत चलाने वाली सुचिन्ता। निर्जीव, खामोश और विवर्ण सुचिन्ता। जहा निरुपम ने माँ को किसी भी बात का प्रतिवाद करते नही देखा। गृहस्थी मे अपनी बात को मनवाने की

कभी कोई काशिश करते हुए नही दखा । निरुपम का अपन नाना की मृत्यु के दिन की एक घटना याद हा आयी ।

सुबह सुबह उनकी तबियत बहुत अधिक खराब हो जान को सूचना मिली थी । सुचिन्ता उसी समय जाने के लिए तैयार हो रही थी कि अनुपम ने सिर खुजलाते हुए कहा, "शाम को जाने से नही होगा ? मैंने तो आज कई लागो को खाने पर बुला रखा है । इसको सँभालकर शाम को चली जाना"—सुचिन्ता बिना कुछ कहे हुए अपना जाना रोककर रसोईघर म घुस गयी । कोई प्रतिवाद तक नही किया ।

कुछ घण्टो के बाद ही रोगी की मृत्यु का समाचार मिला ।

निरुपम को अचानक इस बात का अहसास हुआ कि माँ के इस मौन सहन को वह सिफ अनुकम्पा भरी नजरो से देखता आया है । मा के मन को उसने कभी समझने की कोशिश नही की । हालाकि थोडी-सी काशिश से ही आदमी को समझा जा सकता है । और उस तरह से समझने की कोशिश म ही व्यक्ति का महत्त्व है, उसकी मानवीयता है ।

आदमी सब कुछ समझ-बूझकर भी समझना नही चाहता, यही आश्चर्य करने वाली बात है ।

वह महत्वपूण के प्रति सम्मान व्यक्त करता है, श्रद्धा प्रकट करता है लेकिन वैसा कभी बनना नही चाहता । 'महत्वपूण होने की जरूरत क्या है, न होन से क्या बिगड जायगा ?' ऐसा ही कुछ वह सोचता है ।

हाथ म टेलिग्राम लिए हुए निरुपम सुशोभन के पास जा पहुँचा । सुशोभन पागलपन की चचलता भूलकर अकेले गभीर होकर बैठे हुए थे । सुशोभन सुबह से ही खामोश से थे । वे प्राय एस नही रहते थे । अन्य दिनो कुछ न करन पर भी कमरे म बैठकर जोर-जोर से कविता ही पढते रहते थे ।

आज नीद टूटने के बाद से वे चिन्तामग्न होकर खामोश बैठे थे ।

न जाने क्या बात थी ।

शायद जगने के बाद नय परिवेश को देखकर अचभित हो गय थ या रात के पागलपन को याद करके गुमसुम थ, कौन जान ? अपने पागलपन भरे आचरण का अहसास क्या पागल को होन लगा था ?

निरुपम न टेलिग्राम को उनके सामन रख , ' इस पढ़ लीजिए ।

"पढ़ लूँ । मैं इसे पढ़ ?" सुशोभन नि चकित दृष्टि से दख हुए बाले, "क्या है यह ?"

"टेलिग्राम नही पहचानत ?"

' टेलिग्राम क्या नही पहचानूगा ? अच्छ समझते क्या हो ?"

और मजबूत होती जा रही थी। सिर्फ अपरिचित के साथ विवाह मे जो बात कुछ दिना के बाद नजर आती है, परिचित के साथ विवाह मे वही बात हनीमून के दौरान ही नजर आने लगती है। शायद यही स्वाभाविक है। पूवराग की स्थिति की समाप्ति और नव अनुराग की व्रीडा-रक्तिम माधुरी के नपथ्य म चले जाने और विवाह हो जाने के बाद वर-वधू को प्रतिदिन के पति-पत्नी की भूमिका मे उतरने के लिए भी भला समय लगता होगा ?

अपने भविष्य के बारे म विचारते हुए ही विरोध का सूत्रपात हो जाता है।

कृष्णा के पिताजी न लडकी और दामाद के लिए होटल का एक कमरा एक महीने के लिए बुक करवा दिया था। नवदाम्पत्य के एक माह लगभग पूरे हो रहे थे, तभी एक दिन कृष्णा ने जिद पकड ली कि वह कलकत्ता लौटन के बाद इन्द्रनील के घर म ही रहेगी, उसे 'घरजमाई' नही बनने देगी।

इन्द्रनील बोला, "यह असभव है।"

कृष्णा नाराज होकर बोली, "जरा सुनू तो असंभव क्यो है ?"

इन्द्रनील बिना किसी तक के बोला, "असभव है इसीलिए असभव है। इसमे क्यो का सवाल नहीं उठता।"

"शादी के बाद लडकियाँ ही अपने ससुराल जाती हैं, लडके नही।"

"मेरी तकदीर म तो उल्टा लिखा है। लडकी के घर म सात दिनो तक कौन दूल्हा शादी के लिए धरना दिए बैठा रहता है।"

"वह अलग बात थी"—कृष्णा नाराज होकर बोली, "उस मामले म मेरा कोई हाथ नही था। लेकिन इस समय मेरा जीवन सिफ मेरा अपना है। मेरी इच्छा—"

इन्द्रनील मुस्कराते हुए बोला, "अपनी इच्छानुसार तुम मुझे नचा सकती हो। लेकिन मुझे लेकर ससुराल म जान की कामना मत करना, यही अनुरोध है।"

"तुम्हारे अनुराध की परवाह किसे है ? अगर तुम अपनी ससुराल म रहोगे तो अपन दोस्तो के आगे मैं शम से सिर नही उठा पाऊँगी।'

इन्द्रनील ने हसते हुए कहा, "खैर, मूल कारण का पता चल गया। मैं यही सोचकर परेशान हो रहा था कि अचानक तुम अपनी ससुराल जाने के लिए आखिर इतनी उतावली क्या हो गयी हो ? क्या तुम्हे भी हिन्दू कुलवधुओ की हवा लग गयी ? लेकिन कृष्णा, तुम अपने दोस्तो के सामने मारे शर्म के आखे नही उठा पाओगी। क्या यह बात तुमने पहले नहीसोचा थी ? यह व्यवस्था तो शादी स पहले ही निश्चित हो गयी थी। तब तो तुमने आपत्ति नही की थी ?"

कृष्णा बोली, "उस समय आपत्ति करके क्या मैं शादी को खटाई म डाल

देती ? ऐसी मूर्ख मैं नही हूँ। यह बात मैं अच्छी तरह से जानती थी कि पिता जी की बातें माने बिना यह शादी सभव नही थी।"

"शादी नही हुई होती तो क्या बिगड जाता।"

"मेरा बिगडता।" कृष्णा मुस्कराकर, बोली, "नचाने के लिए एक बदर की सख्त जरूरत महसूस होने लगी थी।"

"इस दुनिया मे बदर तो दुलभ नही है।'

"दुलभ है। ऐसा न होता तो मेरी सभी हतभागी सहेलिया अभी तक कुवारी क्या बैठी हुई हैं। मुझसे तो वे सब बेहद जलने लगी है। कहती है," तू बडी भाग्यवान है।" असल मे आजकल सभी माता-पिता अपनी लडकियो की शादी की बात ही नही सोचते।"

"नही सोचते ?"

"बहुत कम लोग सोचते हैं। अधिकतर माता-पिता सोचते है कि उनको इतने झमट मे पडने की जरूरत क्या। अगर वह किसी को फँसा लेती है तो शादी हो जाएगी, नही तो जरूरत क्या है। खर्च भी बचता है, झझट भी नही करना पडता।"

"तो सभी लोग जुटाती क्यो नही ?"

"अहा!" कृष्णा बोली, "सभी क्या मेरी तरह चतुर होती है ?"

"ठीक कहती हो। लेकिन फिलहाल अब तुम्हारी बुद्धि आगे सफल होने वाली नही है। अपने मकान मे तुम्हे ले जाना मेरे लिए असभव है।"

कृष्णा गभीर होकर बोली, "तुम्हारे लिए असभव होगा लेकिन मेरे लिए नही। क्या उस मकान मे मेरा कोई अधिकार नही है ?"

"तुम्हारा अधिकार ?" इन्द्रनील चकित होकर देखने लगा।

कृष्णा मुह टेढा करते हुए बोली, "इतना चकित होने की क्या बात है ? अपने पिता के तुम तीन लडके हो। तीन हिस्सो मे एक हिस्सा तुम्हारा है। तुम्हारा मतलब मेरा। मैं वहा जाकर अपना हक लेकर रह सकती हूँ।"

इन्द्रनील ने कहा कि कृष्णा चाहे तो वहा जाकर अपने हक के लिए लड सकती है, वह इन सबके बीच नही पडेगा।

कृष्णा बोली, "ठीक है मैं खुद देख लूगी।" मन ही मन वह कडवाहट मे भरकर सोचने लगी, दर असल तुम्हारी असुविधा कहाँ है, इसे मैं खूब समझती हू। यही तुम्हारी माँ की चरित्र जगजाहिर न हो जाय, इसीलिए डरते हो न। खैर—वह बाधा अब मैं अधिक दिन नही रहने दूगी। एक तरफ से सब साफ कर दूगी।

असल मे कृष्णा अपनी माँ के उकसाव पर चल रही थी। मुहल्ले मे रहकर लडकी की सास एक पागल के साथ पागल बनी रहेगी। इसे वे बर्दाश्त करने को

और मजबूत होती जा रही थी। सिर्फ अपरिचित के साथ विवाह मे जो बात कुछ दिनो के बाद नजर आती है, परिचित के साथ विवाह म वही बात हनीमून के दौरान ही नजर आने लगती है। शायद यही स्वाभाविक है। पूर्वराग की स्थिति की समाप्ति और नव-अनुराग की व्रीडा-रक्तिम माधुरी के नपथ्य म चले जाने और विवाह हो जाने के बाद वर-वधू को प्रतिदिन के पति-पत्नी की भूमिका मे उतरने के लिए भी भला समय लगता होगा ?

अपने भविष्य के बारे म विचारते हुए ही विरोध का सूत्रपात हो जाता है।

कृष्णा के पिताजी न लडकी और दामाद के लिए होटल का एक कमरा एक महीने के लिए बुक करवा दिया था। नवदाम्पत्य के एक माह लगभग पूरे हो रहे थे, तभी एक दिन कृष्णा ने जिद पकड ली कि वह कलकत्ता लौटन के बाद इन्द्रनील के घर मे ही रहेगी, उसे 'घरजमाई' नही बनने देगी।

इन्द्रनील बोला, "यह असभव है।'

कृष्णा नाराज होकर बोली, "जरा सुनूँ तो असभव क्या है ?"

इन्द्रनील बिना किसी तर्क के बोला, "असभव है इसीलिए असभव है। इसम क्यो का सवाल नहीं उठता।"

"शादी के बाद लडकियाँ ही अपने ससुराल जाती हैं, लडके नही।"

"मेरी तकदीर मे तो उल्टा लिखा है। लडकी के घर मे सात दिनो तक कौन दूल्हा शादी के लिए धरना दिए बैठा रहता है।"

"वह अलग बात थी"—कृष्णा नाराज होकर बोली, "उस मामले म मेरा कोई हाथ नही था। लेकिन इस समय मेरा जीवन सिर्फ मेरा अपना है। मेरी इच्छा—"

इन्द्रनील मुस्कराते हुए बोला, "अपनी इच्छानुसार तुम मुझे नचा सकती हो। लेकिन मुझे लेकर ससुराल म जान की कामना मत करना, यही अनुरोध है।"

"तुम्हारे अनुरोध की परवाह किसे है ? अगर तुम अपनी ससुराल मे रहोगे तो अपन दोस्तो के आगे मैं शम से सिर नही उठा पाऊँगी।'

इन्द्रनील ने हँसते हुए कहा, "खैर, मूल कारण का पता चल गया। मैं यही सोचकर परेशान हो रहा था कि अचानक तुम अपनी ससुराल जाने के लिए आखिर इतनी उतावली क्या हो गयी हो ? क्या तुम्हे भी हिन्दू कुलवधुओ की हवा लग गयी ? लेकिन कृष्णा, तुम अपने दोस्तो के सामने मारे शर्म के आख नही उठा पाओगी। क्या यह बात तुमने पहले नही सोची थी ? यह व्यवस्था तो शादी स पहले ही निश्चित हो गयी थी। तब तो तुमने आपत्ति नही की थी ?"

कृष्णा बोली, "उस समय आपत्ति करके क्या मैं शादी को खटाई मे डाल

देती ? ऐसी मूर्ख मैं नही हूँ । यह बात मैं अच्छी तरह से जानती थी कि पिता जी की बातें माने विना यह शादी सभव नहीं थी ।"

"शादी नही हुई होती ता क्या विगड जाता ।"

"मेरा बिगडता ।" कृष्णा मुस्कराकर, वोली, "नचाने के लिए एक बदर की सख्त जरूरत महसूस होने लगी थी ।"

"इस दुनिया म बदर तो दुर्लभ नही है ।'

"दुलभ है । ऐसा न होता तो मेरी सभी हतभागी सहेलिया अभी तक कुवारी क्या वैठी हुई हैं । मुझसे तो वे सब वेहद जलने लगी हैं । कहती है," तू वडी भाग्यवान है ।" असल म आजकल सभी माता-पिता अपनी लडकियो की शादी की बात ही नही सोचते ।"

"नही सोचते ?"

"वहुत कम लोग सोचते हैं । अधिकतर माता-पिता सोचते है कि उनको इतन झझट मे पडने की जरूरत क्या । अगर वह किसी को फँसा लेती है तो शादी हो जाएगी, नही तो जरूरत क्या है । खच भी बचता है, झझट भी नही करना पडता ।"

"तो सभी लोग जुटाती क्यो नही ?"

"अहा !" कृष्णा वोली, "सभी क्या मेरी तरह चतुर होती हैं ?"

"ठीक कहती हो । लेकिन फिलहाल अब तुम्हारी वुद्धि आगे सफल होने वाली नही है । अपने मकान मे तुम्हे ले जाना मेरे लिए असभव है ।"

कृष्णा गभीर होकर बोली, "तुम्हारे लिए असभव होगा लेकिन मेरे लिए नही । क्या उस मकान मे मेरा कोई अधिकार नही है ?"

"तुम्हारा अधिकार ?" इन्द्रनील चकित होकर देखन लगा ।

कृष्णा मुह टेढा करते हुए वोली, "इतना चकित होन की क्या बात है ? अपने पिता के तुम तीन लडके हो । तीन हिस्सो म एक हिस्सा तुम्हारा है । तुम्हारा मतलब मेरा । मैं वहा जाकर अपना हक लेकर रह सकती हूँ ।"

इन्द्रनील न कहा कि कृष्णा चाहे तो वहा जाकर अपने हक के लिए लड सकती है, वह इन सबके बीच नही पडेगा ।

कृष्णा वोली, "ठीक है मैं खुद देख लूगी ।" मन ही मन वह कडवाहट म भरकर सोचने लगी, दर असल तुम्हारी असुविधा कहाँ है, इसे मैं खूब समझती हू । कही तुम्हारी माँ की चरित्र जगजाहिर न हो जाय, इसीलिए डरते हो न । खर—वह बाधा अब मैं अधिक दिन नही रहने दूगी । एक तरफ स सब साफ कर दूँगी ।

असल म कृष्णा अपनी माँ के उत्साव पर चल रही थी । मुहल्ले म रहकर लडकी की सास एक पागल के साथ पागल बनी रहेगी । इसे व वर्दाश्त करने को

कतई तैयार नही थी। उन्होने अपनी लडकी से साफ-साफ कह दिया था, "जरा ठहर, शादी हो जाने दे, तब मैं निपटूगी।"

इसीलिए जब-तब कृष्णा यही चर्चा छेड बैठती है। साथ ही साथ पति के प्रेम म बेसुध-विह्वल नवविवाहिता की भूमिका भी निभाती रहती है। अपने प्रेम दुलार मनुहार म इन्द्रनील को वशीभूत करने मे इसे देर नही लगती।

इसी तरह से दिन बिताते हुए एक दिन कलकत्ता लौटने का वक्त आ गया।

लेकिन इन्द्रनील का किस कलकत्ते मे वापस लौटना था ?

जिस कलकत्ते मे एक अविवेकी अबोध-व्यक्ति समस्त सुख और शान्ति का अपहरण करके बैठा हुआ था ?

इन्द्रनील के अभियोग को भी गलत नही कहा जा सकता। उन लोगो की सुख शाति को वाकई उस पागल ने खत्म कर दिया था। और दूसरी तरफ उसके सुख-चैन की कोई सीमा नही थी। मस्ती से खाना-सोना और जब-तब खुले गले से कविता पाठ करना बिना किसी विघ्न-बाधा के चल रहा था।

द्रुत चहलकदमी करते हुए कविता पढने की सुशोभन की खास आदत रही है। आज भी वे उसी मुद्रा मे खूब ऊँची आवाज म काव्य पाठ कर रहे थे—

—"वीनातन्त्रे हानो हानो खरतर झकार झजना
तोलो उच्च सूर
हृदय निदयाघाते झर्झरिया झरिया यडूक
प्रवल प्रचूर।
गाओ गान प्राण भरा झडेर मतन उर्ध्वतम
अनन्त आकासे—
उडे जाक दूरे जाक—विवन विशीर्न जीन पाता
विपूल निश्वासे।

भावार्थ वीणा तन्त्रिका को तीव्र झकृत करते हुए वीणा के स्वर को और ऊँचा उठाओ। जिस स्वर के सबल निर्मम आघात से यह मन उद्वेलित हो उठे। ऐसा तूफानी गीत गाओ जो अनत का आच्छादित कर दे। जिसकी गहरी साँसो से यह विवण, विशीण, जीण पत्ता कही उडकर दूर चला जाए।

'विपुल निश्वास म—विपुल निश्वास म—' अपनी तज चहलकदमी को रोककर सुशोभन अचानक अपने माथे पर हाथ घिसने लगे। गूगी आँखो से दीवाल की ओर ताकते रहे फिर भी इसके बाद की पक्तियाँ उनके ध्यान मे नही ही आयी।

अचानक वे 'सुचिन्ता,' सुचिन्ता !' कहकर चीखने लगे।

सुचिन्ता काम-काज छोडकर चली आयी।

सुशोभन परेशान होकर बोल, "इसके बाद क्या है सुचिन्ता ?

सुचिन्ता हँसकर बोली, "किसके बाद ?"

"आह ! किसके बाद, यह समझ नही पा रही हो ?" सुशोभन चचल होकर बोले "जो मैं कह रहा था। मैं क्या कह रहा था। हाँ—वही—हाँ-हाँ विपुल निश्वासे, विपुल निश्वासे। लेकिन इसके बाद ?"

"विपुल निश्वासे ?"

सुचिन्ता चकित होकर बोली, "मेरी समझ म कुछ नही आ रहा है।"

"नही समझ पा रही हो ? बहुत खूब। दिनाजपुर वाले घर की छत पर मैं जोर-जोर से बोलकर कठस्थ करता रहता था और तुम मुँह बाये मुझे देखती रहती थी। अब भी वहीं कुछ समझ मे आया कि नही, या कुछ याद नही पड रहा है।"

सुचिन्ता कुछ असमजस म पडते हुए बोली, "नही, नहीं वह सब तो याद है लेकिन तुम याद किससे करते थे यही सोच रही हूँ।"

"और किससे याद करता था। क्लास मे फर्स्ट आने पर बगला भाषा के मास्टर जी न अपनी ओर से उस पुस्तक को उपहार मे दिया था।'

सुचिन्ता बोली, "ऐसा कहो। वह पुस्तक थी चयनिका।"

"हाँ-हा चयनिका। लेकिन तुमने भी तो मुझसे सुन-सुनकर काफी कुछ कठस्थ कर लिया था। तब इसके बाद की पक्तियो का क्यो नही बतला पा रही हो। वही 'उडे जाक, दूरे जाक विवर्न विशीर्न पाता'—

सुचिन्ता धीरे-धीरे कुछ रुक-रुककर बोली,' 'आन दे आतके निशि, क्रन्दने उल्लासे—"

"दैटस राइट।" सुशोभन चीख पडे, "ठीक कह रही हो। क्रन्दने उल्लासे गरजिया कत्त हाहारव। झकार मजीर बाँधि उन्मादिनी कालवैशाखीर नृत्य होक तवे।" (क्रन्दन म उल्लास मे हाहाकार भरा गजन करके उन्मादिनी कालबैशाखी अपन पैरा मे झझा की पायल बाधकर नृत्य मे प्रस्तुत हो।)

सुशोभन फिर से द्रुत चहलकदमी करते हुए उदात्त कठ से फिर कविता पढने लगे।

'छन्दे-छन्दे पदे पदे अचलेर आवत आघात
उडे होक क्षय।
धूलि सम तृण सम, पुरातन वत्सरेर यत
निष्फल सचय।

(उसके हर छन्द से हर चरण से आचल के आवत आघात से पुराने वष का सब निष्फल सचय फूल और तिनके की तरह उडकर खत्म हो जाए।)

सुचिता अपना काम छोडकर चली आयी थी क्या वे इसे भूल गयी थी। वे भूल गयी थी कि एक प्रौढा विधवा के सामने एक उद्भ्रातचित्त प्रौढ पागल दिन के प्रकाश भरे कमरे मे बैठकर काव्यपाठ किए जा रहा था। अपनी कल्पना म वे देखन लगी कि एक पुरान घर के टूटे हुए मुडेरा वाली छत पर सूरज ढलने की वेला मे एक सुकुमार किशोर अपने बडे-बडे बाला का हिलाकर चहलकदमी करते हुए काव्य पाठ कर रहा है और एक किशोरी लडकी उसे मुह बाये देख रही है।

"हे नूतन एशो तूमि सम्पून गगन पून करि
पुज पुज रूपे
व्याप्त करि लुप्त करि स्तरे स्तरे स्तवके स्तवके
घन घोर स्तूप।"

(हे नूतन तुम सम्पूण-सृष्टि को पूण करते हुए, पुजीभूत रूप म सबको व्याप्त करते हुए और पुरातन के सारे कल्मष का तुम लुप्त करते हुए आओ। तुम्हारा स्वागत है।)

उन्होने देखा कि उस कविता की झकार के साथ-साथ रोज का उस लडके का जाना-पहचाना चेहरा किसी नयी आभा से चमक उठा।

खीरतक्ति और च द्रपुलि का शौकीन, पेड पर चढकर फूल ताडने मे उस्ताद वह लडका अचानक एक अबूझो दुनिया की आभा से कोई दूसरा लडका नजर आने लगा। इसीलिए उसका पहले का मधुर धीमा कठ स्वर क्रमश ऊँचा होन लगा—

"हे दुदम हे निश्चित हे नूतन, निष्ठुर नूतन
सहज प्रबल
जीन पुष्पदल यथा ध्वस भ्र श करि चतुर्दिके
वाहिराय फल।
पुरातन पनपूट दीन करि विकीन करिया
अपूर्व आकारे।
तेमनि सवले तूमि परिपून हयछ प्रकाश
प्रनाम तोमारे।"

(ह दुदम! हे निश्चित! हे नूतन! तुम प्रबल हो, फिर भी कितने सहज हो। जिस तरह से जीण पुष्पदल को ध्वस करके फल का आविर्भाव होता है, उसी तरह से तुम भी पुराने का नष्ट करके एक अपूर्व नूतन की सृष्टि करते हो। मैं तुम्हारी शक्ति को प्रणाम करता हूँ।)

धीरे धीरे घर-गृहस्थी का हर काम और काम काज की दुनिया आँखो के

सामने से ओझल हो गयी। ओझल हो गया सुबह्-शाम, दिन-रात का ज्ञान, सिर्फ चेतना मे यही स्वर झकृत होता रहा—

"तारपर फेले दाओ, चूर्न करो जाहा इच्छा तव
भग्न करो पाखा।
जेखाने निक्षेप करो हृत पत्र च्युत पुष्पदल
छिन्न-भिन्न पाखा।
खनिक खेलना तव, दयाहीन तव दस्युतार
लुठनावशेष
सेथा मोरे फेले दियो अनन्त तमिस्र सेइ
विस्मृतीर देश।
नवाकुर इक्षु बने—"

(इसके बाद तुम भले ही नष्ट कर दो पखो को तोड दो, झरे हुए फूल-पत्तो को फेक दो जो तुम्हारी मर्जी हो करो। तुम्हारे लिए तो यह सब कुछ एक सहज खेल है। दयाहीन दस्युता का लुठनावशेष है। तुम चाहो तो विस्मृति के घने अधकार मे मुझे भी फेंक सकते हो। नव अकुरित इक्षु वन मे—)

"माँ।"

यह सबोधन सुनकर सुचिन्ता चौंककर मुडकर देखने लगी।

नही, और कोई नही। सुबल था। सम्मान प्रकट करने के लिए उसने थोडी दूरी बनाए रखकर आवाज दी थी।

टूटे हुए मुंडेरो वाली काई लगी हुई छत से सुचिन्ता नीचे उतर आयी, उतर आयी दुमजिले कमरे के मोजेक वाले फर्श पर। भौहे सिकोडकर बोली, "क्या चाहिए ?"

सुबल ने सिर झुकाए हुए कहा, "नीचे की मजिल म छोटे भैया छोटी बहू को लेकर आये हैं।'

छोटे भैया छोटी बहू को लेकर आये है।

यह कौन-सी भाषा है।

सुचिन्ता क्या सचमुच चेतना की दुनिया म लौट आयी थी या वे कल्पना के एक राज्य से दूसरे राज्य मे छिटक कर आ पडी थी ?

उन्होने साफ-साफ ही सुना था। फिर भी अपन सदेह को दूर करन के लिए दुबारा पूछ लिया, "कौन आया है नीचे ?"

"छोटे भैया और छोटी बहू। वही जो उस तरफ के सामने वाल मकान म रहती थी।"

सुचिन्ता ने टोक दिया—"मालूम है। पूछ आओ, क्या व मुझस कुछ कहना चाहते हैं ?"

"जी, वे लोग ऊपर ही आ रहे हैं। इसी की सूचना छोटे भैया ने भिजवायी है।'

"सूचना देने की क्या बात है? उन्हें आने को कहो।" कहकर सुचिन्ता दीवाल के पास रखे हुए मोढे को खीचकर उस पर बैठ गयी।

बाधा पाकर सुशोभन का काव्य पाठ रुक गया।

नजदीक आकर बोले, "कमरे से चली क्या आयी? यहाँ बैठ गयी? क्या 'चयनिका' की कविताएँ तुम्हे पसद नही है?"

"पसद क्या नही है। कैसी बातें कर रहे हो, भला वह भी अच्छी नही लगेगी? पैर दद कर रहा था इसलिए बैठ गयी।"

"पैर म दर्द हो रहा है?"

सुशोभन थोडा व्याकुल होकर बोले, "पैर म दद क्यो हो रहा है? क्या खूब पैदल चलना पडा है?"

"नही, पैदल क्या चलूगी? कहाँ चलूगी? तुम जरा थोडी देर तक चुपचाप बैठे रहो।"

"बैठ जाऊँ? चुपचाप?"

"हाँ हा, अभी वे लाग यहाँ आते होंगे।'

"वे लोग? कौन है वे लोग?"

"वे लोग? वे—देखा आ रहे है। मेरा छोटा लडका और उसकी बहू।"

वे लोग आये।

इन्द्रनील और नवपरिणीता पत्नी कृष्णा।

जिस लडकी को सुचिन्ता पहले भी देख चुकी थी। जिस सास को पहले से कृष्णा न देख लिया था। लेकिन आमने-सामने खडे होकर उन्होने क्या कभी एक दूसरी से बात की थी?

नही—ऐसा तो नही हुआ था?

आज कृष्णा ने रू ब-रू होकर बात करने की ठान ली थी।

इन्द्रनील उसके पीछे खडा हुआ था। सचमुच कृष्णा ही क्या उसे यहा खीच लायी थी या इन्द्रनील के मन के प्रबल आकर्षण ने उसे अनुपम कुटीर की ओर खीच लिया था? सिर्फ मन ही मन इसे स्वीकार न कर पाने के कारण ही वह आत्मसमर्पण की मुद्रा मे कृष्णा के पीछे पीछे अपने मकान मे चला आया था।

गहने-कपडे से सजी कृष्णा ने झुककर सुचिन्ता के पैर छू लिए और उसी समय उसने अपनी नजरों के कटाक्ष से उस व्यक्ति की ओर भी देख लिया। उस व्यक्ति को जो सुचिन्ता के पीछे वाले कमरे के दरवाजे पर खडा होकर विह्वल नजरो से देख रहा था।

नही, बहू का मुह देखने के लिए सुचिन्ता झटपट सोना ढूँढने के लिए बक्स

या आलमारी खोलन नही गयी। सिफ बहू के माथे को हल्के से छूते हुए बोली, "एक गुरुजन को प्रणाम करते समय सामन कोई दूसरा गुरुजन उपस्थित हो तो उसे भी प्रणाम करना चाहिए बहू।"

कृष्णा अपन एक हाथ की मोटी चूडी को दूसरे हाथ से घुमाते हुए बहुत साफ गले से बोला, "यहाँ और कौन गुरुजन हैं ?'

सुचि ता क्षण भर के लिए उसकी ओर देखकर गदन घुमाकर बुलायी, "सुशोभन जरा यहाँ आ जाओ। बहू तुम्हे प्रणाम करेगी। तुम्हे वह देख नही पा रही है।"

'बहू' शब्द का अर्थ पूरी तरह न समझ पाने के बावजूद 'जरा इधर आओ' शब्द को समझकर सुशोभन आगे बढ आय।

लेकिन कृष्णा ने इस परिस्थिति पर ध्यान नही दिया। बल्कि खडे रहकर पूछ बैठी, "वे कौन हैं ?"

सुचिन्ता न अपन लडके की ओर देखा। फिर वह हँसते हुए बोली "घर मे कौन-कौन रहता है, उनसे कैसा व्यवहार किया जाता है, ये सारी बाते तो पहली रात म ही सिखा दी जाती हैं। क्या रे इन्द्र तूने इस एक महीने म क्या किया ?"

इन्द्रनील बिल्कुल खामोश रहा।

जवाब कृष्णा न ही दिया।

बोली, "घर म अपने दोनो जेठ और आपके सिवाय तो और किसी के रहने की खबर तो मुझे नही है माँ। सुना था आप लोगो के और कोई नही है।"

सुचिन्ता पूरी तरह से खुले गले से हँस पडी। बोली, "बहू, सुनी हुई बाते जाने कितनी बार कितनी गलत तरीके से कही गयी होती हैं। मैंन भी सुना था इन्द्र की शादी बहुत सम्पन घर म—खैर अब ये बातें रहने दा। सुशोभन, तुम अपने कमरे म जाकर आराम करो।"

सुशोभन की जान म जान आयी। झटपट कमरे म घुसकर अपनी खाट पर जाकर बैठ गये।

कृष्णा सुचिन्ता की अधूरी कही गयी बात के अपमान की परवाह न करते हुए बोली, "आपने तो हम लोगो को बैठने के लिए भी नही कहा।"

सुचिन्ता उठकर खडी होते हुए बोली, "तुमने भी खूब कहा। तुम लोगा से मुझे कहना पडेगा ? अपना मकान है, अपनी जगह है, तुम लोग भी क्या औपचारिकता की आशा करते हो ? क्यो इन्द्र, तुम्हारा भी क्या 'आइये बैठिये' कह कर स्वागत करना होगा ?"

लडका म एक इन्द्रनील का ही सुचिन्ता कभी-कभी 'तू' कहकर बुलाती थी,

लेकिन माँ का ऐसा हास-परिहास भरा रूप क्या इसके पहले कभी इन्द्रनील ने देखा था ? ऐसे लहजे के लिए क्या वह पहले से प्रस्तुत था ?

लगा वह थोडा हकबका गया हो।

इसलिए कृष्णा ने ही बात की पतवार पकडी।

"चूंकि घर म आप ही सबसे बडी हैं इसलिए आपकी अनुमति की जरूरत है ही। और जब आप अपने से नही कह रही है तो मुझे ही कहना पड रहा है कि हम लाग आकर अब यहीं रहगे।"

सुचिता स्थिर दृष्टि से कई पल तक अपने लडके के चेहरे की ओर देखती रही फिर हँसते हुए बोली, "शादी हाने पर लाग अपनी पत्नी को गहने आदि उपहार म दते हैं, तो तून क्या पैसों के अभाव म अपनी वाक् शक्ति ही अपनी पत्नी को उपहार म दे दी है ? लगता है अब स तरी बातें तेरी पत्नी से ही सुननी पडेंगी।"

इन्द्र का गोरा चेहरा लाल हा गया।

फिर भी उसन गदन उठाकर कहा, "नही, मैं भी कह रहा हूँ, कल-परसा या दो-चार दिन बाद जब भी होगा, हम लोग यहाँ आयेंगे, मतलब रहन ही आयेंगे। सिफ घर को अपन लायक बनाना होगा।"

सुचिन्ता बोली, "रहन लायक कहने से तुम्हारा क्या मतलब है, मैं समझ नही पा रही हूँ। तुम्हारा कमरा जैसा था, वैसा ही पडा हुआ है। तुम जैसा चाहो, अपनी इच्छानुसार उसे सजा लो।"

"सजाने-वजाने की बात नही कर रहा हूँ—" इन्द्रनील असहिष्णु होकर बोला, "स्वाभाविक बनान की बात कर रहा था। नीता के बारे म मैंने सुना है कि वह बहुत जल्दी स्वदेश लौट रही है और लौटकर वह अपने दिल्ली वाले मकान म ही रहेगी। अब बिना किसी असुविधा के उन्ह वहाँ भेजा जा सकता है।"

उन्हें' कहने के साथ-साथ इन्द्रनील ने सुशोभन के कमरे की ओर इशारा करके अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया।

इस बात को सुनकर सुचिता को शायद आत्मसयम बरतने मे तकलीफ हुई थी, यह ठीक से स्पष्ट नही हुआ, फिर भी उन्होने अपनी भावनाओ को जब्त कर लिया। तब उन्हाने बडे ही सहज भाव से कहा, "इन्द्र, आदमी तो कोई माल असबाव नही है कि उसे हटाकर कमरे म जगह बनायी जा सके। उसका हिसाब अलग ही होता है।"

इन्द्र सोचने लगा कि शुरू म ही अपनी पत्नी को साथ लेकर यहाँ आना उचित नही हुआ। उसे पहले यहाँ आकर यहा के वातावरण का देख-समझ लेना चाहिए था। फिर भी सुचिता की ऐसी स्पष्ट बातो ने उसे लगभग गूँगा बना दिया था।

सुशोभन के बारे में सुचिन्ता कृष्णा के सामने ही इतनी खुली वकालत करेगी, इन्द्रनील की ऐसी धारणा हा नहीं थी।

लेकिन कृष्णा के न आने पर वह जो कुछ कहना चाहता था वे बातें अनकही रह जाती। इन्द्रनील अपनी मा के साथ इतनी बातें कर ही नहीं सकता था। हालाँकि कृष्णा की वाचालता से उसे मन ही मन परेशानी भी हो रही थी फिर भी वह सोच रहा था कि अगर कृष्णा की कोशिशों और आग्रह से अगर इस मकान में रहने की व्यवस्था हो जाय तो काफी मुक्ति का अहसास होगा। वाकई, मर्द होकर अपने मुहल्ले में ही ससुराल में रहना काफी शर्मनाक है। कृष्णा की माँ भले ही यह कहती रहें कि 'तुम लोगों के अलावा मेरा और कौन है' इसके बावजूद मन नहीं मानता। फिर 'अनुपम कुटीर' में रहने के लिए कृष्णा ने भी हठ ठान ली थी।

इस जिद के पीछे जो भी बात रही हो, वह थी इन्द्रनील के अनुकूल ही।

लेकिन जिद के साथ-साथ उसकी एक कठोर शर्त से सारा मामला गड़बड़ होता नजर आ रहा था।

सुशोभन के रहते हुए कृष्णा यहाँ नहीं रह सकेगी।

कृष्णा की माँ की भी यही धारणा थी, "हाँ बेटा, अपनी दुलारी इकलौती बेटी को मैं किसी 'आगल-पागल' के यहाँ नहीं भेजूंगी। पहले उसे वहाँ से हटाने की व्यवस्था करो फिर मेरी लड़की को ले जाने की बात कहना।"

इन्द्रनील ने जवाब में कहा था, "वहाँ ले जाने की बात मैंने नहीं कही है। आपकी दुलारी बेटी ही वहाँ जाने के लिए जिद पकड़ बैठी है।"

लीलावती मुँह विचकाकर बोली, "जिद की बात ही है। बात यही है कि लड़कियाँ दूसरी मिट्टी से गढ़ी हुई होती हैं। नामांतर होते ही अंतर के सारे बंधन भी अपने आप ही टूट जाते हैं। लेकिन उसे बाद में पछताना होगा। इसे मैं अभी से देख-समझ रही हूँ।"

एकांत में लड़की के पास वे कुछ और ही बातें करती थीं, "सास की आदतें अच्छी नहीं हैं, इससे शर्मनाक बात और क्या होगी। जैसे भी हो कोशिश करके जड़ से उखाड़ देना। क्या कहीं और रहने की जगह नहीं? वे वहीं जाकर रहें। इतनी उम्र हो गयी है, लड़के जवान हो गये हैं लेकिन लाज-शरम तो बिल्कुल धोकर पी ही गयी हैं। छि! और तुमसे भी कहती हूँ, तुझे शादी करने के लिए और कोई जगह नहीं मिली? इनके रंग-ढंग तो तूने पहले ही देख लिए थे?"

कृष्णा बड़ी बेजारी से बोली, "पहले इतनी सारी बातें कहाँ मालूम थीं? नीवा दीदी के पिताजी अस्वस्थ होकर चिकित्सा करने के लिए कलकत्ता आये हुए हैं, बस यही जानती थी।"

"यह नीता दीदी कौन है, उन लोगों से किस तरह की रिश्तेदारी है, क्या इस पर सोच-विचार नहीं किया था ?"

"इतना कहां सोचा था ? सोचा था होंगे कोई रिश्तेदार । नीता दीदी बुआ बुआ करती थी ।"

"तेरी तरह मूख लडकी और कही नहा मिलेगी । और तुम्हारी यह नीता दीदी, सीधी-सादी लडकी नहीं है । अपने पिता को इनके सिर पर पटककर खुद एक बहाने से खिसक गयी । खैर, अगर तुम नहीं कर सकता तो मुझे ही उपाय करना होगा । माहल्ले म किसी को मुँह दिखाने लायक नहीं रही । सुनती हूँ पालतू कुत्ते की तरह वह भी पालतू पागल का हर सुबह लेक तक घुमाने के लिए ले जाती है । बस जजीरा का फक है । छी ।'

लडकी से बात करत वक्त वाणी का थोडा सयत रखना चाहिए, इस बात को लीलावती गुस्से के मारे भूल गयी थी । कृष्णा भी बिना चू-चपड किए हुए सब कुछ सुनती गयी थी, इसके बाद सकल्प करके इन्द्रनील को पकडकर यहा ले आयी थी ।

सुचिन्ता द्वारा आदमी की तुलना बिस्तर-बक्स से न करके किसी दूसरे हिसाब से करने की बात पर कृष्णा अपने आरक्त चेहरे से कह पडी, "मतलब यही समझना होगा कि हमारा यहा रहना आपको पसद नहीं है ।'

इस बार सुचिन्ता ने लडके की ओर से अपनी नजर हटाकर बहू को दखते हुए बोली, "अगर तुम लोग गलत समझने पर उतारू हो तो मैं क्या कर सकती हूँ ? सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ, तुम लोग यहा आकर रहना चाहते हो यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई है । और यह मैं झूठ नहीं कह रही हूँ ।"

कृष्णा अपना राग अलापती रही, "आप झूठ नहीं कह रही है, इसे कैसे समझ लू ? मेरी मा का कहना है कि घर मे किसी भी बाहरी आदमी के रहने पर वे मुझे यहाँ नहीं भेजेंगी—"

"तुम्हारी माँ ने क्या कहा है क्या नहीं कहा है, यह मेरे जानने की चीज नहीं है बहू", सुचिन्ता ने कहा, "जा सचमुच के बाहरी लोग हैं उनकी बातो पर ख्याल करने का मेरे पास बिल्कुल समय नहीं है ।"

अचानक इन्द्रनील बोल पडा,"इसके मतलब हमारे रहने, न रहने म तुम्हारा कुछ आता-जाता नहीं है । यही बात मैंने मझले भैया के मामले में भी देखी—"

सुचिन्ता मृदु गभीर स्वर म बोली, "इन्द्र दूसर की बाता म सिर खपाने का जरूरत नहीं है, तुम अपनी बात कहो ।"

"मेरी क्या बात है—" इन्द्रनील होठो को काटते हुए बोला,"वे इस मकान

म जिंदगी भर के लिए रह जाएँगे, ऐसा नही सोचा था, जो स्वाभाविक था वही कहने आया था, लेकिन जब ऐसा होना सभव ही नही है तब—''

''जिंदगी भर का हिसाब इतना चटपट लगा लेना ठीक नही है इद्र। लेकिन अगर एक असहाय व्यक्ति की मौजूदगी को अगर तुम लोग जान-बूझकर समस्या बना दोगे तो उसका समाधान करना सचमुच मेरे लिए कठिन हो जाएगा।''

शायद कृष्णा अपनी माँ के पास अपनी काबिलियत दिखलाने वाली बात को सोचकर एक जबर्दस्त आघात कर बैठी। बोली, ''इस मकान म लगता है आपके लडको का कोई अधिकार नही है?''

सुचिन्ता को अपने पैरो के नीचे से जमीन खिसकने का अहसास हुआ, लगा वे किसी गह्वर म समाती जा रही हैं। एक साथ इतनी बाते कभी उन्होने की भी थी? क्या सामने खडी बीस-बाईस वर्ष की लडकी उनकी प्रतिद्वद्विनी थी, जिसके आमने-सामने होकर वे बहस किए जा रही थी?

लेकिन और उपाय भी कहाँ था? भला धृष्ट की धृष्टता को भी रोका जा सकता है?

और धृष्ट के साथ अच्छा व्यवहार करके भी कोई चल सकता है?

इसीलिए सुचिन्ता का पूरा चेहरा पत्थर की तरह सख्त हो उठा।

वैसे ही सख्त चेहरे से वे बोली, ''बहू, अधिकार दो तरह के होते है। मनुष्यता के नाते जरूर अधिकार है, सो पैसे अधिकार है। लेकिन अगर कानून-कचहरी करना चाहोगी तो समझ लो कोई अधिकार नही है। क्योकि कागजात म इस मकान पर मेरा ही स्वामित्व है।''

यह सुनकर इद्रनील चौक पडा। यह बात तो उसे मालूम नही थी।

कृष्णा के चेहरे पर स्याही पुत गयी। सोचने लगी इन्द्रनील ने उसे [illegible] यह बात नही बतायी थी।

''ठीक है। मुझे यह बात नही मालूम थी।'' कहकर इद्रनील धडधडाता हुआ सीढियो से नीचे उतर गया। कृष्णा साथ साथ नही गयी। शायद वह बचे हुए डक को पूरी तरह से चुभोकर ही जाना चाहती थी। वह बोली, ''हाँ, मालूम रहने से आपको डिस्टर्ब करने नही आता। पर [illegible] नाम म है तब आप जिसे चाहेगी, वही इसमे रहेगा। जिसे आप [illegible] चाहेगी, उसे [illegible] रहना है।'' कहते हुए वह भी सीढियो की ओर बढ गयी।

सुचिन्ता के छोटे लडके की पत्नी का [illegible] से उतरकर गायब हो गया, फिर भी सुचिन्ता [illegible] हुयी खडी रही।

वे लोग सुचिन्ता को क्या सुना गए, [illegible] कहा, वह सब सुचिन्ता को याद नही [illegible] महसूस हुआ [illegible]

कि जैसे उसकी समस्त चेतना को एक जरीदार आचल ने आकर ढाक लिया हो।

उस आचल म बिजली की चमक थी। आग की तरह जलाने वाली थी। सुचिन्ता को लगा कि जैसे उन्हे बिजली का करेण्ट लग गया हो। वह दग्ध हुई जा रही थी।

लेकिन अगर जरी का यह आचल उनको जला देन के उद्देश्य से यहा नही आया होता। अगर सिफ अनुपम कुटीर का छोटा लडका ही उनक पास आया होता ता?

तब क्या उसके इस तरह से चले जाने पर सुचिन्ता अनुपम कुटीर की मर्यादा को तोडकर उसे दौडकर पकड लेती? कहती, "जायगा? देखू कैसे जाता है? देखू, जा सकता है कि नही।"

दूसर दिन कृष्णा का माँ और मौसी मिलने आयी।

मौसी जबदस्त महिला थी और अपने सारे हथियारो स लैस होकर ही आयी थी, लकिन सुचिन्ता के शात, विनम्र चेहरे को देखकर वे पहले पहल अचकचा गयी। अपनी बहन से उन्हे कुछ दूसरी रिपोर्ट मिली थी। फिर भी जब सुचिन्ता ने उनसे बैठने का आग्रह किया तो डक चुभोये बिना उनसे रहा नही गया। बोली, "समधिन के बार मे मैंने सुना है कि घर म किसी के आने पर बैठने के लिए कहने की उन्हे आदत ही नही है।"

सुचिन्ता एक कौतुकपूण हँसी चेहरे पर लाते हुए बोली, "सुनी हुई बातो पर क्या यकीन करना चाहिए? जाने कितनी गलत खबरे सुनने को मिलती हैं। पडोसियो का तो काम ही निंदा प्रचार करते रहना है।"

कृष्णा की मा के भले ही जितनी बुद्धि रही होगी, बारीक व्यग्य समझने की बुद्धि बिल्कुल नही थी। इसीलिए वे इस बात से तिलमिलाकर कह उठी, "पडोसिया के पास इतना फालतू समय नही है कि आपकी निन्दा प्रचारित करते रहे। आज देख रही हूँ कि बिल्ली के भाग से छीका टूट गया है, नही तो भला अपना लडका और बहू आकर उल्टे पैरो लौट गये होते?"

सुचिन्ता के चेहरे पर पर वह कौतुकपूण हसी लुप्त हो गयी। वे मृदु गभीर स्वर म बोली, "बेटा और बहू तो भाई-कुटुम्ब नही हैं घर के सदस्य है। अगर वे अपने को कुटुम्ब मान बैठने की गलतफहमी म पडे तो यह उनकी गलती होगी।"

मौसी छोटी बहन के अनुरोध पर मोर्चा सँभालने आयी हुई थी, इसलिए ड्यूटी पालन करने के लिए उन्होन मोर्चा सभाल लिया। बोली, "समधिन, अब नयी बहू तो आते ही रसोई म घुसकर अपने लिए भात परोसकर खाने नही लगेगी। नयी बहू तो कुटुम्ब जैसी ही होती है। इसके अलावा बहू का वरण कर

के अपने घर मे ले आने का एक तौर-तरीका भी तो हमारे बगाली समाज म है। क्या समधिन को यह मालूम नही है ?"

सुचिन्ता अचानक खिलखिला उठी। बोली, "अभी भी उन सारे पुराने तौर तरीका का आप लोग साने से लिपटाये हुए हैं ? बडे आश्चय की बात है।"

मौसी मुह बनाकर बोली, "अब आप जैसी आधुनिका तो हम लोग नही हो पायी है समधिन। जिस युग म जन्म लिया है उसी के तरह ही हम लोग हैं।"

सुचिन्ता बोली, "क्या मुश्किल है, 'उसी तरह हम लोग हैं कहने से ही क्या रहा जा सकता है, या रहना सभव है ? काल तो अपनी गति से दौड रहा है, क्या उसके साथ ताल-मेल रखने की जरूरत नही है ?"

"हम लोग ठहरे गँवार लोग, न हम लोग 'काल' समझते हैं न 'ताल', सिफ समझते हैं चाल। मतलब यही कि चाल-चलन आदमिया जैसा होना चाहिए। आप ही की बात लीजिए, जान कहाँ के एक गैर-आदमी के लिए आप अपना घर नष्ट कर रही हैं क्या यही मनुष्यता है ?"

सुचिन्ता ने शायद एक बार यह तय ही कर लिया कि अब वे बात बिल्कुल नही बढाएँगी, खामोश रहेगी। लेकिन दो-दो लोगो के सामने बिना जवाब दिए चुप रह जाना भी जितना मुश्किल काम था, उनके सामने से बिना कुछ उन्हे उठकर चला आना भी उतना ही मुश्किल था। इसीलिए वे पूर्ववत प्रसन्न चेहरे से बोली, "अपने-पराये' की व्याख्या करना बडा कठिन है दीदी, यह बात सच-मुच के गैर-आदमी को तो नहीं ही समझायी जा सकता है।'

"ओह! सच कहती है। इसका मतलब हुआ कि आप लोकनिन्दा को बिल्कुल महत्व नही देतीं।"

"एकदम ही महत्त्व नहीं देती, इसे कैसे कह सकती हूँ भला।" सुचिन्ता बोली, "बहुत महत्त्व देती हूँ। लेकिन दुनिया म कुछ बाते उससे भी बडी हो सकती हैं।"

"वह कुछ हम जैसा के लिए समझ पाना बडा मुश्किल है समधिन। लोक-निन्दा से खुद भगवान रामचन्द्र भी सकट मे पड गये थे। हालाँकि यह भी तय है कि आप अपनी रुचि-प्रवृत्ति के अनुसार ही करेंगी। चूंकि हम लोगो ने अपना लडकी आपको दी है, इसीलिए—"

सुचिन्ता ने बाधा दी। दृढ़ स्वर से बोली, "यही पर आप गलती कर रही हैं। लडकी आप लोगो ने नहीं दी है।"

"देने से ले ही कौन रहा है ?"—कृष्णा की माँ नाराज होकर बोली, "मेरी बुद्धि ही मारी गयी थी कि एक बार अपमानित होने के बावजूद दूसरी बार अपमानित होने के लिए आ गयी। मेरा सब कुछ मेरी लडकी का है। तिमजिला मकान सूना पडा है। लेकिन लडकी की वही एक जिद है कि शादी

हो गयी है, अब मैं ससुराल जाकर रहूँगी। "इस लडकी के लिए ही मेरा सिर हर जगह नीचा हो गया। आओ दीदी चले।"

सुचिन्ता बोली, "सिर अपनी औलाद ही झुकाते हैं, यह सच है। नही तो आप लोगो का—लेकिन अब इस बात को रहने दीजिए। लेकिन इतनी बात सुन जाइए, यह मुह दिखावे की बात नही है, कि मेरे इन्द्र की बहू अपने ससुराल म आकर रहना चाहती है, यह सुनकर मुझे आतरिक खुशी हुई है। उसके लिए इस घर के दरवाजे हमेशा खुले रहेगे।"

मौसी जहरभरी आवाज म बोली, "दरवाजे पर पहाड बैठाकर दरवाजा खुला रखने का लाभ क्या है? घर म एक पागल पाल रखा है, वह यहा आकर रहेगी कैसे?"

"तब ओर क्या उपाय हो सकता है?"

मौसी बोली, 'सब समझती हूँ। निरुपाय। कृष्णा ने जो कुछ कहा था उन म बिलकुल अतिशयोक्ति नही थी। आपके लिए वह पागल एक तरफ है, बाकी सारी दुनिया दूसरी तरफ है। आपकी सराहना किये बिना मैं रह नही पा रही हूँ।"

सुचिन्ता हँसकर बोली, "मेरी तरफ से भी धन्यवाद स्वीकार करे।"

"क्या कहा?"

"कुछ नही।"

"हूँ, यह समझ गयी कि उसे आप बिलकुल नही छोड सकती हैं। चाहे सब भाड म जाएँ।' मौसी उठकर खडी हो गयी।

सुचिन्ता भी खडी होकर बोली, "सिर्फ इतने से ही अगर सब चले जाते हैं तो इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझूगी। उस राजा की कहानी तो आपको मालूम होगी? धर्म के लिए अलक्ष्मी खरीदकर बिचारे पर दुर्भाग्य का पहाड टूट पडा था। अलक्ष्मी के आने पर यश, सम्मान, भाग्य सभी एक-एक करके वहाँ से खिसकना शुरू कर दिया—"

"समधिन को बहुत कुछ मालूम है।" मौसी कडवाहट भरी मुस्कराहट स बोली, "लेकिन अगर पुरान दिनो का ही उदाहरण ल रही हैं तो कहना चाहती हूँ कि धर्म के कारण खरीदन से, जिन्होने राजा का त्याग कर दिया था, बाद म वे सभी एक एक करके वापस भी लौट आये थे। लेकिन यहाँ तो वैसी बात मुझे नजर नही आ रही है।'

सुचिन्ता हँसने लगी। बोली, "समधिन क्या सभी को सभी बाते नजर आती हैं। शायद आपको जो नजर नहीं आ रहा है, उसे मैं साफ-साफ देख रही हूँ।"

"समधिन के पास दिव्य दृष्टि है। अच्छा नमस्कार। आपके पास आकर बहुत जानकारी हुई।" यह कहकर वे दोनो सीढ़ियो की ओर बढ़ गयी। तभी

उन्हे बाधा का सामना करना पडा । दो स्वस्थ लडके धडधडाते हुए सीढियाँ चढ रहे थे । उनके पीछे पीछे ही एक कातिवान व्यक्ति भी ऊपर आ रहे थे ।

कौन हैं ये लोग ? इनके घर म तो सुना है कि कभी कोइ नाते रिश्तेदार नही आता । कौतूहल के वशीभूत होकर उनका अहकार पराजित हो गया । मौसी ने लपककर सबसे छोटे बच्चे का हाथ पकड लिया और बोली, "मुन्ना, तुम्हारा नाम क्या है ?"

कहना न होगा कि उसको इस तरह से पकडा जाना बिल्कुल अच्छा नही लगा । अच्छा लगन की बात भी नही थी । यह लगभग अपना हाथ झटकते हुए बच्चा बेजारी से बोला—"शानू मुखर्जी ।" अगर पीछे-पीछे पिता न आये होते तो वह इतना भी नही कहता ।

उसे इस समय ये दोनो औरते बिल्कुल जहर की तरह लगी । न जान न पहचान बेमतलब की बात करने की क्या जरूरत थी ।

लेकिन उसके मन की बात से तो वे औरते परिचित नही थी इसलिए मोटी औरत ने सुमोहन को न देखने की मुद्रा बना कर उससे दुबारा पूछ लिया, "तुम इन लोगो के क्या लगते हो ?"

"नही मालूम ।"

इसी बीच दूसरा बालक सीढियाँ से चढकर बगल से रास्ता बनाता हुआ ऊपर चढ आया । सुमोहन ने अपने बेटे से कहा, "शानू यह तुम कैसी बाते कर रहे हो ? ठीक से बताओ ।"

शानू ने गभीर होकर कहा, "क्या मुझे मालूम है कि मैं इन लोगो का क्या लगता हूँ ।"

"आह हा हाँ, बात तो ठीक ही है," सुमोहन न मुस्कराकर कहा, "सवाल ही बडा गालमाल वाला है । यहा तुम किससे मिलने आये हो यही बता दो ।"

"ओर किससे—मँझले ताऊजी से मिलने आया हूँ । सभी जानते हैं ।"

मँझले ताऊजी ।

बडी मौसी को शायद रहस्य का काई सूत्र हाथ लग गया, इसीलिए थाडा-सा एक तरफ होकर सुमाहन का रास्ता देत हुए बोली, "समझ गयी । वही जिन का दिमाग खराब है वही न ? '

"दिमाग खराब ।"

शानू मुखर्जी का घरेलू नाम था 'गुडा पहलवान डाकू,' वह अचानक अपनी खापडी पर हाथ फेरने लगा, फिर बोला, "धत्त । खराबो दिमाग मे नहा हाती है, खराब तो तबीयत होती है ।"

यह कहकर वह उनसे हाथ छुडाकर भाग गया ।

लेकिन ये लोग अचानक हाथ आये सूत्र को छोडकर जान के लिए तैयार

नही थी। इसीलिए अपनी आवाज का गहन-गभीर बनाते हुए बोली, "ये आपके बच्चे हैं न ?

"बिल्कुल।"

"आप शायद बीमार के भाई हैं ?"

"हाँ।"

"कहाँ रहते हैं आप लोग ?"

सुमोहन अदर ही अदर कुढते हुए भी बाहर सौजयता प्रकट करते हुए बोले, "श्याम बाजार की तरफ।"

"ओह ! लगता है आपके घर में जगह की बहुत कमी होगी।"

"क्या कह रही हैं आप ?"

"मतलब कि वे तो आपके बडे भाई हैं। आप सब हैं मुखर्जी और इस घर के लोग मित्तिर। असल में हम लोगो की वे समधिन हैं इसी से ये सारी बातें हम लोगो को मालूम हैं खैर, तब ये लोग आपके क्या हुए ? मकान मालिक ?"

सुमोहन गभीर हो गया। गभीर सौजन्य से बोला, "आप लोगो ने इन्हें अपना समधिन कहा है, लेकिन इनके बारे मे आप लोग कुछ भी नही जानती हैं ?'

"नही, वैसा कुछ नही जानती। यही सोचती थी कि कोई नाते-रिश्तेदार न होने के कारण असहाय पागल को दया धर्म की खातिर अपने घर में जगह दे रखी है। अब यह कहाँ मालूम था कि आप जैसे भाई भी हैं। इसी से पूछ लिया कि शायद किराये पर यहाँ रह रहे हैं।"

"नही, ये मतलब यहाँ की गृहस्वामिनी से हम लोगो का बिल्कुल घरेलू रिश्ता है—"

"वह तो समझती हूँ।" मौसी ने शहद पगी आवाज में कहा, "ऐसा न होता तो भला उनके भरोसे अपने पागल भाई को छोडकर आप लोग निश्चिन्त बैठ सकते थे ? लेकिन दिक्कत यह है कि इनकी छोटी बहू इस पागल के डर के कारण यहाँ आकर रहने के लिए तैयार नही है ? "वह हमी लोगो की लडकी है। हम दोनो इनके लडके की सास और मौसिया सास हैं।" कहकर सुमोहन को चकित करते हुए दोनो बहनें सीढियो से नीचे उतर गयी।

कुछ देर तक उनके जाने वाले रास्ते की ओर ताककर सुमोहन जब ऊपर आये तो उन्होने देखा कि कमरे में उल्लासपूर्ण शोरगुल हो रहा था। दोनो बच्चे गुलगपाडा मचा रहे थे और सुशोभन भी खुश होकर उन्ही जैसा आचरण करते हुए कह रहे थे, "गुडा पहलवान, डाकू, बिच्छू, बिट्टू, बिसू, शानू, शान्टू। क्यों सब याद है न ? मुझसे ही पूछा जा रहा है कि मुझे सबका नाम याद है कि नही ? इनका नाम मैं भूल जाऊँगा ? भला ऐसा भी कही हो सकता है ?"

सुमोहन से सारी-घटना सुनकर सुविमल और चिन्तित हो गये। बाले, "आज महसूस हो रहा है कि शोभन के बारे मे हम लागो की इतनी निश्चितता शायद उचित नही थी। कम से कम नीता के विदेश जाने के बाद हम लोगो को इस बारे मे कुछ सोचना चाहिए था। सुचिन्ता के समधी पक्ष वालो ने अगर असुविधा व्यक्त की है तो उन्हे भी दोषी नही ठहराया जा सकता। इसके अलावा --"सुविमल थाडा सोचते हुए बाले, "शोभन की लडकी भले ही हम लोगो की मदद की भूखी न रही हो, लेकिन हम लोगो का भी तो एक कत्तव्य है।"

सुमोहन ने कहा, "उस हालत मे हम लोगो का क्या कत्तव्य है ?"

"है मोहन। कुछ तो है ही। मैं भी यही सोचकर निश्चित था कि जब वह हमारी सहायता की भूखी नही है तब हम लोगा को क्या गरज पडी है। लेकिन अब सोचकर देखता हूँ कि कर्त्तव्य की सीमा को इतना सकुचित करना ठीक नही है। और इस कमउम्र की लडकी पर अभिमान करके अपने विवेक के दरवाजा को बद रखना किसी मायने मे उचित नही है, मोहन। बेचारी अपने अधे पति को लेकर अकेले तकलीफ झेल रही होगी। यह सब सुनकर भा चूकि उसने हम लोगो से सहायता की भिक्षा नही मागी है, इसलिए हम लोग भी हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, यह मुझे बहुत नीचता लग रही है। हा मोहन प्रचड नीचता। दूसरे की जरूरत समझकर अपना हाथ आगे बढा देना ही मनुष्यता है क्या ? उसके सहायता मागने की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहना घोर अन्याय है। उस हालत मे तो और भी जबकि यह हम लोगो के शोभन की लडकी है। हन लोगो के स्नेह की पात्री है। अगर प्रतिपक्ष की दृष्टि से भी विचार करे तो उसकी सारी उद्दडता का अपराध खत्म होकर हम लोगो के कत्तव्य की कमी ही उजागर होगी।"

"ऐसा क्यो ?—"

सुविमल ने सुमोहन का बाधा देते हुए कहा, "ऐसा ही होता है मोहन, यही नियम है। लोग अपने से छोटा से आशा नही करते हैं, आशा करते हैं अपने बडो से। उनमे वे क्षमा, त्याग और उदारता की आशा करते हैं, आशा करते हैं खेर मैं क्या कह रहा था—कब आ रही है नीता ?"

"उन्नीस तारीख को।"

"ठीक है। मैं चाहता हूँ कि उसके आने से पहले ही तुम दिल्ली चले जाओ।'

"दिल्ली चला जाऊँ। मैं ?'

सुविमल बोले, "भला तुम्हारे अलावा मैं और किस पर अपना हक जता सकता हूँ ? साधन, तपाधन पर तो—" कहकर उन्होने हँसते हुए अपनी बात बीच ही मे खत्म कर दी। फिर बोले, "वह शोभन का घर है। तुम वहाँ जाकर रहो तुम्हे वहा रहने मे कोइ भी द्विधा नही हागी। लडकी और दामाद का स्वागत

"कर दूँगी"—अशोका बोली, "इसके बाद जाने क्या सोचकर वह पूछ बैठी, "मँझले भैया को क्या वाकई बहुत स्वाभाविक देखा ?"

पूछने की अशोका की आदत नही थी फिर भी पूछ बैठी।

सुमोहन ने कहा, "देखकर ऐसा ही लगा। मुझे देखकर पहली नजर मे ही पहचान गये।"

"और तुम लोगो की सुचिन्ता ? उनका क्या हाल है ?"

"सुचिन्ता ? और क्या हाल होगा ? ठीक ही लगी। असल बात यह है कि मैं उसको ठीक से समझ नही पाता हूँ।"

"उसे नही समझ पाते ?"

"हा लेकिन इसम चौकने की क्या बात है ?"—सुमोहन मुरझाए हुए बोला, "तुम्ही को मैं आज तक नही समझ पाया हूँ। अच्छा, हम लोग क्या दूसरो की तरह सहज सामान्य स्त्री-पुरुष नही हो सकते ?"

अशोका पहली जैसी नजर से देखकर मुस्कराते हुए बोली, "ऐसा कैसे हो सकता है ? हम लोग तो दूसरा से अलग हैं ?"

"मालूम है। लेकिन बीच-बीच मे लगता है कि—"

"अगर इच्छा प्रबल हो तो सभी कुछ सभव हो सकता है।"

उस दिन सुमोहन के चले जाने के बाद ही से सुशोभन कुछ बदले-बदले से लगे। अब उनका अधिकतर समय खामोशी म खिडकी के पास कुर्सी मे बैठे बैठे सडक से गुजरने वाले लोगो को देखने मे बीतने लगा।

सुचिन्ता शरबत का गिलास लाकर पीछे खडी हो गयी, बोली, "इस तरह से क्या देख रहे हो ?"

सुशोभन ने चेहरा घुमाकर चिंतित स्वर मे कहा, "देखो सुचिन्ता हमेशा ही ऐसा महसूस हो रहा है जैसे कुछ गडबड हो गया है।"

"अब कहाँ गडबडी हुई ?' सुचिन्ता का हृदय किसी शका से धक् से कर उठा। लेकिन अपने को सयत करते हुए बोली, "इस शरबत को पीने का समय अलबत्ता गडबडा गया है। लो, अब पी लो।'

"रहने दो यह सब। अच्छा, यह बताओ जो लोग उस दिन लौट गये थे, वे लोग मेरे अपने ही लोग थे न ?"

सुचिन्ता आवेग रहित कठ से बोली, "हाँ, अपने ही लोग थे। व लोग तुम्हारे भाई और भतीजे थे।"

"तब वे लोग चले क्यो गये ? तुमने उन्हे जाने के लिए क्यो कहा ?'

"मैंने कब उनसे जाने के लिए कहा था ?'—सुचिन्ता ने शिकायत भरे लहजे मे कहा।

सुशोभन बोले, "जान के लिए भले ही नही कहा होगा, उनसे रुकने के लिए भी तो नही कहा । वे सब मेरे अपने लोग थे ।"

सुचिता का मन अचानक विद्रोह से भर गया। बोल पडी, "इतने ही तुम्हारे अपने लोग थे तो यहा रह क्यो नही गये ? उन्होंने ही कब रहना चाहा था ?"

' वही तो । मैं ठीक से कुछ समझ नही पा रहा हूँ । अच्छा सुचिन्ता यह घर तो तुम्हारा है । यहाँ वे लोग आकर क्यो रहेंगे ? उन लोगो के पास भी रहने के लिए मकान है। मुझे बडी चिन्ता हो रही है । लग रहा है कि जाने कहाँ कोई बहुत बडी गलती हो गयी है ।"

"उतना सोचना की जरूरत नही है । —सुचिता प्राय धमकाते हुए बोली, "सोचने से तुम्हारी तकलीफ बढ जाती है, इसे भूल गये हो ? लो, अब इस शरबत को पी लो। मैं जरा अखबार पढ लू । अभी तक मौका ही नही मिला ।"

सुशोभन ने शरबत का गिलास ठेलकर परे करते हुए दृढ स्वर मे कहा, "रहने दो । अखबार रहने दो । तकलीफ होती है, इसलिए सोचूगा नही । नही सोचूगा कि कहा गलती हो गयी है । '

"डॉक्टर ने भी तुम्हे सोचने के लिए मना किया है ।"

"मैं डाक्टर की बात नही सुनूगा । मैं सोचूगा ।"

हाँ, सुशोभन ने सोचने का विचार तय ही कर लिया था । जब तक गलती का पता नही चलता, वे तब तक सोचते रहेगे ।

कुहासे से ढँकी हुई पृथ्वी पर क्या सूर्य की किरणे आकर धक्का मारती है ? कुहासे के उस धुधली चादर को वे विदीर्ण कर देती हैं ? तभी अचानक एक-एक चीज साफ-साफ नजर आने लगती है । पेड-पौधे, हर दृश्य तब रोशन हो उठते हैं ।

क्या उसी तरह भ्रष्ट चेतना के कुहासे की चादर को विदीर्ण करके चेतना दीप्त हो उठती है ?

भडार घर की खिडकी के पास खडी होकर अशोका एक चिट्ठी पढ रही थी ।

कमरे मे घुसते ही मायालता ने दग्ध करने वाली नजरो उसे से घूरा मगर चेहरे पर मधुर मुस्कान लाते हुए बोल बैठी, "देवरजी की चिट्ठी पढ रही हो छोटी बहू ?"

अशोका चिट्ठी से अपनी नजरें उठाकर बोली, "हाँ ।"

"भाई के पास तो आज सुबह ही चिट्ठी आयी है । शाम होते न होते एक दूसरी चिट्ठी । जो भी कहो छोटी बहू, तुम लोग गहरे म पैठकर पानी पीने वाले

हो। बाहर से देखकर कोई भी सोचेगा कि तुम दोनो मे बिल्कुल नही पटती लेकिन जरा-सी आँख की आट होते ही बुरी तरह से विरह सताने लगा है। नयी-नयी शादी हुए दूल्हे की तरह उमन पूरे चार पन्ने की चिट्ठी लिखी है। तो जरा सुनू, उसने लिखा क्या है ?"

अशोका ने अपनी जेठानी के सामने चिट्ठी बढा दी।

मायालता ने अपने हाथ को काबू म रखने हुए बडी तकलीफ से मुस्कराकर बोली, "अरे, तुम्हारा पति-पत्नी का प्रेमपत्र भला मैं कैसे पट सकती हूँ ? बस, तो मैं उसकी खास-खास बातें जानना चाहती हूँ।'

"इसे तो मैं खुद ही नही समझ पा रही हूँ।"

"कहती क्या हो छोटी वहू ? क्या उसने खूब कविता की है ?"

"वैसी क्षमता होनी तब न ?' अशोका थोडा हँसकर बोली, "लिखा है कि दो तीन दिना के लिए सागरमय की देखभाल के लिए नस की व्यवस्था करके नीता अपने पिता को देखने के लिए कलकत्ता आने वाली है। वापस जाते समय मुझे भी उसके साथ दिल्ली जान के लिए कहा है।"

"मतलब ? क्या देवर ने जमाई के घर मे ही रहना तय कर लिया है ?"

"वहाँ नही, पडास मे मकान लिया है। सागरमय की मदद के लिए उसके चेम्बर मे हमेशा एक आदमी की जरूरत है, इसोलिए नीता के अनुरोध पर—"

मायालता भौंहे सिकोडती हुई बोली, "चेम्बर! क्यो क्या वह अधा अब डाक्टरी भी करेगा ?"

"ऐसा ही लिखा है।'

"तब तुम अपन जाने की तैयारी शुरू कर दो। यू ही नही कहती कि दुनिया अकृतज्ञो से भरी हुई है।"

मायालता अपनी भर आयी आखा को बचाते-बचाते धम-धम करती हुई चली गयी।

मनुष्य का मन भी कितना विचित्र होता है। मायालता चौबीसो घटे जिनको 'बोझ समझती रहती थी, हर समय जिनको ताने मारती थी "कही जाते भी तो नही कि थोडा हाथ पैर फैलाकर निश्चिन्त बैठ सकू। अब उन्ही के जान की सम्भावना मात्र से ही मायालता की आँखो मे आँसुओ का ज्वार उमडने लगा था।

ऐसा क्यो हो रहा था ? क्या सग छूटने की कल्पना से ? या अभिमान से ? या उनके सामने से इस तरह से निकल कर चले जाने की ईर्ष्या से ? जो भी हो, कारण मायालता को भी नही मालूम था। अपनी व्याकुलता वे सभाल नही पा रही थी।

मायालता की तकदीर हमेशा ही ऐसी रही थी।

उनकी तक्लीफ की उनके पति-पुत्र भी परवाह नही करते। सुविमल ने व्यग्य भरे लहजे मे कहा, "अच्छा ही तो है, अब तुम हाय-पैर फैला कर रह पाओगी। बैंक मे रुपये जमाओगी।'

लडके भी मुँह बनाकर बोले, "उनके चले जाने की बात पर माँ, तुम्हे रोना आ रहा है? बलिहारी है तुम्हारी। समझ नही पा रहे हैं कि इनमे से किसे तुम्हारा अभिनय कहे—इतने दिनो का चिडचिडाना या इस समय का टेसुवे बहाना।"

मायालता पुन हमेशा की तरह प्रतिपक्ष पर ही सवार हो गयी। दीवाल को सुना-सुनाकर कहने लगीं, "इसी को कहते ह दुनिया। इतने दिनो का किया करा सब बेकार हो गया। अब छोड-छाडकर जमाई के यहा रहने की बात से शर्म भी नही आ रही है। यहा तो बाबू साहब के स्वाभिमान का पार नही था, अब जमाई की चाकरी करने मे स्वाभिमान आडे नहीं आयेगा। लडकी की भी बलिहारी है, पागल बाप जाने किसके यहा पडा हुआ है उसकी कोई खबर नही, इधर चाचा के प्रति प्रेम उमड आया है। आखिर चाचा से ही मतलब हल होगा तभी न? चाचा ताऊ कहकर कभी माना नही, कभी परवाह नही की—और आज—मैं हाती तो ऐसी लडकी की परछाइ भी नही लाँघती।

भला दीवाल भी कही बोलती है?

वही बालते हैं जो हमेशा से मुखर रहते हैं।

कृष्णा ने चिट्ठी के माध्यम से अपनी बात कही थी, "नीता दीदी, तुम्हारे इत्मीनान से मुझे हैरानी होती है। तुम्हारे पिता भी यहाँ हैं, शायद इस बात को तुम भूल ही गयी होगी। यह भी भूल गयी होगी कि जिनके सिर पर तुम उन्हें लाद आयी हो उनका घर-परिवार है, समाज है उनके भी लडके हैं। अगर उनका धैय क्रमश खत्म हो जाए तो शायद तुम उन्हे दोषी नही ठहरा पाओगी। सुना है तुम स्वदेश लौट आयी हो, अब तुम अपने पिता के बारे मे क्यो नही सोच रही हा?"

पत्र की भाषा मे चतुराई भरी थी।

उनका धैर्य खत्म हो गया है, "न लिखकर कृष्णा ने 'अगर, कहकर बचाव की सूरत निकाल रखी थी। इन्द्रनील को बिना बतलाये ही उसने इस पत्र को लिखकर पोस्ट कर दिया।

कृष्णा ने अनुपम कुटीर मे आना-जाना अभी भी बद नही किया था। असल मे अब अपनी मा से भी उसकी नही पट रही थी और इधर अपने पिता का तुच्छ भाव भी उसके लिए असहनीय हो रहा था। 'मेरा तो सभी कुछ कृष्णा का

ही है। यह बात भले ही वे अपने मुँह से जाहिर करते रहे, लेकिन जब तक वे लाग इस दुनिया मे है, तब तक तो यह नही हो सकता—तब तक वे दोनो मायके मे रह रही लडकी और घरजमाई के नाम से ही जाने जाएँगे।

इसके अलावा वही बात थी।

अब माँ का हमेशा आक्षेप और निरतर कृष्णा को दोषी ठहराते रहना और पिता द्वारा निरन्तर व्यग्य के शूल चुभोते रहना असहनीय हो उठा था। उनके अदर की कुढन व्यक्त होने का यही रास्ता रह गया था मगर उसे सहते जाना कृष्णा के लिए बहुत कठिन होता जा रहा था।

उस दिन मा और मौसी की सफर-कहानी सुनने के बाद से कृष्णा के दिमाग मे नीरा का चिट्ठी लिखन की धुन सवार हा गयी थी। सचमुच ही जिसके दो दो भाई भावज, नाते-रिश्तेदार, लडकी-दामाद मौजूद है उसे बेहया की तरह सुचिता क्या पकड रखगी ?

उधर से ही कोई रास्ता निकल आये तो अच्छी बात है।

अब सुचिन्ता का हरदम यही महसूस होता है कि वह बेवकूफो की तरह शादी के लिए पागल न हुई हाती तो अच्छा रहता। दुनिया मे जाने कितन 'प्रथम प्रेम' का अत हाता रहता है, कृष्णा का भी हो गया होता। इतने दिनो मे कृष्णा की शादी किसी गाडी-बँगले और मोटी तनख्वाह पाने वाले व्यक्ति से हो गयी होती और वह बडी निश्चितता से सहज-स्वाभाविक जीवन बिता रही होती।

अब ता यही लगता है कि सात जन्मा म भी कोई प्रेम विवाह न करे। बहुत हुआ ता शादी के पहले एक-आध बार प्रेम की आँख मिचौनी खेलने मे ऐत-राज नही है, लेकिन उस कमजोर डार को पकडकर लटकना चरम मूर्खता ही कही जाएगी। शादी करनी हो तो पास म ऐसी डोर की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे जीवन-नैया को बाधा जा सके।

चिट्ठी भेजकर कृष्णा जवाब के इतजार म दिन गिनन लगी।

लेकिन नीता क्या इस चिट्ठी का जवाब देगा ?

अगर देगी भी तो उसका क्या जबाब होगा ?

नीता को और उसके अध दूल्हे का देखन की भी इच्छा होती है, यह देखन की भी इच्छा करती है कि यह शादी बिल्कुल निरुपाय हो जाने पर ही करनी पडी थी या काले पत्थर पर परखी गयी प्रेम की स्वण माला गल मे डाली गयी थी। एक बार देख आना कोई मुश्किल काम नही है लकिन जाने की बात कहन का साहस नही हुआ। साहस नही हुआ इसलिए भी कि कही इद्रनील पुन नीता के निकट न आ जाय। कृष्णा को नीता से भल ही ईर्ष्या न हा, लेकिन उससे डर जरूर लगता है।

चिट्ठी दिल्ली म नीता के हाथ म उस समय बडा जब वह सागरमय के लिए

एक नस की व्यवस्था करके और उसे छोटे चाचाजी के जिम्मे सौंप कर कलकत्ता आने की तैयारी कर रही थी।

इसलिए उसने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया। सोचा, खुद ही जा रही हूँ तब जवाब क्या दिया जाए। साथ ही सोचने लगी कि क्या वाकई सुचिता बुआ क्लांत हो गयी है, उनका धीरज खत्म होने लगा है ?

नीता ने तब क्या गलत समझा था ? क्या गलत धारणा बनाकर निश्चित हो गयी थी ? लेकिन यह कैसे सम्भव हो सकता था ? या शायद यही स्वाभाविक होगा। तब शायद नीता भी किसी दिन थक जाएगी, सागरमय की अक्षमता का भार ढोते-ढोते धीरज खो बैठेगी। यह सोचकर ही नीता सिहर उठी, पूरी ताकत से वह कह बैठी—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

टेबलेट वाली शीशी के ढक्कन को खोलकर सुचिता ने उसे अपनी हथेली पर उलट दिया। सिर्फ एक ही टेबलेट बचा हुआ था। बस आज ही के लिए था। आज ही मँगाना जरूरी हो गया। इस दवा ने उम्मीद से कहीं अधिक फायदा पहुँचाया था।

हाँ उम्मीद से कहीं अधिक, धारणा से कहीं अधिक।

सुशोभन भी धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। डाक्टर पालित का कहना था कि इस नयी दवा ने चिकित्सा-जगत में हलचल मचा दी है। उन्होंने इसका नियमित व्यवहार करने की सलाह दी है।

दवा खत्म हो गयी थी।

उसे मँगाकर रखना पड़ेगा।

निरुपम से कहना पड़ेगा।

सुशोभन को डाक्टर के पास ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती। शायद डाक्टर को जाकर बस रिपोर्ट दे देनी पड़ती है और वह रिपोर्ट निरुपम खुद ही समझ-बूझकर दे आता है। माँ से कुछ पूछने की जरूरत नहीं पड़ती। दवा आदि भी वह खरीदकर किसी समय आकर सुशोभन की मेज पर वह रख जाता है।

लेकिन अब वह ऐसा नहीं करेगा। सुचिता इस बात को समझती थी। अभी दवा खत्म होने का वक्त नहीं हुआ था। सुशोभन ने नाराज होकर न जाने कब काफी टेबलेट खिड़की से बाहर फेंक दिये थे।

कहा था, "नहीं खाऊँगा। तुम्हारे उस हतभाग्य डाक्टर की बातें अब और नहीं सुनूँगा। दवा पिला-पिलाकर उसने मुझे न जाने कैसा कर दिया है। पहले मैं कितना खुश रहता था, सुबह, दोपहर, शाम सब कितने अच्छे लगते थे। यह सारी हँसी खुशी कहाँ चली गयी। अब हर समय जाने कैसी तकलीफ होती रहती

है, लगता है कोई भयकर भूल हो गयी हो हालाकि यह भूल कहा हो गयी है इसे नही समझ पा रहा हूँ, आखिर यह सब कर कौन रहा है? वही डॉक्टर न ! उसकी दवा उठाकर मैं फेंक दूँगा।"

उन्होने सचमुच ही कुछ टेबलेट उठाकर फेंक दिया था।

सुचिन्ता न उन्हे बहुत समझा-बुझाकर धमकाकर इस काम से रोका था। लेकिन जो नुकसान होना था, वह हो ही गया। निरुपम का यह बात नही मालूम थी। वह अपने अदाज से समय पर दवा लाकर मेज पर रख जायेगा।

दवा खत्म हो जाने की बात उसने कभी सुचिन्ता से पूछने की जरूरत नही समझी।

उसके बाड से पूछन से सुचिन्ता के मन की जलन ठठी होने वाली हो, तब भी नही। वह साफ-साफ कुछ नही कहता लेकिन वह इस बात को जतला देता है कि माँ से कुछ कहने सुनने की उसे इच्छा नही होती।

सुचिन्ता न शीशी को प्रकाश के सामन करके देखा। एक ही टेबलेट बाकी बचा था। निरुपम को कह बिना उपाय नही था।

लेकिन अगर वे न कह ?

अगर दवा न लाये तो क्या होगा ? अचानक सुचिन्ता के मन म दवा जैसी जड चीज के प्रति ईर्ष्या की ज्वाला फूट पडी। उस ज्वाला से उनका सिर से पैर तक झनझना उठा।

इसी दवा के कारण ही सुशोभन उस भयावह अधकार के गहर से उबर पा रहा है। सुचिन्ता का श्रेय कहाँ था ? क्या सुचिन्ता का मान-सम्रम, जीवन और उसके जीवन की शाति का काई मूल्य नही था ? अपने को चूर कर खाद बनाकर सुचिन्ता ने जिस फसल को लहलहा दिया, उस फसल को उठाकर कोई दूसरा अपने घर ले जाएगा ?

अगर सुचिन्ता खुद ही अपन हाथो से उस फसल को नष्ट कर दे तो क्या होगा ?

नही, वे निरुपम के पास जाकर सिर झुकाकर दवा के लिए नही कहेगी।

उसकी शात हो रही स्नायुओ मे दुबारा विश्रृखलता की चचलता नजर आने लगे, वही ठीक होगा। सुचिन्ता निष्ठुर उल्लास से भरकर फिर से इस बात को परखने की प्रतीक्षा करेंगी कि सचमुच उनकी प्राणातकर दुरूह साधना का वाकई कोई मूल्य है या नहीं। वे इस दवा की आखिरी खुराक को भी फेंक देना चाहती थी। वे परखकर देखना चाहती थी कि विषधर का विष पत्थर के असर से निस्तेज होता है या सपेरे की मधुर बीन के असर से।

खुली हुई शीशी को सुचिन्ता न उलटन के इरादे से खिडकी के बाहर कर दिया और जिस तरह से अचानक उनका मन ईर्ष्या का ज्वाला से दग्ध होने लगा

था ठीक अचानक ही वह अपने आप शात भी हो गया। वे शिथिल हो गयी। वे मन ही मन अपने को धिक्कारने लगी कि एक पागल के साथ रहते-रहते क्या वे भी पागल हो गयी थी ?

नीलाजन और इन्द्रनील के कमरे अब पहले जैसे खुले हुए नही रहते। सुबल के चले जाने के बाद से नया नौकर दिन मे एक बार झाड-पोछकर बद कर जाता है, जिससे वे दुबारा धूल-धूसरित होकर उसका काम न बढा दें। निरुपम के कमरे मे जाते समय इन कमरो के बद दरवाजो को देखकर लगा वे कि सुचिन्ता के भाग्य की ओर नये सिरे से इशारा कर रहे हैं।

दोनो दरवाजे बद रहने लगे हैं। बगल का अधखुला दरवाजा भी शायद किसी दिन धीरे-धीरे पूरी तरह से बद हो जाएगा।

खैर, फिलहाल तो यह आधा खुला हुआ था।

अगर साहस किया जाय तो अभी भी कमरे के अन्दर घुसा जा सकता है।

और वैसा साहस सुचिन्ता ने किया।

कपाटो को धीरे-धीरे ठेलकर कमरे मे प्रविष्ट होकर वे बोली, "निरु, कमरे मे हो ?

भरसक स्वर को स्वाभाविक बनाने की कोशिशो के बावजूद सुचिन्ता के कानो मे अपने ही स्वर की अस्वाभाविकता खटक गयी। सकोच से कापता हुआ अस्वाभाविक स्वर।

लेकिन अब क्या किया जा सकता था !

देहयन्त्र के सारे कल पुर्जों को क्या हमेशा अपने नियन्त्रण मे रखा जा सकता है ?

निरुपम ने किताब से नजरे हटा ली।

सुचिन्ता का इस कमरे मे कुछ देर तक बैठने का मन हुआ।

लेकिन निरुपम तो उन्हे बैठने के लिए कहने वाला नही था।

उसने पहले ही कभी नही कहा था तो भला आज कैसे कहता ? लेकिन उसके कहने की क्या जरूरत थी ? अगर अपने लडके के कमरे मे सुचिन्ता बिना कहे हुए ही बैठ जायँ तो इसमे हर्ज क्या था।

सुचिन्ता मन ही मन अपनी पूरी ताकत लगाकर बैठ गयी। बोली, "दवा खत्म हो गयी है, उसे लाना होगा।"

निरुपम ने यह नही पूछा कि, 'इतनी जल्दी कैसे खत्म हो गयी ? या अभी तो दवा लाने की बात नही है ऐसा भी नही कहा। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "अच्छा।"

यह सुनकर उसकी आखो मे कोई सवाल उभरा था कि नही, इसे सुचिन्ता नही समझ पायी।

लेकिन सुचिन्ता चाहती थी कि उसकी आँखो मे कोई सवाल उठे। वह कुछ पूछ ही ले।

उस सवाल के माध्यम से ही सुचिन्ता बात आगे बढाने को सोच रही थी, किसी काम-काज की बात नही। बस यही चाहती थी कि परस्पर सवाद हो।

जिस सुचिन्ता को लोग बचपन मे बातो की सूरमा के रूप मे जानते थे, वही सुचिन्ता जीवन भर चुप रहते-रहते हाफ गयी थी।

सुचिन्ता ने अपने भाग्य और जीवन पर अभिमान करके अपनी वाणी को मुहरबन्द कर दिया था।

लेकिन आज कसक रहा था कि क्या उस अभिमान का मूल्य किसी ने दिया, क्या कभी किसी ने सुचिन्ता को समझने की कोशिश की ? तब आखिर किसके लिए सुचिन्ता अपना मुह बन्द रखे ? नही, अब वे और चुप नही रहेगी।

शायद बातो के लिए ही वे तैयार होकर आयी थी। इसीलिए बोल पडी, "दवा खत्म होने के बाद खरीदने से पहले क्या डाक्टर को रिपोर्ट देनी पडती है ?"

"रिपोर्ट हर सप्ताह देनी पडती है।"

निरुपम किताब मे आखे गडाए हुए ही बोला।

"लेकिन तुमने मुझसे तो कभी कुछ पूछा नही ?"

"पूछने की क्या बात है ? सब नजर ही आता है।'

अब सुचिन्ता क्या कहती ?

फिर भी वे बोली, "दवा अभी खत्म होने की बात नही थी, खत्म कैसे हो गयी तुम यह जानना नही चाहोगे ?"

"यह सब जानने की फुसत किसे है ?" निरुपम की नजरें फिर पुस्तक की ओर चली गयी।

"ठीक कहते हो। तुम लोगो का समय बडा कीमती है।"

सुचिन्ता अपने लडके का समय अब और बर्बाद न करके चली आयी।

उन्होने सोचा, क्या उन्होने अपनी ओर से कभी कोशिश नही की थी ?

उन्होने बार-बार रोशनी पैदा करने की कोशिश की थी लेकिन भाग्य की वचना के कारण रोशनी जलने की बजाय बार-बार बुझती ही रही थी। ऐसी हालत मे वे और क्या करती। अपने मन की बात सुचिन्ता को मन ही मे कैद रखने के अलावा कोई चारा नही था। उनकी बातो का वहाँ कौन सुनने वाला था ?

लेकिन अगर कोई सुनना ही चाहता हो ? नही, अपराध होगा, निंदनीय होगा।

यह कमरा और वह कमरा।

सिर्फ इन दोनों कमरों में आज जो चलन फिरन की आहट होती है, वह भी शायद अधिक दिनों तक नहीं रहेगी। अनुपम कुटीर निस्तब्ध हो जाएगा।

उस कमरे में सुचिन्ता हाथ में अखबार लेकर पढ़ने बैठी थी। बैठने से पहले उन्होंने कुर्सी को खींच लिया था।

"सुचिन्ता तुम मेरे इतना नजदीक आकर क्या बैठी हुई हो? यह तो उचित नहीं है।'

सुशोभन ने जज की तरह राय देते हुए कहा।

सुचिन्ता के हाथ से अखबार छूटकर नीचे गिर गया। भयंकर एक आहत विस्मय से वे पागल के चेहरे की ओर देखते हुए धीरे से बोली, "किसने कहा उचित नहीं है?"

"मैं कह रहा हूँ।' सुशोभन ने अपनी कुर्सी खींचकर सुचिन्ता से काफी फासला करते हुए कहा, "हम लोगों की इतनी उम्र हो गयी है, हम लोगों को भला कौन कहेगा?"

सुचिन्ता बेहद सद आवाज में बोली, "रोज ही तो मैं इस कुर्सी पर बैठकर इसी तरह से तुम्हें अखबार पढ़कर सुनाती रही हूँ।"

"अब नहीं बैठोगी।' सुशोभन और भी गंभीर होकर बोले।

"बिल्कुल बैठूंगी। रोज बैठूंगी।'

सुचिन्ता जैसे लाठी के सिरे को नदी में डालकर उसकी थाह लेना चाहती थी या शायद देखना चाहती थी कि यह वास्तव में जल ही है, कहीं मृग-मरीचिका तो नहीं है?

"ऐं, बैठोगी? रोज बैठोगी? तुम पागल हो गयी हो क्या सुचिन्ता? क्या तुम महसूस नहीं करती कि तुम्हारे इस पागलपन के कारण ही नाराज होकर तुम्हारे बेटे तुम्हें छोड़कर चले गये।"

सुचिन्ता एकटक देखती हुई दृढ़ स्वर में बोली, "फिर वही बात? उस दिन तुमको बताया था न कि वे लोग नौकरी करने बाहर गये हैं।"

"तुम गलत कह रही हो।' सुशोभन ने जिद भरे स्वर में कहा, "तुम्हारा छोटा बेटा तो नहीं गया है। उसको मैंने देखा है। वही तो उसी दिन आया था। साथ में उसकी बहू भी थी। मैं तुम्हारे पास खड़ा था, इसलिए वह तुमसे नाराज होकर चला गया।"

सुचिन्ता उसी तरह देखते हुए बोली, "तुम्हें मैंने ज्यादा बोलने से मना किया है न?"

सुशोभन इस बात से पहले की तरह नाराज नहीं हुए। यह भी नहीं कहा कि 'तुम्हारे मना करने की परवाह करूँ तब न?' सिर्फ म्लान होकर बोले,

दिमाग मे ढेरा वाले उथल-पुथल होती रहती हैं। न कहने से मैं रहूँगा कैसे ? जाने कितनी चिंताएँ हैं, जाने कितनो बातें है। साच सोचकर ही ता आखिर गलती की जड तक पहुँच पाया हूँ।"

"गलती कहा पर है, इसे समझ गये हो ?

सुचिन्ता ने भावहीन चेहरे से प्रश्न किया।

सुशोभन और भी म्लान होकर बोले, "मुझे मालूम है कि तुम नाराज हो जाओगी। लेकिन नाराज होने से कैसे काम चलेगा सुचिन्ता ? हम लोगो की इतनी उम्र हो गयी है। हम लोगा को तो सब कुछ सोच-विचारकर चलना पडेगा। कहते-कहते सुशोभन का चेहरा गभीर हो गया।

अचानक सुशाभन का चेहरा ढीली मासपेशिया वाले किसी वृद्ध का चेहरा लगने लगा। सुशोभन की इतनी उम्र हो गयी थी, यह पहले कभी उनके चेहरे से पता नही चलता था।'

क्या सुशोभन ने अपना प्रसन्नता से दीप्त चेहरा हमेशा के लिए खो दिया ? इसके मतलब अब वे अपने वृद्ध चेहरे को और अधिक गभीर करके बैठे हुए उचित अनुचित की बाते सोचते रहगे।

लेकिन यही तो सभी ने चाहा था ? सुचिन्ता ने भी यही कामना की थी। इस बात की साधना के लिए ही तो सुचिन्ता ने अपना सवस्व उत्सग कर दिया था। अभी भी अपने जावन के सब कुछ की आहुति अपनी साधना के होमकुड मे दे रही थी।

तब सुचिन्ता ऐसी मलिन क्यो हुई जा रही थी ?

अपनी साधना के सफल होने पर ता हर कोई उस सफलता की मूर्ति को देखकर स्तब्ध हो जाता है ?

सुचिन्ता की हर बात क्या दूसरो से अलग थी ?

सिफ सुचिन्ता ही क्या, दुनिया म इस तरह के एक आध व्यक्ति होते ही हैं। ऐसा न होन पर अशोका क्या कहती "मैं दिल्ली क्यो जाऊँगी। क्या मेरा दिमाग खराब हुआ है ?' लेकिन उसने ऐसा क्या कहा ? यहाँ रहकर तो उसका हमेशा ही दम घुटता रहता था। यहाँ से मुक्ति पाने के लिए उसका प्राण पछाड खाता रहता था।"

सुविमल न आते ही कहा, "छाटी बहू दो-चार दिन के लिए घूम ही आओ कभी तो कही निकलना नही हुआ।"

अशोका मुस्कराकर धीरे से बाला, "जब मॅझले भैया स्वस्थ थे, जब वहाँ का माहौल ठीक था, तब जाना हाता तो अलग बात थी।"

सुविमल कुछ देर खामोश रहकर बोले, "लेकिन लगता है मोहन वहीं सेटल होना चाहता है। कलकत्ते से तो अब तक कुछ हो नहीं पाया।"

"बड़े भैया उनको कभी भी कहीं भी कुछ नहीं होगा।" कहकर सिर नीचा करके अशोका मुस्कराने लगी।

"मेरे भाई का तुम बहुत नीचे गिरा रही हो। यह भी तो सभव है कि अब उसमे कुछ करने की इच्छा जाग्रत हो गयी हो।"

"ऐसा हुआ हो तो बहुत अच्छी बात होगी।"

"मैं सोच रहा था," सुविमल ने कहा, "तुम लोगो के वहाँ पर रहने से बाद म सुशोभन को यहाँ से ले जाना मुश्किल नहीं होगा।"

"लेकिन वे तो यहा अच्छी तरह से हैं।"

सुविमल थोडा मुस्कराकर बोले, "वह तो है ही। लेकिन कोई भी बात दुनिया के तौर-तरीको से मेल न खाने पर अत मे भी अच्छी मानी जायेगी इस पर आज तक कोई विचार नही हुआ है। खैर, देखा जायेगा।"

"लेकिन आप क्या मुझसे वहाँ जाने के लिए कह रहे हैं?"

सुविमल थोडा हँसकर बोले, "सवाल तो तुमने बडा साघातिक किया है। तुम्हारे चले जाने का मतलब ही इस मकान की ज्योति बुझ जाने जैसा होगा, कोई मधुर गीत बद हो जाने जैसा होगा। लेकिन अपने स्वार्थ को परे रखकर कहता हूँ कि इस जीवन म शायद बीच-बीच म व्यवस्था मे बदलाव लाने की जरूरत महसूस होती है। इससे व्यक्ति का आत्मविश्वास बढता है, जडता खत्म होती है और घरेलू एकरसता से मुक्त होकर मन का उत्कर्ष होता है। मोहन की चिट्ठी पढने से मेरी धारणा और दृढ हुई है।"

अशोका मौन होकर सुनती रही।

वह खामोश होकर सोचने लगी।

सुमोहन म आत्मविश्वास का विकास होना क्या सभव है। अगर ऐसा हुआ तो कहना होगा कि दिल्ली की आबोहवा का असर जादुई है।

लेकिन अशोका को भी शायद इतने दिनो तक एक साथ रहते-रहते सुमोहन की हवा लग गयी थी, इसलिए वह सोच रही थी कि आखिर व्यवस्था में बदलाव की जरूरत क्या है? सब चल तो रहा ही है। सोच रही थी कि उसे यहाँ सिर्फ सुविमल का ही स्नेह प्राप्त नहीं है बल्कि मायालता भी उसे किसी से कम स्नेह नहीं करती।

हाँ, मायालता के मन को अशोका समझती थी।

समझती थी इसीलिए जीवन के इतने दिन इतने दिन साथ रहकर बिता सकी। दुनिया में ऐसे नादान लोग हों तो बुद्धिमानों के पैरों की बेड़ियाँ बन जाते हैं।

अगर सचमुच अशोरा को जाना पडा तो उसको सबसे अधिक मायालता की ही याद आयगी। अकुशल और असहिष्णु मायालता को असहाय होकर कितना कष्ट उठाना पडेगा, इस बात से अशोरा अनभिन नही थी।

लकिन मायालता के पैन और दपयुक्त वचना को सुनकर यह किसी के लिए भा विश्वास कर पाना कठिन था कि वहाँ से चले जान पर अशोरा के मन मे मायालता की याद बनी रहेगी।

उन दिना मायालता जब तक अपने सप्तम स्वर मे 'मनुष्य जाति ही नमक हराम होती है की रट लगाती घूमती रहती थी। इसके बाद ही कहती थी, क्या राजा के न होने से राज-काज नही चलता? क्या इनके न होने से गृहस्थी की गाडी रुक जायेगी? उह! अभावो के मारे मैं लडके की शादी नही कर पा रही थी। अब उसी धूम-धाम से शादी करके इज्जत से रहूँगी। तब आज जैसी दासी बादी होकर नही रहना पडेगा।" इसके अलावा वे नीता को लक्ष्य बनाकर भी कुछ नही कह रही थी, ऐसी बात नही थी।

भद्रमहिला अपनी वाणी का जरा भी विश्राम नही देती थी।

अगर कोसन मे शक्ति रही होती तो नीता जाने कब की भस्म हो गई होती।

लेकिन इस युग मे वाणी की कोई शक्ति नही होती इसलिए नीता का भस्म होना तो दूर ही रहा बल्कि पहले की तुलना मे कही अधिक स्वास्थ्यवती और व्यक्तित्व सपन्न हो गयी थी।

आश्चय है इतने आधी तूफानो के बीच भी नीता किस तरह से अपने चेहरे की काति और स्वास्थ्य के लावण्य को बनाए रह सकी थी?

हावडा स्टेशन के प्लेटफार्म पर अचानक कृष्णा से आमना-सामना हो जाने पर कृष्णा के मन मे सबसे पहले यही सवाल उठ खडा हुआ।

मुलाकात बडे ही अप्रत्याशित रूप मे हुई थी। प्राय कहानिया म घटी घटनाओ जैसी ही थी। नीता दिल्ली वाली गाडी से उतरी थी और कृष्णा इन्द्र-नील को गाडी म चढाकर लौट रही थी एक की चाल बहुत तेज थी और दूसरी मुर्झायी, थकी-थकी धीमी चाल वाली थी, इसके बावजूद दोना का आमना सामना हो गया।

नीता कह उठी "अरे, तुम?"

कृष्णा बोली, "अरे, आप!"

इसके बाद बडी तेजी स उन दोनो के बीच जो सवाद हुआ उसका साराश था कि, नीता वहाँ की हालत का थोडा व्यवस्थित करके पिता को देखने चली आयी थी। दो-तीन दिना से अधिक रहना नही होगा। शायद परसो ही लौटना पडे। नीता के चाचा वहाँ पर हैं इसलिए यहा आने मे विशेष असुविधा नही हुई।

और कृष्णा?

वह इन्द्रनील को गाडी मे चढान आयी थी। वर्धमान कालेज से एक साधारण वेतन वाली लेक्चरार की नौकरी का जुगाड करके इन्द्रनील अपनी पत्नी और उसकी माँ के सारे निषेधो को ठुकराकर चला गया।

"लेकिन निषेध क्या ? कुछ तो करना ही पडेगा ?" नीता ने कहा, "और शुरू म ही कोई बडी चीज मिल जाएगी यह सोचना ही बेकार है। यही सतोष जनक है कि एजूकेशन लाइन है।"

कृष्णा ओठ उलटते हुए बोली, "एजूकेशन लाइन। दो व्यक्तियो का दो अलग जगहों मे पडे रहने का कोई मतलब होता है ? कोशिश करने पर इसी कलकत्ते के एजूकेशन लाइन म क्या कोई नौकरी नही मिलती ?"

"क्यो नही मिलती ?" नीता चकित होकर बोली, "लेकिन कलकत्ते से बाहर जाकर कोई नौकरी नही करेगा इस बात म मुझे कोई वजन नही दीखता। दोनो के अलग-अलग जगहो मे पडे रहने से क्या मतलब है तुम्हारा ? क्या तुम भी कोई नौकरी कर रही हो ?"

"मेरा क्या दिमाग खराब है ! मुझसे गुलामी नही हो सकती। लेकिन उसके उस वधमान मे जाकर मैं नही रह सकूगी।"

"तुम वहाँ जाकर नही रह सकूगी।"

"मेरे दो टुकडे कर दे, तब भी नही। रहने के लिए उसे कोई सभ्य शहर नही मिला ? मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है। सोचा था, स्टेशन पर भी नही जाऊगी बस जीव-दया के नाते चली आयी। आप सुनकर यकीन नही करेगी कि मेरे पिताजी ने उसको आश्वासन दिया था कि वे किसी दोस्त से कहकर उसके लिए बढिया नौकरी की व्यवस्था करवा देंगे जवाब मे बाबू साहब ने कहा, "उस काम मे मेरी तबियत नही लगेगी।"

पिताजी ने कहा, "ठीक है, विदेश जाना चाहते हो ता कहो, वही भिजवाने की कोशिश करू।" यह सुनकर मुझे बडा मजा आया था। सोचा था, तब मैं भी नही छोडूगी। मेरी दो-तीन सहेलियाँ शादी के बाद बडे मजे से अपने-अपने दूल्हो के साथ अमेरिका चली गयो थी। लेकिन यह सुनकर भी बाबू साहब ने कहा, 'आपके रुपयो से विदेश जाकर मैं बडा आदमी बन जाऊँ, यह मेरे मिजाज के अनुकूल नही है।' आप यकीन कर रही है ? इस सडे देश की ऐसी सडी नौकरी से ही मिजाज का ताल-मेल बैठा। अब क्या बताऊँ घर म मेरी कैसी पोजीशन हो गयी है। उसकी बुद्धि को सभी धिक्कार रहे हैं, इसके अलावा शादी के बाद भी अपने मायके मे पडे रहना—'

बात खत्म करते-करते कृष्णा रुक गयी। शायद सोचने लगी इस तरह से नीता से अपने मायके मे पडे रहने का कारण बता देना उचित होगा या नही।

चिट्ठी म ढेरा बाते लिखी जा सकती हैं। लेकिन इस तरह से आमने सामने कह पाना—

कृष्णा की उस अधूरी बात से ही प्रश्न का उपादान जुट गया। नीता ने चकित होकर पूछ लिया, "मायके मे क्या पडी हुई हो ?"

"अब क्या बताऊँ। क्या आपको मेरी चिट्ठी नही मिली थी ?"

"मिली थी।" नीता मधुर मुस्कराकर बोली, "लेकिन उससे तुम्हारे मायके म पडे रहना, या पडे रहने का कारण ठीक से समझ मे नही आया। अब हालांकि समझ मे आ रहा है।"

"जब समझ रही हैं, तब अधिक कहने के लिए क्या है ?"

नीता कुछ देर चुप रहकर चिंतित होते हुए बोली, 'लेकिन मैंने तो हमेशा यही सुना कि पिताजी के स्वास्थ्य मे उन्नति हो रही है। अच्छा क्या वे लोगो को देखकर अपना धीरज खो बैठते हैं ?"

अबकी बार कृष्णा अपने खास लहजे मे तेज होकर बोल पडी, 'वे क्या हैं या नही हैं, इसे देखने की कभी मुझे फुर्सत नही हुई नीता दी। लेकिन असहिष्णुता ता दूसरे पक्ष की भी हो सकती है। और इसे समझने की बुद्धि आप मे नही है, ऐसा मैं नही मानती। एक पक्ष मेरे 'मा-बाप' का भी है और उनका भी मत-सम्मत नाम की कोई चीज है।"

सारी बातें कार मे लौटते समय हो रही थी।

कृष्णा जिस कार मे आयी थी उसी मे उसने नीता को भी बैठा लिया था। कृष्णा के पिता के पास दो गाडियाँ थी, एक उनके अपने काम के लिए थी और दूसरी परिवार के लिए थी। इसलिए किसी को असुविधा नही होनी थी।

नीता खिन्न होकर बोली, "सच कह रही हो। देखू, वहाँ कैसी हालत है।"

कृष्णा विद्रूप भरे स्वर मे ओठ सिकोडकर बोली, "हालत जैसी भी हो, आप कुछ व्यवस्था कर पाएँगी, मुझे ऐसा नही लगता।"

"मतलब ?"

"मतलब वही जाकर समझियेगा। चकित होकर चले आने के सिवा मुझसे भी कुछ करना संभव नही हुआ था।"

नीता कुछ नही बोली।

बाकी रास्ता खामोशी मे ही कट गया।

नीता बेहद चिंता मे पड गयी थी। सोचने लगी कि नरेश अब तक जो सूच-नाएँ मिला थीं, क्या वह सब गलत थी ? नीता की दुश्चिंता को कम करने के लिए क्या निरुपम ने लगातार झूठा आश्वासन देता आ रहा था ?

क्या सुशोभन ने कुछ अधिक ही अस्वाभाविकता का प्रदर्शन किया था ?

क्या सुनिता भयकर असुविधा की हालत म दिन बिता रही है ?

किस प्रकार के भ्रमो में तुम फँसी हुई हो। यहा कौन आया है, क्या तुम्हे नजर नही आ रहा है?"

नही सुशोभन बिलकुल नही चीखे ।

सुशोभन को समझ मे आ गया था कि इस तरह से चीखना-चिल्लाना नही चाहिए। इस तरह से चीखने की पीछे जो परम निश्चिनता की भावना रहती है सुशोभन के मन से लुप्त हो चुकी थी। अब सुशोभन दिन-रात सोचते रहते थे। और लगातार सोचने रहने से ही सुशोभन शायद गभीर हो गये थे।

आखिरकार नीता ही पूछ बैठी, "सुचिन्ता बुआ नजर नही आ रही है।"

सुशोभन चिंतित होकर बोले, "मुझे ता मालूम नही कहाँ गयी है।'

"तुम्हे मालूम नही है?"

"मैं? मुझे कैसे मालूम होगा? वह कब क्या करती है मुझे बताती थोडे है।"

"लकिन घर इतना खाली-खाली क्यो लग रहा है? सिफ नीचे एक नये नौकर को काम करते हुए देखा। उसी ने कहा, "सभी लोग ऊपर हैं।"

सुशोभन न गभीर होकर कहा, "सभी तो चले गये है।"

'चले गये?"

'हा, सुचिन्ता के लडके नाराज होकर चले गये।"

"नाराज होकर? आखिर इसकी वजह?"

सुशोभन कुछ और गभीर होकर बोले, "नाराज हो सकते है। नाराज हाना उनकी कोई गलती नही थी।"

नीता भी जैसे नदी के पानी की थाह लेना चाहती हो। इसलिए आश्चय चकित होकर बोली, "लेकिन ऐसा क्यो हुआ पिताजी? बुआ तो लडको से कुछ भी नही कहती थी।"

"कुछ कहने-सुनने की बात नही है", सुशोभन का स्वर कोमल हो गया "वह दूसरी बात है। अच्छा नीता, मैं सुचिन्ता के मकान मे किस हैसियत से रह रहा हूँ? मैं यहा पर कब आया? मुझे यहाँ पर कौन ले आया था?"

सुशोभन जब ये सारी बातें सोच रहे थे, सुचिन्ता उस समय घर मे ही थी। वे छत पर थी।

सुशोभन ने कभी कहा था, "सुचिन्ता तुम अपनी दादी की तरह आम का अचार नही बना सकती हो?" आज सुचिन्ता उसी के लिए कोशिश कर रही थी कि वे अचार डाल सकती है कि नही।

लकिन सुशोभन ने क्या कहा था?

बहुत दिन पहले कहा था। उस समय सुशोभन दुनियादारी के कायदे-कानून से परे थे। लेकिन उस समय आम का मौसम नही था।

सुचिन्ता छत से नीचे उतरकर चौंककर खडी हो गयी।

नीता के स्वार्थ ने क्या उन जैसी शात, भद्र, निर्लिप्त स्वभाव वाली महिला की शाति को खत्म कर दिया था ?

लेकिन क्या सिर्फ नीता का ही स्वार्थ था ? क्या इसीलिए नीता थी ? नीता के उस दिन के उस निर्णय के पीछे क्या और कोई बात नही थी ? उस दिन—जब नीता पहली बार अपने पिता को लेकर अनुपम कुटीर मे आयी थी।

सुशोभन तो खैर पागल ही थे, उन्होने अपने मन की सारी बातो को व्यक्त कर दिया था, लेकिन जो पागल नही था, जिसका सभी कुछ अव्यक्त था, क्या उस अव्यक्त स्थिरता द्वारा भी आजीवन सचित उस ऐश्वर्य भडार का आभास व्यक्त नही हुआ था ? उस ऐश्वर्य ने क्या उसे सिर्फ विध्वस्त ही किया था ? उस इसके लिए कोई तरीका नही ढूढा था ?

देखू, जाकर देखू, सुशोभन कैसे हैं ?

तुम मुझे पहचान लोगे पिताजी ?

क्या अभी तक तुम्हे मेरा नाम याद होगा ? समझ म नही आ रहा है कि इतने दिनो से वे लोग मुझे वाकई बेवकूफ बना रहे हैं ? पिताजी तुम अगर मुझे पहचान नही पाओगे तो ? क्या मैं उस दुख को सह पाऊँगी ?

अनुपम कुटीर के दरवाजे के करीब कृष्णा ने नीता को उतार दिया।

"तुम भी उतर आओ न।" नीता को यह कहने साहस नही हुआ और शायद मन भी नही हुआ। वह अपने पिता के पास अकेली ही जाना चाहती थी। कौन जाने वह अपने बहुत दिनो की बिछुडी बेटी जिसे वे भूल भी चुके होंगे, जाने कैसा व्यवहार करें।

लेकिन सुशोभन क्या भूल गये थे ? भूल गये थे कि नीता नाम की भी कोई थी। नही-नही, सुशोभन उसे कैसे भूल सकते थे ? उन्होने तो लगातार सोच-सोचकर भूल को खोज निकाला था।

नीता की सारी आशका और सारे उद्वेग को झटके से खत्म करके सुशोभन ने लपक कर अपनी बेटी को सीने से लगा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए रुँधे गले से वे बार-बार कहने लगे, "नीता, मेरी बेटी, तू आ गयी। इतने दिनों तक क्यो नही आयी थी ?"

उसके बाद मौके पर उन्होने सागर का भी जिक्र किया। पूछा, 'सागर नाम के उस लडके से तो तेरी शादी हुई थी न ? ये लोग तो यही कह रहे थे। उसे अपने साथ क्यो नही ले आयी ?"

नीता का मन खुशी से भर उठना चाहता था, लेकिन जाने कहाँ कोई चीज छूटी हुई नजर आ रही थी। नीता क्या हर क्षण यही आशा कर रही थी कि अब सुशोभन खुश होकर चीखने लगेंगे, "सुचिन्ता, तुम कहाँ चली गयी। जाने

किस बेकार के कामा मे तुम फँसी हुई हो। यहा कौन आया है, क्या तुम्हे नजर नही आ रहा है ?"

नही सुशोभन बिलकुल नही चीखे ।

सुशोभन को समझ मे आ गया था कि इस तरह से चीखना-चिल्लाना नही चाहिए। इस तरह से चीखने की पीछे जो परम निश्चितता की भावना रहती है सुशोभन के मन से लुप्त हो चुकी थी। अब सुशोभन दिन-रात सोचते रहते थे। और लगातार सोचने रहने से ही सुशाभन शायद गभीर हो गये थे।

आखिरकार नीता ही पूछ बैठी, "सुचिन्ता बुआ नजर नही आ रही है।"

सुशोभन चिंतित होकर बोले, "मुझे तो मालूम नही कहाँ गयी है।'

"तुम्हें मालूम नही है ?"

"मैं ? मुझे कैसे मालूम होगा ? वह कब क्या करती है मुझे बताती थोडे है।"

"लकिन घर इतना खाली-खाली क्या लग रहा है ? सिफ नीचे एक नये नौकर को काम करते हुए देखा। उसी ने कहा, "सभी लोग ऊपर हैं।"

सुशोभन ने गभीर होकर कहा, "सभी ता चले गये है।"

'चले गये ?"

'हाँ, सुचिन्ता के लडके नाराज होकर चले गये।"

"नाराज होकर ? आखिर इसकी वजह ?"

मुशोभन कुछ और गभीर होकर बोले, "नाराज हो सकते हैं। नाराज होना उनकी कोई गलती नही थी।"

नीता भी जैसे नदी के पानी की थाह लेना चाहती हो। इसलिए आश्चय चकित होकर बोली, "लेकिन ऐसा क्यो हुआ पिताजी ? बुआ तो लडको से कुछ भी नही कहती थी।"

"कुछ कहने-सुनने की बात नही है", सुशोभन का स्वर कोमल हो गया "वह दूसरा बात है। अच्छा नीता, मैं सुचिन्ता के मकान मे किस हैसियत से रह रहा हूँ ? मैं यहा पर कब आया ? मुझे यहाँ पर कौन ले आया था ?"

सुशोभन जब ये सारी बातें सोच रहे थे, सुचिन्ता उस समय घर मे ही थी। व छत पर थी।

सुशोभन ने कभी कहा था, "सुचिन्ता तुम अपनी दादी की तरह आम का अचार नही बना सकती हो ?" आज सुचिन्ता उसी के लिए कोशिश कर रही था कि वे अचार डाल सकती हैं कि नही।

लेकिन सुशोभन ने क्या कहा था ?

बहुत दिन पहले कहा था। उस समय सुशोभन दुनियादारी के कायदे-कानून से परे थे। लेकिन उस समय आम का मौसम नही था।

सुचिन्ता छत से नीचे उतरकर चौक पर खडी हो गयी।

"प्रणाम बुआ जी।" सुचिन्ता ने उनके नजदीक जाकर प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए सुचिन्ता बोली, "आने के पहले मुझे सूचना क्या नही दी ? निरुपम तुम्हे लेने शायद स्टेशन चला जाता—"

"आपको और अधिक परेशान करने की तबियत नही हुई। इसके अलावा आखीर तक यह तय नही कर पायी थी कि मैं यहाँ आ भी सकूगी या नही।"

"सागरमय कैसे हैं ?"

नीता कोमल स्वर मे बोली, "ऐसे तो ठीक ही हैं।" इसके अलावा कुछ नही कहा। जो बेठीक था उसके बारे मे उसने कुछ नही बताया। अपनी आवाज को कुछ और मुलायम करते हुए बोली, "पिताजी को तो खूब अच्छा ही देख रही हूँ। मुझे तो इतनी आशा नही थी।'

सुचिन्ता निर्लिप्त होकर बाली, "हाँ काफी लाभ हुआ है। डॉक्टर पालित ने प्राय असाध्य को साध्य कर दिया।"

"डॉक्टर पालित।" नीता कुछ खिन्न होकर बाली, "क्रेडिट क्या डॉक्टर पालित को ही है ? असाध्य को साध्य करने की प्रशसा सिर्फ उन्ही को क्यो ? यह काम तो बुआ आपने किया है।"

यह सुनकर सुचिन्ता के चेहरे पर मुस्कराने, नाराज होने या आवेग से उद्वेलित होने का कोई लक्षण नही दिखायी दिया। सहज लहजे म मृदु प्रतिवाद करते हुए बोली, "पागल लडकी। मैंने क्या किया ? इतनी सेवा तो कोई भी साधारण नर्स कर लेती है।"

"तुम परसो जा रही हो ? परसो ? दिल्ली जा रही हो ?' सुशोभन थोडा रुककर बोले, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा।"

"तुम भी चलोगे ?"

नीता ने एक बार अपने चारा तरफ देखा। देखा सुचिन्ता को भी। ढलती साँझ की मन्द होती हुई रोशनी म बरामदे के कोने वाले बेत के मोढे पर बैठकर वह कुछ लिख रही थी। गर्दन झुकी हुई थी, सिलाई का कपडा अपनी जगह पर रखा हुआ था। स्थिर मुद्रा म वे बैठी हुई थी।

सुशोभन की इस घोषणा को सुनकर भी उनकी स्थिरता म कोई परिवर्तन नही हुआ। नीता हिचकिचाते हुए बाली, "इतनी जल्दी तुम कैसे जा सकते हो पिताजी ?"

सुशोभन के हाथ मे एक किताब थी।

सुशोभन उसके पन्नो को शुरू से अंत तक और अंत से शुरू तक लगातार उलट-पुलट रहे थे। आजकल ऐसा ही करते थे। इन दिनों उनके हाथो मे हमेशा

कोई न कोई पुस्तक रहती थी जिसके पन्नो को वे उलटते रहते थे। पुस्तक मे मन को केंद्रित करने लायक धैर्य अभी उनमे विकसित नही हुआ था।

नीता की बातें सुनकर सुशोभन दो-तीन बार किताब के पन्नो को पलट गये। इसके बाद भौंहें सिकोडकर बोले, "इतनी जल्दी से तुम्हारा क्या मतलब है नीता ?"

नीता अप्रतिभ होकर बोली, "जल्दी का मतलब है कि अब एक ही दिन जाने के लिए रह गया है और तुम्हारी अभी सारी तैयारी बाकी है।"

"मेरे लिए क्या तैयारी करनी है।" सुशोभन थोडा असहिष्णु होकर बोले, "सब ठीक हो जाएगा। तुम छोड जाओगी तो मुझे कौन ले जायेगा ? मुझे तो अब ठीक से याद भी नही आ रहा है कि दिल्ली किस दिशा मे है।"

"तब ?" इस बात से नीता उत्साहित होकर बोली, "तब तुम इस समय कैसे जाओगे पिताजी ? इस बार रहने दो, मैं फिर आकर तुम्हे ले जाऊँगी।"

"नही, बाद मे नही, इसी समय।"

नीता ने फिर एक बार इधर-उधर ताका। सुचिन्ता पूर्ववत् अपना काम किए जा रही थी। इस वार्तालाप का कोई भी टुकडा उनके कानो मे जा रहा था, उन्हें देखकर ऐसा नही महसूस हुआ।

इसलिए नीता ने कुछ ऊँची आवाज मे कहा, "तुम्हारे अभी जाने की जिद करने से बुआ नाराज हो जाएँगी पिताजी। ठीक कह रही हूँ न बुआजी ?"

सुचिन्ता ने इस बार इधर अपनी नजरें फेरी और नीता के आखो के इशारे की बिल्कुल परवाह न करते हुए बोली, "नही, मैं नाराज क्या होऊँगी ?"

"हाँ, वह नाराज क्यो होगी ?" सुशोभन फिर किताब के पन्नो को तेजी से पलटते हुए बोले, "इसमे नाराज होने की क्या बात है ? यह तो मेरा अपना मकान नही है। मुझे यहाँ पर क्यो रहना चाहिए ?"

नीता पिता की ओर झुकते हुए दृढ स्वर मे बोली, "ऐसी बात—ऐसी बात नही कहनी चाहिए पिताजी। सुचिन्ता बुआ का घर क्या हम लोगो का घर नही है ? वह कोई पराई तो नही हैं।"

"नहीं, तुम बिल्कुल गलत कह रही हो।" उत्तेजना के मारे वे कुर्सी छोड-कर उठ खडे हुए बोले, "सुचिन्ता से किस तरह से हम लोगो का रिश्ता हो सकता है ? वह मुखर्जी तो नही है।"

"मुखर्जी न होने से भी वह गैर नही है पिताजी।"

"ऐसा नही होता।" सुशोभन दृढ स्वर मे बोले, "यह सब चालाकी भरी बातें हैं। मतलब तुम मुझे नही ले जाना चाहती हो।"

"वाह ले क्या नही जाना चाहती हूँ ? लेकिन सुचिन्ता बुआ तो अब दिल्ली

"प्रणाम बुआ जो।" सुचिन्ता ने उनके नजदीक जाकर प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए सुचिन्ता बोली, "आने के पहले मुझे सूचना क्या नही दी? निरुपम तुम्हें लेने शायद स्टेशन चला जाता—"

"आपको और अधिक परेशान करने की तबियत नही हुई। इसके अलावा आखीर तक यह तय नही कर पायी थी कि मैं यहाँ आ भी सकूगी या नही।"

"सागरमय कैसे है?"

नीता कोमल स्वर मे बोली, "ऐसे तो ठीक ही हैं।" इसके अलावा कुछ नही कहा। जो बेठीक था उसके बारे मे उसने कुछ नही बताया। अपनी आवाज को कुछ और मुलायम करते हुए बोली, "पिताजी को तो खूब अच्छा ही देख रही हूँ। मुझे तो इतनी आशा नही थी।"

सुचिन्ता निर्लिप्त होकर बोली, "हाँ काफी लाभ हुआ है। डॉक्टर पालित ने प्राय असाध्य को साध्य कर दिया।"

"डाक्टर पालित।" नीता कुछ खिन्न होकर बोली, "क्रेडिट क्या डॉक्टर पालित को ही है? असाध्य को साध्य करने की प्रशसा सिर्फ उन्ही को क्यो? यह काम तो बुआ आपने किया है।"

यह सुनकर सुचिन्ता के चेहरे पर मुस्कराने, नाराज होने या आवेग से उद्वेलित होने का कोई लक्षण नही दिखायी दिया। सहज लहजे मे मृदु प्रतिवाद करते हुए बोली, "पागल लडकी। मैंने क्या किया? इतनी सेवा तो कोई भी साधारण नर्स कर लेती है।

"तुम परसो जा रही हो? परसो? दिल्ली जा रही हो?' सुशोभन थोडा रुककर बोले, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा।"

"तुम भी चलोगे?"

नीता ने एक बार अपने चारो तरफ देखा। देखा सुचिन्ता को भी। ढलती साझ की मन्द होती हुई रोशनी म बरामदे के कोने वाले बेंत के मोढे पर बैठकर वह कुछ लिख रही थी। गर्दन झुकी हुई थी, सिलाई का कपडा अपनी जगह पर रखा हुआ था। स्थिर मुद्रा मे वे बैठी हुई थी।

सुशोभन की इस घोषणा को सुनकर भी उनकी स्थिरता म कोई परिवर्तन नही हुआ। नीता हिचकिचाते हुए बोली, "इतनी जल्दी तुम कैसे जा सकते हो पिताजी?'

सुशोभन के हाथ मे एक किताब थी।

सुशोभन उसके पन्नो को शुरू से अत तक और अत से शुरू तक लगातार उलट-पुलट रहे थे। आजकल ऐसा ही करते थे। इन दिनों उनके हाथो मे हमेशा

कोई न कोई पुस्तक रहती थी जिसके पन्नो को वे उलटते रहते थे। पुस्तक मे मन को केंद्रित करने लायक धैर्य अभी उनमे विकसित नही हुआ था।

नीता की बातें सुनकर सुशोभन दो-तीन बार किताब के पन्नो को पलट गये। इसके बाद भौंह सिकोडकर बोले, "इतनी जल्दी से तुम्हारा क्या मतलब है नीता ?"

नीता अप्रतिभ होकर बोली, "जल्दी का मतलब है कि अब एक ही दिन जाने के लिए रह गया है और तुम्हारी अभी सारी तैयारी बाकी है।"

"मेरे लिए क्या तैयारी करनी है।" सुशोभन थोडा असहिष्णु होकर बोले, "सब ठीक हो जाएगा। तुम छोड जाओगी तो मुझे कौन ले जायेगा ? मुझे तो अब ठीक से याद भी नही आ रहा है कि दिल्ली किस दिशा मे है।"

"तब ?" इस बात से नीता उत्साहित होकर बोली, "तब तुम इस समय कैसे जाओगे पिताजी ? इस बार रहने दो, मैं फिर आकर तुम्हें ले जाऊँगी।"

"नहा, बाद मे नही, इसी समय।"

नीता ने फिर एक बार इधर-उधर ताका। सुचिता पूर्ववत् अपना काम किए जा रही थी। इस वार्तालाप का कोई भी टुकडा उनके कानो मे जा रहा था, उन्हे देखकर ऐसा नहीं महसूस हुआ।

इसलिए नीता ने कुछ ऊँची आवाज मे कहा, "तुम्हारे अभी जाने की जिद करने से बुआ नाराज हो जाएँगा पिताजी। ठीक कह रही हूँ न बुआजी ?"

सुचिता ने इस बार इधर अपनी नजरें फेरी और नीता के आँखो के इशारे की बिल्कुल परवाह न करते हुए बोली, "नही, मैं नाराज क्यो होऊँगी ?"

"हाँ, वह नाराज क्यो होगी ?" सुशोभन फिर किताब के पन्नो को तेजी से पलटते हुए बोले, "इसमे नाराज होने की क्या बात है ? यह तो मेरा अपना मकान नही है। मुझे यहा पर क्यों रहना चाहिए ?"

नीता पिता की ओर झुकते हुए दृढ स्वर म बोली, "ऐसी बात—ऐसी बात नही कहनी चाहिए पिताजी। सुचिता बुआ का घर क्या हम लोगा का घर नही है ? वह कोई पराई तो नही हैं।"

"नहीं, तुम बिल्कुल गलत कह रही हो।" उत्तेजना के मारे वे कुर्सी छोडकर उठ खडे हुए बोले, "सुचिन्ता से किस तरह से हम लोगो का रिश्ता हो सकता है ? वह मुखर्जी तो नही हैं।"

"मुखर्जी न होने से भी वह गैर नही हैं पिताजी।"

"ऐसा नही होता।" सुशोभन दृढ स्वर म बोले, "यह सब चालाकी भरी बातें हैं। मतलब तुम मुझे नही ले जाना चाहती हो।"

"वाह, ले क्यो नहीं जाना चाहती हूँ ? लेकिन सुचिता बुआ तो अब दिल्ली

"प्रणाम बुआ जी।" सुचिन्ता ने उनके नजदीक जाकर प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए सुचिन्ता बोली, "आने के पहले मुझे सूचना क्या नहीं दी ? निरुपम तुम्हे लेने शायद स्टेशन चला जाता—"

"आपको और अधिक परेशान करने की तबियत नही हुई। इसके अलावा आखीर तक यह तय नही कर पायी थी कि मैं यहाँ आ भी सकूगी या नही।"

"सागरमय कैसे है ?"

नीता कोमल स्वर मे बोली, "ऐसे तो ठीक ही हैं।" इसके अलावा कुछ नही कहा। जो वेठीक था उसके बारे मे उसने कुछ नही बताया। अपनी आवाज को कुछ और मुलायम करते हुए बोली, "पिताजी को तो खूब अच्छा ही देख रही हूँ। मुझे तो इतनी आशा नही थी।'

सुचिन्ता निर्लिप्त होकर बोली, "हाँ काफी लाभ हुआ है। डॉक्टर पालित ने प्राय असाध्य को साध्य कर दिया।"

"डाक्टर पालित।" नीता कुछ खिन्न होकर बोली, "क्रेडिट क्या डॉक्टर पालित को ही है ? असाध्य को साध्य करने की प्रशसा सिर्फ उन्ही को क्यो ? यह काम तो बुआ आपने किया है।"

यह सुनकर सुचिन्ता के चेहरे पर मुस्कराने, नाराज होने या आवेग से उद्वेलित होने का कोई लक्षण नही दिखायी दिया। सहज लहजे मे मृदु प्रतिवाद करते हुए बोली, "पागल लडकी। मैंने क्या किया ? इतनी सेवा तो कोई भी साधारण नर्स कर लेती है।'

"तुम परसो जा रही हो ? परसो ? दिल्ली जा रही हो ?' सुशोभन थोडा रुककर बोले, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा।'

"तुम भी चलोगे ?"

नीता ने एक बार अपने चारो तरफ देखा। देखा सुचिन्ता को भी। ढलती साँझ की मन्द होती हुई रोशनी मे बरामदे के कोने वाले बेत के मोढे पर बैठकर वह कुछ लिख रही थी। गर्दन झुकी हुई थी, सिलाई का कपडा अपनी जगह पर रखा हुआ था। स्थिर मुद्रा मे वे बैठी हुई थी।

सुशोभन की इस घोषणा को सुनकर भी उनकी स्थिरता मे कोई परिवर्तन नही हुआ। नीता हिचकिचाते हुए बोली, "इतनी जल्दी तुम कैसे जा सकते हो पिताजी ?"

सुशोभन के हाथ मे एक किताब थी।

सुशोभन उसके पन्नो को शुरू से अत तक और अत से शुरू तक लगातार उलट-पुलट रहे थे। आजकल ऐसा ही करते थे। इन दिनों उनके हाथो में हमेशा

कोई न कोई पुस्तक रहती थी जिसके पन्नो को व उलटते रहते थे। पुस्तक म मन को केद्रित करने लायक धैर्य अभी उनमे विकसित नही हुआ था।

नीता की बाते सुनकर सुशोभन दो-तीन बार किताब के पन्ना को पलट गये। इसके बाद भौह सिकोडकर बोले, "इतनी जल्दी से तुम्हारा क्या मतलब है नीता ?"

नीता अप्रतिभ होकर बोली, "जल्दी का मतलब है कि अब एक ही दिन जाने के लिए रह गया है और तुम्हारी अभी सारी तैयारी बाकी है।"

"मेरे लिए क्या तैयारी करनी है।" सुशोभन थोडा असहिष्णु होकर बोले, "सब ठीक हो जाएगा। तुम छोड जाओगी ता मुझे कौन ले जायेगा ? मुझे तो अब ठीक से याद भी नही आ रहा है कि दिल्ली किस दिशा म है।"

"तब ?" इस बात से नीता उत्साहित होकर बोली, "तब तुम इस समय कैसे जाओगे पिताजी ? इस बार रहने दो, मैं फिर आकर तुम्हे ले जाऊँगी।"

"नही, बाद मे नही, इसी समय।"

नीता ने फिर एक बार इधर-उधर ताका। सुचित्ता पूर्ववत् अपना काम किए जा रही थी। इस वार्तालाप का कोई भी टुकडा उनके कानो म जा रहा था, उन्हे देखकर ऐसा नही महसूस हुआ।

इसलिए नीता ने कुछ ऊँची आवाज मे कहा, "तुम्हारे अभी जाने की जिद करने से बुआ नाराज हो जाएँगी पिताजी। ठीक कह रही हूँ न बुआजी ?"

सुचित्ता ने इस बार इधर अपनी नजरें फेरी और नीता के आँखो के इशारे की बिल्कुल परवाह न करते हुए बोली, "नही, मैं नाराज क्यो होऊँगी ?"

"हाँ, वह नाराज क्यो होगी ?" सुशोभन फिर किताब के पन्ना को तेजी से पलटते हुए बोले, "इसमे नाराज होने की क्या बात है ? यह ता मेरा अपना मकान नही है। मुझे यहा पर क्यो रहना चाहिए ?"

नीता पिता की ओर झुकते हुए दृढ स्वर मे बोली, "ऐसी बात—ऐसी बात नही कहनी चाहिए पिताजी। सुचित्ता बुआ का घर क्या हम लोगा का घर नही है ? वह कोई पराई तो नही हैं।"

"नही, तुम बिल्कुल गलत कह रही हो।" उत्तेजना के मारे वे कुर्सी छोड-कर उठ खडे हुए बोले, "सुचित्ता से किस तरह स हम लोगा का रिश्ता हो सकता है ? वह मुखर्जी तो नही हैं।"

"मुखर्जी न होने से भी वह गैर नही हैं पिताजी।"

"ऐसा नही होता।" सुशोभन दृढ स्वर म बोले, "यह सब चालाकी भरी बातें हैं। मतलब तुम मुझे नही ले जाना चाहती हो।"

"वाह, ले क्या नही जाना चाहती हूँ ? लेकिन सुचित्ता बुआ तो अब दिल्ली

नही जाएँगी—" नीता जैसे अपने पिता को असली परेशानी से सतर्क कर देना चाहती थी, "वहाँ तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ?"

"तुम तो हो।" सुशोभन चिढकर बोले, "तुम मरी बेटी हो, तुम नहीं कर सकती ?"

शायद प्रकाश कम हो जाने के कारण पत्थर की स्थिर मूर्ति कुछ और झुक गयी। थोडी देर पहले ही जहाँ नाना रगो की छटा नजर आ रही थी, अब लुप्त होकर उस पर एक गहरी छाया उतरने लगी थी।

नीता ने आखिर दाँव मारा, "हम लोगो के एक साथ चले जाने से बुआ अकेली हो जाएँगी। उन्ह तकलीफ नही होगी ?"

नीता आदत के अनुसार पहले जैसे सहजे म ही पिता से बातें कर रही थी।

सुशोभन अपनी बटी के इस दाँव से परास्त नही हुए। गभीर होकर बोले, "दु खी होने से काम कैसे चलेगा ? यह उचित नही होगा।"

नीता जोर से हँसते हुए बोली, "दु ख क्या उचित-अनुचित का विचार करता है पिताजी ?"

लेकिन उसकी हँसी का वेग कम होने के पहले ही पागल आदमी ने उन लोगो को स्तब्ध करते हुए कहा, "दु ख अपने तरीके से काम करता होगा, लेकिन आदमी को तो हर काम उचित-अनुचित का विचार करके ही करना पडेगा।"

नीता स्तब्ध होकर अपने पिता को छोडकर दूर बैठी हुई उस स्थिर मूर्ति की ओर देखने लगी थी जो घिरते हुए अँधेरे मे हाथ की सिलाई की व्यर्थ चेष्टा त्याग कर खामोश बैठी हुई थी।

बुद्धि की भ्रष्ट हुई चेतना दुबारा लौट आयी थी। लौट आया था उचित-अनुचित का ज्ञान। इससे अधिक खुशी की बात क्या हो सकती थी ? फिर भी किसी भयकर आशका ने नीता को सुन्न कर दिया।

बुद्धिभ्रष्ट की खोयी हुई बुद्धि क्या किसी तीखी छुरी का फाल बनकर लौट आयी थी ? जो छुरी किसी के कोमल मन को बिद्ध करके एकदम से नष्ट कर देना चाहती थी।

नीता ने उठकर कमरे की बत्ती जला दी।

उसने अचानक कहा, 'ठीक है पिताजी, अब तुम आराम करो, मैं जरा एक बार इस मकान की ताई जी से मिल आती हूँ। जाने कल मौका मिले, न मिले।"

सुशोभन भी साथ ही साथ व्यस्त होकर बोले, "तुम अकेली नही जाओगी। साथ मे मैं भी चलूगा।"

"तुम ? तुम अब इस शाम के समय—आज रहने दो, बल्कि कल दिन मे मेरे साथ चलना।"

पागल की एक ही रट अभी मिटी नही थी। सुशोभन बोले, "नही, अभी

जाऊँगा। शाम को नही जाना चाहिए ? तु क्या घने जगल मे पैदल जाने वाली है नीता ? शाम को तू निकल सकता है और मैं नही ?"

नीता हताश होकर बोली,"रहने दो पिताजी, अब कल ही हम दोनो चलेगे। अब आज जाने की तबियत नही हो रही है।"

"अभी तबियत थी, अब नही है ? बडे आश्चय की बात है नीता। तुम लोगो का कहना था कि मेरे दिमाग म गडबडी है, जबकि तुम्ही लोगो का दिमाग गड-बड है।"

नीता फिर से आशान्वित क्यो हो उठी ? पागल पिता की स्वस्थ मूर्ति क्या उसे विचलित कर रही थी ? उस मूर्ति को क्या वह साहस करके सह नही पा रही थी ? क्या ऐसी शिथिल बातो से उसे आश्वस्ति होती थी ? उस स्वस्ति के सुख से भरकर वह हँसते हुए बोली, "यह बात तुमसे किसने कही थी पिताजी ? सुचिन्ता बुआ न ?"

"सुचिन्ता की बात नही हो रही है। तुम्ही ने कहा था।'

"मुझे तो याद नही पड रहा है।"

सुशोभन खीझकर बोले, "याद नही पडता है ? ठीक से याद करो।"

"बडे भैया, पिताजी ने तो अब एक नया पागलपन शुरू किया है।"

निरुपम से मिलने पर नीता ने सबसे पहले यही कहा।

पागलपन !

निरुपम के मन मे बहुत सारी बाते नाचने लगी। किनारे पर आकर क्या नाव डूब गयी ? लडकी को देखकर खुशी के मारे स्वस्थ हो रहे सुशोभन क्या पुन अपनी समझ-बूझ खो बैठे ? इसके बाद ही उसने महसूस किया कि नीता पहले से कितनी सुदर हो गयी थी। खैर, होने दो अब यह देखने की जरूरत नही है। बडे भैया होने के नाते उसे और बडा होना पडेगा।

लेकिन नीता का पति तो अधा है। वह अब कभी भी नीता का लावण्य से झलकता हृदय ऐश्वर्य की ज्योति से सुदर चेहरे को नही देख पायेगा। फिर भी आश्चय है कि नीता के चेहरे पर कितनी काति है, और वह हमेशा ऐसे ही रहेगी।

नीता की बातो के जवाब म उसने कहा, "कब आयी ?" उसके चेहरे पर भी नीता को देखकर रौनक आ गयी थी, इसे वह खुद भी नही जान पाया।

"जाने कब की आयी हूँ। आपका तो पता ही नही था। दिन भर कहाँ रहते है ?'

"इधर-उधर नेशनल लाइब्रेरी मे। तुम अकेली ही आयी हो ?'

"दिल्ली से अकेली ही आयी हूँ। हावडा स्टेशन से छोटे बाबू की बहू न

गाडी से यहाँ पहुँचा दिया।"

"छोटे बाबू की बहू।"

"कृष्णा ! इन्द्र की बहू !" कहकर नीता हँसने लगी। इसके बाद ही गंभीर होकर बोली, "इन्द्रनील वर्धमान कालेज में लेक्चरर होकर चला गया, उसकी बहू उसे छोड़ने स्टेशन गयी थी। आपको नहीं मालूम ?"

निरुपम ने सिर हिलाया।

"मँझले भैया भी चले गये। ऐसा क्या हो गया बताइये तो ? मैंने ऐसा तो नहीं सोचा था।'

निरुपम चुपचाप रहा।

नीता उदास होकर बोली, "अच्छा बड़े भैया, क्या मनुष्य सचमुच इतना अधिक दुर्बल प्राणी होता है ? जरूरत पड़ने पर वह उदार नहीं हो सकता ? महान् नहीं बन सकता ? वह अपने को सुन्दर नहीं बना सकता ? दूसरों के प्रति सहानुभूतिशील नहीं हो सकता ? नहीं हो सकता न ? हालाँकि ऐसा होने पर जीवन कितना सहज बन सकता था। जानते हैं मुझे पहले क्या महसूस होता था ? यही कि मनुष्य इच्छा करने पर क्या नहीं बन सकता है। अब देखती हूँ, वह ऐसा नहीं कर सकता। उस जरा-सी इच्छा के बदले हम लोग छोटे हो जाते हैं, संकीर्ण बनते हैं निष्ठुर होते हैं, कंजूस बनते हैं, शायद बहुत गिर भी जाते हैं और इसी तरह से जीवन को निरंतर जटिल बनाते जाते हैं। फिर भी वह थोड़ी सी कामना पूरी नहीं कर पाते।"

'निरुपम ने कहा, "दो-एक लोगों के चाहने से तो संभव नहीं है। अगर संयोग से दुनिया के सभी लोग महापुरुष बन जाएँ तभी यह हो सकता है।"

नीता बोली, "आप तो हँसी कर रहे हैं। लेकिन दुनिया के सभी लोग तो एक ही तरह के पदार्थ नहीं हैं। हर किसी का अपना व्यक्तित्व है। अगर कोई अपने को ही सुधारने की कोशिश करे तो उससे भी कुछ बात बन सकती है। हम लोग सिर्फ अपने स्वार्थ के अलावा और कुछ नहीं सोचते। 'दुनिया के करोड़ों लोग कितना कष्ट उठा रहे हैं, सिर्फ अपनी ही हालत सुधार कर क्या करेंगे ?' क्या कभी यह बात हम लोगों ने सोची है। अपने लड़के को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते हैं, अपनी लड़की की शादी अच्छी जगह करना चाहते हैं, अपने परिवार को अच्छा खिलाना-पहनाना चाहते हैं, अपने घर को अच्छी तरह से सजाए रखना चाहते हैं, ये सारी बातें हम लोग भी चाहते हैं और इसकी कामना करते समय दूसरों की भलाई की बात बिल्कुल ध्यान में नहीं लाते। अगर आत्मा महान् हो तो की बात को खुद हो कर 'एक्सपेरीमेंट' करके देखें तो बुरा क्या है ?'

"वह एक्सपेरीमेंट तो तुम कर ही रही हो—' निरुपम मुस्कराते हुए बोला,

"हम लोग इसका 'रेजल्ट' देख ले, फिर उत्साहित होगे। तुम कुछ नये पागलपन के बारे मे कह रही थीं ?"

"उसे तुम पागलपन की सज्ञा क्यो दे रही हो ?"

यह सवाल निरुपम ने नही बल्कि उनकी मा ने किया। बोली, "हम लोग तो इसी की आशा कर रहे थे। डॉक्टर भी इसी के लिए भरोसा दे रहे थे।"

"बात तो ठीक ही है—" नीता ने आहिस्ते-आहिस्ते कहा, "लेकिन जाने क्यो विश्वास नही हो रहा है।"

सुचिन्ता सहज स्वर म बोली, "तुम बहुत दिना के बाद देख रही हो, इसलिए तुम्हे ऐसा लग रहा है।"

हाँ, कल शाम की उस स्तब्धता के बाद से ही सुचिन्ता आश्चर्यजनक रूप मे सहज हो गयी थी। शायद रात की प्रार्थना करते वक्त उन्होने अपने म यह शक्ति अर्जित की होगी। शायद उन्होंने खुद को बार-बार यही कहकर समझाया होगा कि सुशोभन के स्वस्थ और स्वाभाविक होने की कामना ही तो हम लोगो ने की थी।

शायद सोचा था हम लोग पृथ्वी के अकृतज्ञ और निष्ठुर होने की बात सोच-सोचकर क्यो विचलित होते रहते हैं ? उसकी निष्ठुरता ही तो कल्याणकारी हाथो का स्पर्श है, उसकी अकृतज्ञता ही तो मुक्ति वाहिका है।

इसलिए जब नीता ने उनसे कहा, "बुआ आप पिताजी को थोडा समझाइये न, उन्होने फिर एक पागलपन शुरू कर दिया है—" तब सुचिन्ता ने सहज भाव से कहा था,"इसे तुम पागलपन क्यो कह रही हो ? हम लोगा ने यही तो चाहा था।"

सचमुच, इसी की तो आशा की गयी थी।

क्या नीता इसी आशा के वशीभूत होकर ही अपने पिता को लेकर अनुपम कुटीर के दरवाजे पर आकर नही खडी हुई थी ?

इसके बावजूद नीता सोच रही थी।

"लेकिन क्या मैंने यही आशा की था ?"

सोचने मे व्यवधान पड गया।

सुशोभन आकर बिना सुचिन्ता की ओर देखे हुए व्यस्त होकर बोले, "नीतू, आज उस मकान मे हम लोगो के जाने की बात थी न ?"

"हा, चल तो रही हूँ।" नीता ने कहा, "अच्छा बुआ, आप भी हम लोगो के साथ चलिए न ?"

सुचिन्ता के कुछ कहने के पहले ही सुशोभन गहरे असताप से भरकर कह पडे, "सुचिन्ता वहा क्यो जाएगी ? वहा पर सुचिन्ता की क्या जरूरत है ? सुचिन्ता से उन लोगा का क्या रिश्ता है ?"

नीता का चेहरा लाल हो गया। वह अप्रतिभ होकर सुचिता की ओर देखती रह गयी। लेकिन वहाँ उसे कुछ भी नजर नही आया। वह निर्विकार बनी रही। लेकिन नीता अचानक कुढकर नाराज हो उठी। बोली, "पिताजी, हम लोग भी तो सुचिता बुआ के रिश्तदार नही हैं, फिर भी—"

सुशोभन बात काटकर और भी गभीर गले से बोले, "रिश्तेदार नही हैं, यह बात अब तुम मुझे सिखाओगी ? क्या मैं नही जानता ? अगर नही जानता तो यहाँ से जाने की बात ही क्या करता ? दूसरा के घर मे नही रहना चाहिए इसीलिए न ?"

"पिताजी, अब तुम यह सब क्या कहने लगे ?"

"ठीक ही कह रहा हूँ—" सुशोभन उत्तेजित होकर कुछ और कहा जा रहे थे लेकिन उन दोनो को चकित करते हुए सुचिता खिलखिलाकर हँस पडी। बोली, "लो अब बाप-बेटी का झगडा शुरू हो गया। ठीक है, जहाँ तुम लोगो के वह परम आत्मीय रहते है, अब अकेले-अकेले जाकर ही उनसे मिल आओ। मुझे जाने की जरूरत नही है। लेकिन असमय मे जा रहे हो, वही रात का खाना-वाना खाकर तो नही लौटोगे ?"

अल्पभाषी सुचिता की इस प्रगल्भता को देखकर नीता को थोडी-सी हैरानी जरूर हुई लेकिन वह झटपट कह उठी, " नही, नही, ऐसा कैसे होगा ? वहाँ से खाकर क्यो लौटेंगे ?"

उसकी बात पूरी होते न होते सुशोभन भौहे सिकोडकर बोले, "अगर वे लोग खाने के लिए कहेंगे तो खाना ही पडेगा। उनकी बाते न सुनकर सिर्फ सुचिता की ही बाते सुनने से वे लोग निन्दा नही करेंगे ?"

"वह तो है ही, अब तो तुम्हारा लोक-निन्दा का ज्ञान भी प्रबल हो गया है। लेकिन भाई, खाना खाकर मत आना। कल तुम लोग चली जाओगी, इसलिए आज हमने अच्छी-अच्छी चीजें बनवायी है।" कहकर हँसमुख चेहरे से सुचिता चली गयी।

नीता उनके जाने की दिशा मे चकित होकर देखती रह गयी। तब क्या उसने कल जो कुछ देखा था वह गलत था ? कृष्णा की चिट्ठी मे लिखी हुई बात ही सच थी ? सुशोभन के दायित्व से सुचिता बेहद थक गयी थी। अब वे मुक्ति पाने के लिए छटपटा रही थी ? क्या इसीलिए 'जरा दो-चार दिन ठहर जाओ' जैसी बात कहने की सौजन्यता भी वे नही प्रकट कर पा रही थी ? मुक्ति की आशा से क्या व हल्की हो गयी थी ? प्रगल्भ हो गयी थी ?

नीता तो अपनी ओर से भरसक मौका दे रही थी।

वह पिता की अदूरदर्शिता से लज्जित होकर बोली भी थी, "जरा आप ही पिताजी को समझाइये बुआ—। अब उन पर एक नया पागलपन सवार हुआ है।"

लेकिन सुचिन्ता ने उस मौके का फायदा नहीं उठाया। बल्कि उसे देखते हुए बोला, "यह क्या। पागलपन की क्या बात है? यहाँ तो हम लोगों ने चाहा था।

गलना करने में नीता का तकलीफ हो रही थी।

उसने यह नहीं सोचा था कि यहाँ से जाना इतना सरल हो जाएगा। यह बड़े आश्चर्य की बात थी। कहीं भी किसी को तकलीफ नहीं होगी? कोई भी जाने से रोकेगा नहीं?

क्या नीता का बहुत दिनों का सोचा-विचारा हुआ एक रूमानी फूल हवा लगकर बासी फूल की तरह पड़ से निःशब्द झर जाएगा?

तब क्या सुशोभन की हर बात में पागलपन भरा है?

और सुचिन्ता की हर बात में करुणा?

इसीलिए सुशोभन के यहाँ से चले जाने के अवसर पर सुचिन्ता अच्छे-अच्छे व्यंजन बनवाने की बात इतने खुले ढंग से कर पा रही थी। सब कुछ सहज होकर वह पा रही थी। लेकिन क्या यही सच था? क्या नीता इतने दिनों तक सिर्फ गलत ही देखती रही? नहीं, यह असम्भव है। दुनिया से बहुत अधिक धोखा खाने के कारण ही शायद सुचिन्ता भी उसे धोखा देना चाहती थी। जिस तरह से बच्चे अपनी माँ से मार खाते हुए भी, 'नहीं लगी है, बिल्कुल चोट नहीं लगी है' कहकर माँ को ठगते रहते हैं।

चोट लगने की बात स्वीकार करने से ही उनका सारा अहंकार धूल में मिल जाएगा।

नहीं, वे अपने अहंकार को धूल में नहीं मिलने देंगी।

उत्तीर्ण हुई थीं सुचिन्ता। अतः आज की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हो गयी थीं। लेकिन अंतिम प्रश्न-पत्र के वक्त वे क्या लिखेंगी, क्या सुचिंता ने इसकी भी तैयारी कर ली थी?

उनके चले जाने के बाद सुचिंता बहुत देर तक निश्चल होकर बैठी रहीं। बैठकर शायद वे यही हिसाब लगा रही थीं कि अब और कितनी देर तक उन्हें यह कवच धारण करके रखना होगा। उनका देह मन अब थोड़ी शांति और विश्राम चाह रहा था, चाह रहा था एक ऐसा निर्जन कोना जहाँ निश्चिन्त होकर अपने को बिल्कुल छोड़ दिया जा सके। जहाँ पर अपने कवच-शिरस्त्राण को उतारकर रखा जा सके। अब सुचिन्ता नफा-नुकसान, लेन देन और भाग्य-भगवान की कामना छोड़कर चिंताविहीन, मृत्यु की तरह मधुर मनोहर उस विश्राम का वरण करने को व्यग्र थीं।

लेकिन अभी मुक्ति पाने में कई घंटे बाकी थे। काफी दिन पहले जो गाड़ी अनुपम कुटीर के दरवाजे पर आकर खड़ी हुई थी, वही गाड़ी जब अनुपम कुटीर

के दरवाजे से हमेशा के लिए विदा हो जाएगी, जब अनुपम कुटीर के सामन वाली सडक से ओझल हो जाएगी और जब धूल म पडे उसके पहिया के निशान भी मिट जाएँगे, तभी जाकर सुचिन्ता को छुट्टी मिलेगी।

पहियो के वे निशान वही गहर म दाग बन गये हैं कि नहीं यह सोचना ही हास्यास्पद है। यह दुनिया जवानो की है, नये लोगा की है। अगर इस दुनिया के समारोह के किसी कोने मे आकर जीण वाधक्य खडा होकर कहे कि इस आनन्द यज्ञ म उसका भी हिस्सा है ता सभी इस बात को सुनकर हँसने लगेंगे और उसे धिक्कारने लगेंगे। कहगे, यह तो बडा ही पतित और लोभी है। क्या इसे नही मालूम कि इस दुनिया मे एक 'विस्मृति गृह' भी है। वही इसकी जगह है, वहीं जाकर यह आश्रय ले। हम लोग इसे भूलना और भूले ही रहना चाहते हैं। सामने की पक्ति मे खडा रहकर क्या यह उल्टी रीति चलाना चाहता है?

सुचिन्ता मन्त्र जपने की तरह कहने लगी, यही हो, यही हो। मेर लिए विस्मृति का अधकार ही रहे। दुनिया मुझे भूल जाए। मुझे छुट्टी मिल जाएगी। अपने जीवन-यज्ञ के होम-अनल मे जो आहुतियाँ मैंने दी हैं उन्हें याद करके अपने को छोटा नही बनाऊँगी। मेरे जमा खाते मे इस होम-अनल का भस्मटीका ही रहे।

पिछले कई दिनो से सुशोभन पर अभिमान करके अपने मौन की बात सोचकर उन्हे खुद पर लज्जा आने लगी। व मन ही मन जपने लगी कि 'वह सहज होकर स्वस्थ होकर अपने घर द्वार अपने नाते-रिश्तेदारा के बीच पहुँच जाए। अन्तिम परीक्षा का प्रश्न-पत्र मेरे लिए कठिन न हो और मैं बिना किसी गलती के उसे हल करके परीक्षा मे सफल हो सकू।'

लेकिन सही बात कौन-सी थी? क्या सुचिन्ता इसे जानती थी? अब भी कही पर कोई भय अपने पजे जमाए हुए बैठा था, जिधर ताकने का उन्हें साहस नही होता था।

कुछ दिना से सुशोभन कुछ अधिक गभीर लगने लगे थे, थोडे नाराज भी लगते थे। लेकिन आज उस मकान से वे खूब प्रसन्न चित्त लौटे। लगा उनकी पुरानी खुशी फिर से लौट आयी हो।

उन्होंने चिल्लाते हुए कहा, "सुचिन्ता, मैं सब ठीक कर आया। एकदम टिकट तक खरीदने की काम्प्लीट व्यवस्था हो गयी है। नीता ने सोचा था कि वह मुझे दिल्ली नही ले जाएगी, यही बहला बहलाकर रख जायगी। मैंने पहले ही नीता का इरादा समझ लिया था। इसीलिए उस मकान म उसके साथ गया। वहाँ मेरे बड भैया रहते हैं। वे सारी व्यवस्था कर देंगे। छोटी बहू मेरी देख-भाल करेगी।

सुचिन्ता, तुम इतनी चुपचाप क्यों हो ? मेरे साथ और कौन-कौन जाएगा, तुमने यह नहीं पूछा ?"

सुचिन्ता हँसते हुए बोली, "तुमने पूछने का मौका ही कब दिया ? रेलगाड़ी की तरह अपनी ही बात चलाए जा रहे थे—"

"रेलगाड़ी, रेलगाड़ी !' सुशोभन ने अपना सिर को धीरे-धीरे हिलाते हुए कहा,"रेलगाड़ी पर चढ़े बहुत दिन हो गए। वह स्टेशन, वह प्लेटफार्म, रेल की खिड़कियों से आता हुआ धूल का बवंडर ! आह ! यह सब सोचकर ही कितना अच्छा लग रहा है। उन लोगों की तरह मुझे भी खुशी के मारे उछलने-कूदने की इच्छा हो रही है।'

सुचिन्ता चकित होकर बोली, "किसकी तरह ?"

"अरे हाँ, तुमसे तो कहना ही भूल गया। बड़ा-मुन्ना भी तो मेरे साथ जा रहे हैं। उनकी माँ भी जाएगी। वही अच्छी मेरी छोटी बहू !'

सुचिन्ता नीता की ओर कौतूहल भरी नजरों से देखकर गंभीर होकर बोली, "और अगर मैं तुम्हें कहीं जाने न दूँ तो ?'

"नहीं जाने दोगी ? तुम मुझे नहीं जाने दोगी ?"

"यही तो सोच रही हूँ। जाने के समय रोक दूँगी।

सुशोभन की भौंहें सिकुड़ गयीं। अचानक वे अपने उत्साह को भंग करके गंभीर हो गये। भारी गले से बोले, "बचपना मत करो।" कहकर धीमी गति से वे अपने कमरे में चले गये।

शायद दूसरे ही क्षण उन्हें सुचिन्ता की उन्मुक्त खिलखिलाहट और उनकी आवाज सुनायी पड़ी, "रहने दो, पागल को ज्यादा चिढ़ाने की जरूरत नहीं है। नीता, अब भोजन परोसा जाय ? रात काफी हो गयी है।"

सुशोभन ने भौंहें सिकोड़ लीं। सुचिन्ता इतना हँस क्या रही है ? पहले भी क्या कभी इतना हँसती थी ?

इसके बाद जब रात काफी बीत गयी, जब अनुपम कुटीर की सारी बत्तियाँ बुझ गयीं तब अनुपम कुटीर में बहने वाली हवा अँधेरे में जगे हुए व्यक्ति के दीर्घ निश्वास से बोझिल हो उठी।

अनुपम कुटीर का बड़ा लड़का सोचने लगा एक असहनीय अवस्था तो खत्म हो रही है लेकिन फिर भी क्यों नहीं मन का बोझ हल्का हो रहा है ? मानो, इस असहनीय अवस्था के विदा होने के साथ-साथ कुछ और भी जैसे विदा ले रहा है। जाने कहीं एक पुल था जो टूटने लगा है। सारी चीजें जाने कैसी धुंधली होती जा रही हैं। फिर दूसरे ही क्षण चकित होकर सोचने लगा, लेकिन इतना असहनीय लगने का कारण भी क्या था ? शायद ऐसा ही होता हो। सान्निध्य के धूल-कीचड़ में जो क्षमा ढूँढ़े नहीं मिलती, वही विदा की उदास बेला में सामने

आकर खडी हो जाती है। प्राण तब हाहाकार कर उठते है। मन कहता है इतना कठोर होने की जरूरत क्या थी ? थोडे से सद्‌व्यवहार से क्या बिगड जाता।"

इसी रात को बहुत-बहुत दूर सोये हुए अनुपम कुटीर के मँझले लडके की नीद भी टूट गयी थी। अपनी सद्य विवाहित दक्षिण भारतीय पत्नी के निश्चित सोये चेहरे की ओर देखते हुए सोचने लगा, "यह मैंने क्या किया ? क्या वाकई इसकी जरूरत थी ? दुनिया अगर अपनी गति से चलती हो तो इसम मुझे क्या लाभ हुआ ?

अनुपम कुटीर के छोटे लडके की नीद नही टूटी थी।

वह सो रहा था।

अनभ्यस्त काम के बोझ से थककर चूर होकर वह अपनी खाट पर थोडे से बिछ बिछौने पर वह गहरी नीद म सो रहा था। शायद इस श्रम की थकान से ही वह किसी दिन सुखी होगा। सुखी होने के उपादान उसम मौजूद थे।

लेकिन इन सबसे क्या अनुपम कुटीर का जीवन बदल जाएगा ? अब निरुपम से ही उसका अस्तित्व जाना जाएगा। अब सारे जीवन अस्तित्वहीनता का बोझा ढोकर जीवित रहना पडगा। नही, सस्ते उपन्यास की नायिकाओ की तरह मौत को बुलाकर उस बोझ को सुचिन्ता उसकी नाव पर नही चढाएँगी। बस, वे अबसे जीवन और मृत्यु दोनो के बारे म निर्लिप्त हो जाएँगी।

हमेशा से खामोश रहने वाला अनुपम कुटीर बीच के इन कई दिनो के आँधी-तूफान के बाद फिर से खामोश और विवर्ण हो जाएगा।

हा, सुचिन्ता यही सब सोच रही थी।

सोच रही थी कि सुचिन्ता नाम की भी कोई थी, धीरे-धीरे लोग इसे ही भूल जाएँगे। वे सब उदासीन होकर अपनी राह चले जाएँगे, भूलकर भी नही जानना चाहेगे कि कभी इस साधारण से मकान की रात हलचल भरी हो गयी थी और दिन विक्षुब्ध क्रदन मे स्तब्ध हो गया था।

सोच रही थी, शायद कभी कोई किसी से पूछ बैठे,"इस पुराने से लगने वाले मकान मे कौन रहता है ?"

शायद उस व्यक्ति का जवाब होगा, "कौन जाने। कभी-कभी एक विधवा बुढिया नजर आती है।"

सुचिन्ता यही सब सोच रही थी।

सोचा नहीं था—लेकिन जो सोचा था उसे अब रहने ही दिया जाए, वह तो ढेर सारी बातें हैं। आज की ही बात ली जाए।

आज की रात साँसों से मर्मरित था।

आज नीद की दवा का असर नही हुआ था। स्वस्थ हो गये सुशोभन सारे कमरे मे बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। अब उनम अच्छा-बुरा सोचने की

क्षमता पैदा हो गयी थी। तभी सोच रहे थे कि सुचिन्ता की समझ बहुत कम है। लोग क्या कहेंगे वह इसकी परवाह ही नहीं करती। मेरे पास आकर बैठ जाती है, मुझसे हँस-हँसकर बातें करती है। फिर यह भी कह रही थी कि मुझे वह जाने नहीं देगी, जाते समय मुझे रोकेगी। छि छि कितनी खराब बातें हैं यह सब। उसे मना करना पड़ेगा। कहना होगा, "सुचिन्ता क्या मेरा मन नहीं करता कि तुम्हारे पास बैठूँ, तुम्हारे हाथों में अपना हाथ रखूँ, लेकिन इच्छा करने से ही तो कुछ नहीं होता। ऐसा करना उचित नहीं है।"

और नीता ?

नीता भी जगी हुई थी लेकिन उस समय वह अनुपम कुटीर में नहीं थी। वह हजारों मील दूर चली गयी थी। एक जोड़ा मुँदी हुई पलकों को वह उदास आँखों से देखे जा रही थी और मन ही मन अपने से व्याकुल होकर पूछ रही थी, तुम कहते हो कि मेरी आँखों से ही तुम देखोगे। लेकिन दुनिया के सारे कर्त्तव्य निभाते हुए भी क्या मैं निरन्तर अपनी आँखों को तुम्हारी आँखें बना पाऊँगी ?"

इसके बाद, बहुत देर के बाद वह अनुपम कुटीर में जब लौट आयी तब उसने सुशोभन को चहलकदमी करते हुए देखा।

उसने कहा, "पिताजी, पानी चाहिये ?"

"नहीं रहने दो।"

"नींद नहीं आ रही है ?"

"आ जाएगी।"

"तुम तो चहलकदमी कर रहे हो। उससे अच्छा तो यही होगा कि हम सभी लोग बैठकर बातें करें।'

"हम सभी से मतलब क्या है तुम्हारा ?' सुशोभन ने भौंहें सिकोड़ीं।

"क्यों मैं, तुम और सुचिन्ता बुआ। उन्हें बुला लाऊँ ?'

अचानक सुशोभन खड़े हो गये। तीव्र भर्त्सना करते हुए बोले, "नीता, पहले तो तुम इतनी असभ्य नहीं थी।"

इसलिए सभी के मिलकर बातें करने का प्रस्ताव वहीं खत्म हो गया। किसी एक समय सब खामोश भी हो गया। भोर की हवा में क्लान्त सोये हुए लोगों की साँसों की धीमी आवाज तैरने लगी।

लेकिन अभी तो रात के बाद संभावनाओं भरी सुबह भी शेष थी।

दिन अभी रात जैसा अँधेरा नहीं हुआ था।

सुचिन्ता किसी काम से दरवाजे के सामने से गुजरते-गुजरते थमककर खड़ी हो गयी, फिर वे कमरे में घुस पड़ीं। बोलीं, 'यह क्या कर रहे हो ?'

सारे कमरे में कपड़े लत्ते तथा और जरूरी सामान बिखरे पड़े थे। सामने

दो-दो सूटकेस खुले पडे हुए थे और सुशोभन पसीना-पसीना होकर कमरे मे टहल रहे थे।

सुचिन्ता बोली, "यह ।या कर रह हो ?"

सुशोभन वीर दर्प से बोले, "तैयारी कर रहा हूँ।"

'तैयारी हो रही है ? खैर, ठीक ही कर रहे हो,"सुचि"ता हँसते हुए बोली, "बहुत देर तुमने तैयारी कर ली है, अब रहने दा मैं सँभाल दे रही हूँ।"

सुशोभन ने उस बात का कोई महत्त्व नही दिया, अचानक खाट पर बैठते हुए बोले, "तुम हँस क्यो रही हो ?"

"हँसूगी नही ?"

"मैं जाने की तैयारी कर रहा हूँ और तुम हँस रही हो ? तुम्हें कष्ट नही हो रहा है ?"

सुचिन्ता स्थिर हो गयीं। उनकी दोनो आखो मे कोई गहरी छाया तैरने लगी। बोली, "तुमन ता कहा था कि हम लोगो की उम्र हो गयी है, हम लोगो को एक दूसरे की याद मे दुखी नही हाना चाहिए। ऐसा उचित नही होगा।"

सुशोभन फिर से परेशान होकर उठ खडे हुए, "सुचिता, तुमने मेरी बात को ठीक से समझा नही। मैंने कहा था इस तरह की बातें करना उचित नही है। इसका क्या मतलब है यही कि तुम हँसोगी ?"

"हँसने पर तुम्हे अच्छा नही लगता ?"

सुशोभन अस्थिर होकर एक बार खूब नजदीक आ गये, इसके बाद फिर हटकर दब गले से बोले, 'लगता है, बहुत अच्छा लगता है। लेकिन मेरे जाने के वक्त नही।'

सुचिता उस अस्थिर व्यक्ति की तरफ स्थिर दृष्टि से देखती हुई बोली, "तब तुम चले क्या जा रहे हो ?"

"क्या जा रहा हूँ ? यू ही मैं तुम्हे नादान नही कहता सुचिता। जाना है इसलिए जा रहा हूँ। मुझे क्या तकलीफ नही हा रही है ? लेकिन क्या किया जा सकता है ? समाज है, सभ्यता है, लेकिन तकलीफ भी है। और वह रहेगी।"

सुचिन्ता अचानक जमीन पर पडे कपडा के ढेर पर धप्प से बैठ गयी। जाने क्या मुट्ठिया म बदकर उसे भीचते हुए बोली, "मुझे कोई तकलीफ नही हो रही है। बिल्कुल नही हो रही है।'

सुशोभन फिर चहलकदमी करने लग। फश पर रखी हुई चीजों को लाँघ-लाँघकर चलने के कारण उनकी चाल बहुत विचित्र लग रही थी।

लेकिन बहुत शात और गभीर हाकर बोले, 'ऐसा कहकर सुचिन्ता तुम मुझे बदल नही सकती। मैं क्या तुम्हें जानता नही ? मैं यह नही जानता क्या कि मेरे जाने के बाद तुम बहुत रोओगी।'

"नही, नही । मैं बिल्कुल नही रोकूँगी ।"

"पिताजी हम लोगो को एक बार डाक्टर पालित से मिलने जाना पडेगा ।"

नीता बाहर जाने की वेशभूषा मे तैयार होकर आयी थी ।

इसके बाद ?

इसके बाद सिर्फ भाग-दौड की हलचल म ही कई घण्टे बीत गये । डाक्टर के यहा से लौटकर वे लोग बाजार गये। और भी कही गये । सुशोभन के अस्त-व्यम्त सामान का ठीक करके खाते-पीते जाने कब समय बीत गया । तव तक उस मकान की छोटी बहू और उनके बच्चे आ गये ।

सभी एक साथ जाने वाले थे ।

गाडी पर चढाने का जिम्मा इस मकान के बडे बेटे पर था ।

दोना शैतान लडके शोर-गुल करत हुए आग ही टैक्सी म चढकर वैठ गये थे । नीता अपने पिना को लेकर उतर रही थी । जाने के समय अशोका कह पडी, "दीदी, आप भी स्टेशन चलिए न ।"

"मैं स्टेशन चल ?" सुचिता जैसे आसमान से गिरी । बोली, "क्या कहती हो । अब मैं स्टेशन जाऊँगी ? चारा तरफ कितना काम बिखरा पडा है ।"

"काम । आप इस समय काम की बातें सोच रही हैं ? आपके कहने से ही क्या मैं विश्वास कर लूगी ? दीदी, आप मेरी आखो को धोखा नही दे पायेंगी ।"

सुचिता खूब जोरो से हँसते हुए बोली, "कल की लडकी की हिम्मत तो देखो । दुनिया भर की नजरो को धोखा देती आयी अब यह आकर मेरी आखो के धोख का पकड रही है । चलो, दरवाजे तक चलती हूँ । अपने उत्पाती बच्चा के साथ बडी सावधानी से सफर करना ।"

अब और कितनी देर ? कितनी देर तक अब और सुचिता अपने को सँभाल पायेगी ?

इतनी तरह के सवाला को हल करना पडेगा, क्या इस बात को सुचिता पहले से जानती थी ?

फिर भी सुचिता सँभाल रही थी । अपनी बातों की पतवार का व सँभाले हुए थी ।

यही अतिम लहर थी ।

इसके बाद मुक्ति थी ।

अब जीवन भर बिना कोई बात किए हुए भी शायद सुचिता के दिन कट जाएँगे ।

इसीलिए सुचिन्ता अकारण बोले जा रही थी। कह रही थी, "सीढ़ी के सामने किसने जूता रख दिया ? छि छि, ऐसे भागमभाग के समय।"

कह रही थी, "सारे सामानों को गिनकर गाड़ी मे चढाया है तो ? उतारते समय इन्हे फिर से गिन लेना।"

कह रही थी, "छोटी बहू, तुम साथ जा रही हो, इसलिए निश्चित हूँ। अकेली नीता के लिए दो-दो रोगियो का सँभाल पाना कठिन होता। इस पागल को समालना सरल नही है।"

सुचिन्ता और भी बहुत कुछ कह रही थी। जिस सुचिन्ता को आज तक से इतनी बाते एक साथ करते हुए किसी ने देखा नही था।

हा, सुचिन्ता इस मँझधार से अपनी बातो का पतवार खेकर ही किसी तरह से अपने को उबार रही थी। शायद उनकी नाव मझधार के पार चली गयी होती लेकिन दुर्भाग्य से पतवार हाथ म ही रह गयी और उनकी नाव अचानक एक धक्कर खाकर एकदम से उलट गयी।

गाडी पर चढ़ने के ठीक पहले सुशोभन अचानक मुह फेरकर खडे हो गये। बोले, "मैं नही जाऊँगा, मेरी जाने की तबियत नही हो रही है।'

"पिताजी, गाडी का समय हो गया है—" नीता व्याकुल होकर अपने पिता की पीठ पर हाथ रखते हुए बोली, "देर होने से ट्रेन चली जायेगी।"

लेकिन सुशोभन इस व्याकुलता से जरा भी विचलित नही हुए। बोले,"जाने दो। मुझे यहा की याद सता रही है।"

"सुशोभन !"

सुचिन्ता नजदीक आकर बोली, ' 'क्या कर रहे हो ? देखते नही नीता को तकलीफ हो रही है।"

अचानक सुशोभन शेर की तरह दहाड उठे,"और मुझे ? मुझे तकलीफ नही हो रही है ? समझ नही पा रही हो कि तुम्हारे लिए मेरा मन जाने कैसा-कैसा करने लगा है।"

पडोसियो और राह चलते हुए लोग रुककर इस नजारे को देखने लगे। उनकी ओर देखकर निरुपम गाडी से उतर पडा। दबी हुई मगर क्रुद्ध आवाज मे बोला, "क्या बचपना कर रहे हैं, खुद ही तो जाने के लिए परेशान हो गये थे।"

"हुआ था। लेकिन अब नही हूँ। बस। चलो सुचिन्ता, चलो, हम लोग चलकर कही छिप जाएँ।'

सुशोभन ने गाडी की ओर से मुह फेर लिया।

समय तेजी से बीत रहा था। नीता अनुनय भरे स्वर म बोली, "मैं तुम्हे फिर ले आऊँगी पिताजी, अब आज चलो।'

लेकिन पागल भी भला अनुनय से पिघलता है ?

पागल अपनी ही जिद मे बोला, "नहीं जाऊँगा। कह रहा हूँ न कि तबियत नहीं हो रही है।"

ड्राइवर ने अपनी खीझ व्यक्त की, अशोका व्यग्र होकर बोली, "अब आइये मँझले भैया।"

"आह, तुम क्यों बकबक कर रही हो ? कौन हो तुम ?"

निरुपम ने अपनी बातो पर बल देते हुए कहा, "बीच रास्ते मे क्या कर रहे हैं ? गाडी मे चढिये। नही तो विवश होकर जबर्दस्ती—"

सुनकर सुशोभन जैसे भयभीत हो गये, दिशाहारा आर्तनाद करते हुए बोले, "सुचिता, ये लोग मुझे जबर्दस्ती ले जा रहे हैं। तुम रोक लो। तुमने कहा था न तुम मुझे रोक लोगी, जाने नही दोगी।"

नही अब द्विधाग्रस्त होने से काम नही चलेगा।

सारी लज्जा और सकोच को इस दुनिया मे रक्त-मास वाले साढे तीन हाथ के मनुष्य को ही वहन करना पडता है।

उस दु सह को सहन करके सुचिता आगे बढ़कर कडे स्वर मे बोली,"सुशोभन, गाडी मे चढ जाओ।"

"नही चढूगा—" सुशोभन के स्वर मे अब कातरता नही थी, रूठे हुए स्वर मे बोले, "मैं तुम्हारी बात नही मानूगा।"

"नही, मेरी बात सुनोगे। सुशोभन जिद नही करनी चाहिए। बातें न मानने से लोग निदा करेंगे—"

"निदा करें—" व पिंजडे मे बद शेर की तरह दहाड उठे, "मेरे ठेंगे से। मैं परवाह नही करता।"

"छि सुशोभन। ऐसा क्यो कर रहे हो ? तुम ठीक हो गये हो ?'

"नहीं, नही, नही। मैं बिल्कुल नही ठीक होऊँगा। मैं ठीक होना नही चाहता। तुम मुझे धोखे से ठीक करके भगाना चाहती हो। मैंने तुम्हारी चालाकी पकड ली है।"

सुशोभन दरवाजे की तरफ बढने लगे।

नीता कातर होकर बोली, "बडे भैया, अब क्या होगा ?

अशोका कातर होकर पुकारने लगी, "मझले भैया यह क्या कर रहे हो ? हम सभी लोग दिल्ली चल रहे हैं न। साथ मे आपके सडा-गुडा भी हैं।'

"रहने दो। तुम न जाने कौन मुझे समझाने आयी हो! मैं तुममे से किसी को भी नही पहचानता। बस।'

अनुपम बिगडते हुए बोला, "देखती हूँ बिना जबदस्ती किए मानेंगे नही। माँ, तुम अदर जाओ। मैं जिस तरीके से भी होगा—आइये। चले आइये नहीं तो गाडी छूट जाएगी।

निरुपम ने सुशोभन के कँधे के पास अपना हाथ रखा।

सुशोभन न उस हाथ को तेजी से झटक दिया। बिगडकर बोले, "जाओ, जाओ, गाडी छूट जाने दो।"

"क्या कह रहे हैं ?"

निरुपम दबी हुई क्रुद्ध आवाज मे बोला,"माँ, तुम जाओ। मैं देखता हूँ—"

लेकिन वह क्या देखेगा ?

किसको देखेगा ?

जो पागल रास्ते मे खडे-खडे 'सुचित्रा, तुम मुझे रोक क्यो नहीं रही हो ?' कहकर चिल्ला सकता हो, उसको देखेगा ?

"नहीं होगा।'

सुचित्रा ने निरुपम की ओर देखा।

"तुम लोग चले जाओ।"

"हम लोग चले जाएँ ?'

"उपाय क्या है ?"

"और तुम ?

"मैं ?"

सुचित्रा हँसने लगी। बोली, "यहाँ तो सभी कुछ गडबड हो गया है। लग रहा है अब इस पागल को लेकर मुझे जीवन भर नाको दम होना पडेगा।"

वे सुशोभन की पीठ पर अपना हाथ रखकर उसे सहारा देती हुई अनुपम कुटीर के दरवाजे की ओर बढ चली।

•